हिंदी के जीवंत हस्ताक्षर

(सिद्धेश्वर से साक्षात्कार)

संपादक

डॉ. बलराम तिवारी

हिंदी के जीवंत हस्ताक्षर

संपादक - डॉ. बलराम तिवारी

हिंदी के जीवंत हस्ताक्षर

(सिद्धेश्वर से साक्षात्कार)

संपादक
डॉ. बलराम तिवारी
पूर्व विभागाध्यक्ष
स्नातकोत्तर हिंदी विभाग
पटना विश्वविद्यालय, पटना

प्रकाशक
सरदार पटेल साहित्य प्रकाशन
दिल्ली–92

हिंदी के जीवंत हस्ताक्षर

(सिद्धेश्वर से साक्षात्कार)

संपादक : डॉ. बलराम तिवारी,
पूर्व हिंदी विभागाध्यक्ष, स्नातकोत्तर, पटना विश्वविद्यालय,
मजिस्ट्रेट कॉलोनी, रोड नं.-4A, आशियाना नगर,
पटना-800025, मो.-9431433652

उत्तरदाता : सिद्धेश्वर, संस्थापक संपादक, 'विचार दृष्टि', दिल्ली
पूर्व अध्यक्ष, बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड,पटना
'संस्कृति', ए-164, ए.जी. कॉलोनी, शेखपुरा,
पत्र.-आशियाना नगर, पटना-25
मो.-9431037221

प्रकाशक : सुधीर रंजन, सरदार पटेल साहित्य प्रकाशन,
'दृष्टि', यू. 207, शकरपुर, विकास मार्ग,
दिल्ली-92, दूरभाष-011-2253065,
मो.-9811281443,

(c) सुधीर रंजन, प्रकाशक, दिल्ली

मुद्रक : ....

शब्द-संयोजन : अमित कुमार,सुशीला सदन,रोड नं.-17,राजीव नगर, पटना

छायांकन : डॉ. शाहिद जमील, संपादक, 'विचार दृष्टि', दिल्ली

प्रथम संस्करण : वर्ष 2017

पृष्ठ सं. : 256

मूल्य : छः सौ रुपए (Rs 600/- Six Hundred Only)

Hindi ke jeewant hastakshar :

Collection of question-answer during interview of Sidheshwar.

Edited by Dr. Balram Tiwary Rs-600/

हिंदी के जीवंत हस्ताक्षर

(सिद्धेश्वर से साक्षात्कार)

संपादक

डॉ. बलराम तिवारी

पूर्व हिंदी विभागाध्यक्ष, स्नातकोत्तर
पटना विश्वविद्यालय, पटना

संपादक-मंडल

डॉ. अरुण कुमार भगत
एसोसियेट प्राफेसर
माखन लाल चतुर्वेदी पत्रकारिता,
एवं संचार विश्वविद्यालय,भोपाल
नोयडा केंद्र,गाजियाबाद,उत्तर प्रदेश

श्री अखिलेश्वर प्रसाद
प्रधानाध्यापक
आयुर्वेद संस्कृत प्राथमिक सह मध्य
विद्यालय, आरा, भोजपुर

श्री विजय कुमार सिंह
नेता, भाजपा, बिहार
राजनीतिक टिप्पणीकार,यारपुर,पटना

डॉ. शाहिद जमील, उपसंपादक
राजभाषा पदाधिकारी,राजभाषा विभाग
बिहार, पटना

आचार्य रामविलास मेहता
राष्ट्रपति पुरस्कृत
ग्राम-बचनु चकला, पो.-रतनपुर,
भाया-करजाईन बाजार,जिला-सुपौल

श्री सुरेश कुमार सिन्हा
उपसंपादक, 'वाग्वंदना'
'घरौंदा', ए/364,ए.जी.कॉलोनी, पटना

श्री उपेन्द्रनाथ सागर
भट्ठा बाजार, पूर्णिया-854301

अनुक्रम पृष्ठ

सिद्धेश्वर: एक नजर..5

संपादकीय.. 7

उत्तरदाता के उदगार..10

अभिमत 1. प्रो. राज चतुर्वेदी..18

2. पद्मश्री डॉ. श्याम सिंह 'शशि'................21

3. डॉ. नरेन्द्र शर्मा 'कुसुम'........................24

शुभाशंसा 1. डॉ. ब्रह्मचारी सुरेन्द्र कुमार.................... 31

2. डॉ. रामनिवास 'मानव'........................35

अध्याय:एक- व्यक्तिगत प्रश्नोत्तर..41

अध्याय:दो - साहित्यिक प्रश्नोत्तर..89

अध्याय:तीन- शैक्षिक प्रश्नोत्तर..148

अध्याय:चार- भाषिक प्रश्नोत्तर..182

अध्याय:पाँच- पत्रकारिता प्रश्नोत्तर..204

अध्याय:छह- नैतिक प्रश्नोत्तर..238

अध्याय:सात- प्रष्टाओं के सचित्र परिचय........................244

सिद्धेश्वर : एक नजर

पूरा नाम : सिद्धेश्वर प्रसाद

संक्षिप्त नाम : सिद्धेश्वर

पिता का नाम : स्व. इन्द्रदेव प्रसाद

माता का नाम : स्व. फूलझार प्रसाद

पत्नी का नाम : श्रीमति बच्ची प्रसाद

जन्म तिथि : 18 मई, 1941

जन्म स्थान : ग्राम+पत्र.-बसनियावाँ, भाया-हरनौत, जिला-नालंदा, बिहार(भारत)

शैक्षिक योग्यता : सन् 1962 में पटना विश्वविद्यालय से श्रम एवं समाज कल्याण विषय में स्नातकोत्तर

तकनीकी शिक्षा : सन् 1973 में भारतीय लेखा एवं लेखा परीक्षा विभाग से एस.ए.एस. (Subordinate Accounts Service)

सरकारी सेवा : भारतीय लेखा एवं लेखा परीक्षा विभाग के कार्यालय महालेखाकार, राँची एवं पटना में लेखा परीक्षक से प्रोन्नति प्राप्त करते हुए वरिष्ठ लेखा परीक्षा अधिकारी के पद पर छतीस वर्षों तक सेवा प्रदान करने के पश्चात् सन् 2000 के 31 मई से स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति लेकर वृहतर एवं व्यापक समाज व राष्ट्रहित में सार्वजनिक जीवन में प्रवेश।

सार्वजनिक सेवा : 1.भारतीय रेलवे के रेलवे हिंदी सलाहकार समिति के सदस्य
2. बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के राज्यमंत्री का दर्जा प्राप्त अध्यक्ष पद पर 15 सितंबर, 2008 से 14 सितंबर, 2011 तक कार्यरत।

अभिरुचि : समाज व साहित्य सेवा तथा पत्रकारिता, राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए संघर्षशील तथा रचनात्मक लेखन से जुड़ाव।

रचनाएँ प्रकाशित :1.सामाजिक-'आरक्षण','कल हमारा है', 'समता के सपने' 'आत्ममंथन' बिहार के कुर्मी (निबंध संग्रह) एवं बिहार के कुर्मी (निर्देशिका)
2.स्मृति-'यादें'(भोला प्र. सिंह 'तोमर' की स्मृति में)
3.हाइकु काव्य संग्रह-'पतझड़ की सांझ', 'सुर नहीं सुरीले', 'कवि और कविता'

4. सेन्र्यु काव्य संग्रह-'जागरण के स्वर', 'बुजुर्गो की जिंदगी'
5. काव्य संग्रह-'यह सच है'
6. जीवनी- 'एक स्वप्नद्रष्टा की अंतर्कथा',
'डॉ. मोहन सिंह: एक तपस्वी मन'
7. शैक्षिक-'समकालीन यथार्थबोध'एवं 'समकालीन संपादकीय'

जीवनी-साहित्य : 1.'सिद्धेश्वर:व्यक्तित्व और विचार'-प्रो. रामबुझावन सिंह
2.'सिद्धेश्वर:अंकों से अक्षर तक' डॉ. ब्रह्मचारी सुरेन्द्र कुमार

रचनाएँ प्रकाश्य:साक्षात्कार-1.'हिंदी के जीवंत हस्ताक्षर', डॉ. बलराम तिवारी द्वारा संपादित
2. 'इंसानियत की धुँआती आँखें'
3. 'राष्ट्रीय राजनीति'
4. 'उम्मीद जताते न्यायिक एवं आर्थिक फैसले'
5.'वैश्विक कूटनीति'

राजनीति : 'आम आदमी की आवाज'
आत्मकथा-'जीवन रागिनी' तथा हाइकु में 'मेरी जीवन-यात्रा'
संस्मरण-1.'हमें अलविदा ना कहे' 2.'जो जीवित हैं हमारे जेहन में'
संपादन- 'राष्ट्रीयता के विविध आयाम' दो भाग में

सम्मान : देश के विभिन्न सामाजिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संगठनों द्वारा पुरस्कृत एवं सम्मानित।

विदेश यात्रा : 13-15 जुलाई, 2007 को अमेरिका के न्यूयॉर्क में आयोजित 8वें विश्व हिंदी सम्मेलन में बिहार सरकार की ओर से भारतीय प्रतिनिधिमंडल में शामिल होकर सम्मेलन के शैक्षिक सत्र में 'वैश्वीकरण, मीडिया और हिंदी' विषय पर आलेख पाठ एवं परिचर्या में सक्रिय भागीदारी।

संप्रति : राष्ट्रीय महासचिव, राष्ट्रीय विचार मंच, दिल्ली
संस्थापक संपादक, 'विचार दृष्टि', दिल्ली

संपर्क : 'दृष्टि', यू. 207, शकरपुर, विकास मार्ग, दिल्ली-92
दूरभाष: 011-22530652, मो.-9431037221
'संस्कृति' ए-164, पार्क रोड ए.जी. कॉलोनी, शेखपुरा,
पत्र.-आशियाना नगर, पटना-800025,
मो.-9431037221, मो.-9472243949

संपादकीय

संपादक

प्रश्नोत्तर की परम्परा पुरानी है। भारतीय चिंतन और ज्ञान-सम्पदा का अधिकांश जिज्ञासा-समाधान पद्धति की देन है। उपनिषदों की सृष्टि इसी पद्धति से हुई। जिज्ञासा की अभिव्यक्ति प्रश्न-रूप में होती है और इसी से संवाद शुरू होता है। उत्तर संवाद को आगे बढ़ाता है। उत्तरदाता परीक्षार्थी भी हो सकता है और महान् ज्ञाता भी। 'महाभारत' के यक्ष-युधिष्ठिर संवाद में परीक्षक-परीक्षार्थी भाव प्रमुख है, किंतु 'गीता' के 'अर्जुन-कृष्ण' संवाद में शिष्य गुरु भाव।

शास्त्रार्थ संवाद का एक जुझारू योद्धा है। इसमें मामला बराबरी का होता है। यह प्रश्न से शुरू होता है और उत्तर नहीं देने पर खत्म होता है। इसका उद्येश्य है एक की पराजय पर दूसरे की जीत दर्ज करना। ज्ञात प्रमाणों के अनुसार अष्टावक्र के बाद शंकराचार्य का शास्त्रार्थ सर्वाधिक चर्चित रहा है। शास्त्रार्थ में पंडितों को पराजित करने की उनकी दिग्विजय-यात्रा दक्षिण से प्रारम्भ हुई थी और उत्तर भारत में अंतिम चुनौती के रूप में पंडित मंडन मिश्र एवं उनकी पत्नी भारती को पराजित करने के बाद भारत-विजय यात्रा बन गई। वल्लभाचार्य शुद्धाद्वैतवाद एवं पुष्टिमार्ग के प्रवर्तक थे। उनकी दक्षिण-विजय यात्रा भी शास्त्रार्थ के मध्यकालीन इतिहास की एक उल्लेख्य घटना है।

प्रश्न खड़ा करने वालों में परिवर्तन की भूख होती है और उत्तर देने वालों में विकल्प की तड़प। कबीरदास इस लिहाज से विलक्षण हैं कि वे स्वयं प्रश्न करते हैं और पंडितों-मुल्लाओं को निरूत्तर करते हुए वैकल्पिक समाधान का खूँटा गाड़ देते हैं। उनके प्रश्न समाज के ऊँच-नीच में, पंडितों-मुल्लाओं में, पढ़े-बेपढ़ों में संवादहीनता की बर्फीली जड़ता को तोड़ते हैं। आधुनिक भारत में बालगंगाधर तिलक, महात्मा गाँधी, यू. एन.

ढेबर एवं अन्य अन्य राष्ट्रीय नेताओं ने चिट्ठी-पत्री शैली में जनता के प्रश्नों के उत्तर देकर संवाद की लोकतांत्रिक प्रक्रिया का ठाह खड़ा किया। पुराने खेवे के साहित्यकार प्रेमचंद, निराला, हरिवंशराय बच्चन, दिनकर, मुक्तिबोध, जैनेन्द्र आदि प्रश्नोत्तर शैली को अपने साहित्यिक-दार्शनिक विचार, रचना-प्रक्रिया एवं निजता की अभिव्यक्ति के अनुकूल पाते थे।

20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में राजनीति, साहित्य, कला, विज्ञान या समाज विज्ञान की विभूतियों द्वारा चिट्ठी-पत्री में प्रश्नोत्तर देने की परम्परा लगभग थम-सी गई, लेकिन 'साक्षात्कार' विधा चलती रही। 'साक्षात्कार' प्रश्नोत्तर पद्धति का ही अधिक उत्कृष्ट साहित्यिक रूप है। यह विधा-विशेष में हैसियत के लिहाज से 'छोटे' एवं 'बड़े' के बीच का संवाद है, किन्तु सिद्धेश्वर जी ने अपनी साक्षात्कार पद्धति में इस सीमा को तोड़ा है।

श्री सिद्धेश्वर भारतीय लेखा एवं लेखा परीक्षा विभाग (Indian Audit & Accounts Department) के स्वैच्छिक सेवानिवृत्त अधिकारी हैं। आप बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के पूर्व अध्यक्ष थे। वहाँ आपने अपनी प्रशासनिक दक्षता का लोहा मनवाया। राष्ट्रीय चेतना की वैचारिक पत्रिका 'विचार-दृष्टि' का संस्थापक-संपादक होने का गौरव प्राप्त है। आपको विभिन्न प्रश्नकर्त्ताओं के विभिन्न विषयक प्रश्नों का उत्तर देकर प्रश्नोत्तर परम्परा को आगे बढ़ाने का श्रेय प्राप्त है। आप अपनी पीढ़ी में अकेले बड़े हस्ताक्षर हैं जिन्होंने एक नहीं, दर्जनों साक्षात्कार देकर समाज, शिक्षा, संस्कृति, धर्म और राजनीति के उलझे हुए सवालों को सुलझाकर रखा और अधीती विद्वानों को भी संतुष्ट किया। 'विचार-दृष्टि' के पाठक आपके संपादकीय और अग्रलेखों की विचारोत्तेजकता से परिचित हैं।

श्री सिद्धेश्वर की रुचि विधा-विशेष में नहीं, विधा-वैविध्य में है। इनका प्रखर राजनीतिक बोध रोज-रोज घटती घटनाओं के प्रति इन्हें सजग रखता है। ये अनुभव-सिद्ध लेखक हैं, वाग्मिता-सम्पन्न हैं और वैचारिक लड़ाई की धुरी को अपने पक्ष में मोड़ने की कला जानते हैं। लेखन की अकुलाहट इन्हें जमाने से बेचैन करती रही है। बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के अध्यक्ष पद को गरिमामयी ऊँचाई देकर स्वतः हट जाना और सृजन-कार्य में प्राणपण से जुट जाना इसका प्रमाण है। पिछले ही साल उनके 'अमृत' महोत्सव के अवसर पर 'कवि और कविता' एवं 'बुजुर्गों की जिंदगी' का लोकार्पण हुआ। लेखन में उनकी अहर्निश सक्रियता का ही परिणाम है कि आज उनकी निम्नलिखित पुस्तकें प्रकाशनाधीन हैं: 'दरिंदगी का दर्द', 'आम

आदमी की आवाज', 'राष्ट्रीयता: विविध आयाम', 'जीवन-रागिनी'(आत्मकथा), 'इंसानियत की धुआँती आँखें', 'राष्ट्रीय राजनीति', 'वैश्विक कूटनीति', 'उम्मीद जताते न्यायिक और आर्थिक फैसले'। यह पुस्तक 'हिंदी के जीवंत हस्ताक्षर' तो आपके हाथ में तुरन्त आने ही वाली है।

'हिंदी के जीवंत हस्ताक्षर' साक्षात्कार विधा की एक उल्लेखनीय पुस्तक है। यह समाज, राजनीति और धर्म के सारे पाखण्डों एवं विभ्रमों को तोड़ती है। यह समस्याओं की तह में झाँकती एवं उनके मानवीय पक्ष को उद्घाटित करती है। इसमें लेखक अपने महान् ऐतिहय के प्रति बेहद ईमानदार हैं। जो लोग परम्परा और विरासत से मुँह मोड़ चुके हैं, जो अपनी जड़ों से कट रहे हैं, उन्हें सिद्धेश्वर जी दोनों हाथों से पकड़कर यहाँ परम्पराभिमुख बनाते हैं। वे जानते हैं कि परम्परा से विच्छिन्न व्यक्ति का कोई इतिहास नहीं होता।

साहित्यिक विमर्श या राजनीतिक चिंतन के क्षेत्र में सिद्धेश्वर जी ने कोई झंडा गाड़ रखा है- इसका भ्रम उन्हें नहीं है, लेकिन पेचीदा सवालों से उलझने के दमखम एवं विचार को मानवीय संवेदनशीलता की तलछट में ले जाने की व्याकुलता के कारण इन्हें अलग पहचान अवश्य मिलती है। यह पुस्तक जिज्ञासाओं की समवेत अभिव्यक्ति एवं उत्तरों की समष्टि है।

इस कृति पर डॉ ब्रह्मचारी सुरेन्द्र कुमार, पद्मश्री डॉ. श्याम सिंह 'शशि', डॉ. नरेन्द्र शर्मा 'कुसुम', डॉ. राम निवास 'मानव' तथा प्रो. राज चतुर्वेदी की टिप्पणियाँ सिद्धेश्वर जी के बौद्धिक गाम्भीर्य एवं समसामयिक चिंतन-मनन को समझने में मदद करती हैं। इस पुस्तक के प्राण प्रश्नोत्तर में बसते हैं। जितने प्रश्न पैने हैं, लेखक के उत्तर उतने ही चुस्त और ज्ञानवर्द्धक। अन्त में, लेखक को बधाई और दीर्घ जीवन की कामना।

संपर्क:
मजिस्ट्रेट कॉलोनी
रोड नं.-4A, आशीयाना नगर,
पटना-800025

डॉ. बलराम तिवारी
पूर्व विभागाध्यक्ष, स्नातकोत्तर हिंदी विभाग
पटना विश्वविद्यालय, पटना

उत्तरदाता के उद्गार

सिद्धेश्वर

आदि मानव जब विशाल विश्व में उदित हुआ तो सर्वप्रथम उसके मन में अपने चतुर्दिक परिवेश को जानने एवं समझने की जिज्ञासा जाग्रत हुई। जिज्ञासा की पूर्ति के लिए उसने अपने साथी-संगी से संवाद स्थापित किया होगा। पीढ़ी-दर-पीढ़ी चले-संवादों के लम्बे सिलसिले से ही मनुष्य के भीतर बौद्धिक एवं हार्दिक विकास की मजबूत जमीन तैयार हुई। इस पर महात्माओं, संतों, विचारकों ने अपने उपदेश, व्याख्यान, लेखन, साक्षात्कार और प्रवचन से ज्ञान के जो बिरवे रोपे- वे ज्योति-तरू बनकर सदियों से हमारे समाज का मार्गदर्शन कर रहे हैं।

इस क्रम में विश्व के विभिन्न देशों में जो देवदूत, पैगम्बर, संत-महात्मा हुए, उनमें ईसा मसीह, हजरत मोहम्मद, सुकरात, महात्मा बुद्ध, भगवान महावीर, आचार्य शंकर, रामानुज, बल्लभाचार्य, महर्षि अरविंद, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, स्वामी दयानंद, संत तुकाराम, ज्ञानदेव, गुरुनानक, रामदास, संत कबीर, वेमना, सर्वज्ञ पुरन्दरदास, महात्मा गाँधी आदि विशेष रूप से स्मरणीय हैं।

इन संतों एवं महात्माओं ने अपने समुदायों के जिज्ञासुओं के प्रश्नों के उत्तर देना प्रारंभ किया और ऋषि-मुनियों ने अपने ज्ञानामृत को प्रश्नोत्तर के रूप में बाँटना आरम्भ किया। फिर क्या था, देश के अनेक प्रदेशों में आश्रम खुले जहाँ सभी समुदाय के लोग अपने मन में आलोडित प्रश्नों को उनके समक्ष लेकर आए और उनके उत्तर से समाधान पाकर संतुष्ट हुए। यह परंपरा विकसित होती गई और आज के इस सूचना एवं प्रौद्योगिकी के युग में समाचार माध्यमों के जरिए संघर्षशील मानव के लिए वह कितने अंशों में ग्राह्य है, यह प्रश्न अलग है, परंतु यह सत्य है कि विविध रूपों में आदिकाल से ही ज्ञान का प्रसार होता आ रहा है और उससे विश्व-समुदाय लाभान्वित भी हो रहा है।

कालक्रम में मानव-मन की जिज्ञासा से प्रश्न का जन्म हुआ जिसने उत्तर की अपेक्षा की। यह प्रश्नोत्तरी 'गीता' के रूप में भी अवतरित हुई।

श्रीकृष्ण गुरुरूप अर्जुन की रक्षा हेतु मार्गदर्शन करते हैं और वे सारथी बनकर प्रश्नोत्तर के माध्यम से विचार और दर्शन, आध्यात्मिक जीवन के मुख्य पहलू-ज्ञान, कर्म और भक्ति का मार्ग बताते हैं और धर्मयुद्ध में विजय प्राप्त होता है। तत्पश्चात् मूल्यवान विचार-मोती हाथ आते हैं। जहाँ तक हिंदी साहित्य का प्रश्न है साक्षात्कार हिंदी साहित्य की आज एक प्रमुख विधा हो गई है जिसके माध्यम से हिंदी के अनेक मूर्धन्य चिंतक, समीक्षक, कवि, निबंधकार, साहित्यकार ने जीवन के हर क्षेत्र पर अपने विचार प्रश्नोत्तर के रूप में व्यक्त किए हैं। इसी कड़ी में मुझसे किए गए साक्षात्कार के दौरान पूछे गए प्रश्नों के उत्तर के आधार पर तैयार यह पुस्तक प्रस्तुत है।

मैं अपने समकालीन सामाजिक परिवेश में होने वाले परिवर्तनों से आविष्ट रहता हूँ, जिनसे समाज का व्यापक विचार-जगत प्रभावित होता है। यही कारण है कि मेरे अभिन्न मित्र, शुभेच्छु, सहकर्मी, सहयोगी, साहित्यकार, पत्रकार, व्याख्याता, न्यायाधीश, अधिवक्ता तथा प्रबुद्धजन अपनी-अपनी जिज्ञासा लिए हमसे मिलने की कृपा करते हैं अथवा दूरभाष पर अपने सवालों को मेरे समक्ष प्रस्तुत कर उनके उत्तर की अपेक्षा करते हैं। मैं भी यथासंभव उनके प्रश्नों के उत्तर देकर उन्हें संतुष्ट करने का प्रयास करता हूँ। यही है इस पुस्तक की पृष्ठभूमि। प्रश्नकर्ताओं ने मुझसे साक्षात्कार के माध्यम से अपनी जिज्ञासा व्यक्त की है और वे अपने प्रश्नों के उत्तर प्राप्त कर मेरे विचारों से अवगत हुए हैं। इसी साक्षात्कार के जरिए प्रश्नोत्तरी को संगृहीत कर पटना विश्वविद्यालय, स्नातकोत्तर विभाग के पूर्व हिंदी विभागाध्यक्ष डॉ. बलराम तिवारी द्वारा संपादित प्रश्नोत्तर के आधार पर तैयार 'हिंदी के जीवंत हस्ताक्षर' पुस्तक आप पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है।

साहित्य की स्थिति में आस्था और निष्ठा रखने की वजह से ही हम उसके सृजन के विषय में आश्वस्त रहते हैं। साहित्य हमारे निकट जीवन की गंभीर अभिव्यक्ति है। साहित्य के प्रति इसी आस्था और निष्ठा ने सामाजिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों के अनेक प्रश्नों के समाधानों से मुझे बाँध रखा है। मैंने उसके उत्तर के माध्यम से प्रयास किया है कि जिनके स्वाधीन विचारों की नालियों में गंदगी आ गई है वह साफ हो जाए बजाए इसके कि उसे अपनी राह पर लाया जाए जो संभव नहीं है आज के दौर में। मैं इस बात को पाठकों के समक्ष इसलिए प्रस्तुत कर रहा हूँ, क्योंकि आज व्यक्ति स्वयं भूलता जा रहा है कि स्वयं उसका चेहरा अपने स्वरूप में कैसा था। वह याद करे कि उसे मायावी यथार्थ की स्वर्ण-मरीचिकाओं ने कैसे घेर लिया और

वह उसके पीछे भागा जा रहा है। दरअसल, आज मनुष्य का चिंतन व्यक्तिवाद पर खड़ा है, जो मनुष्य को तोड़ता है जोड़ता नहीं। मनुष्य जब अपनी स्मृति इतिहास के हाथों बेच देता है, तभी प्रगति की छलना प्रारंभ होती है।

मौजूदा दौर के भारतीय समाज का प्राय: हर व्यक्ति अपने जीवन में विभिन्न समस्याओं को लेकर सवालों-जवाबों के बीच घिरा रहता है। सच तो यह है कि उसका पूरा जीवन सवालों व जवाबों की पुँज है ठीक उसी प्रकार जैसे कोई पक्षी जब आकाश में उड़ान भरता है तो वह कुछ सवाल पूछता है और उसे जवाब की तलाश रहती है। जब वह शाम में अपने घोंसलों में वापस आता है, तब भी वह कुछ सवाल लिए होता है। उसी प्रकार मनुष्य भी चाहे वह राजनेता हों, साहित्यकार या पत्रकार, कलाकार हों या चित्रकार, किसान हो या मजदूर, सभी को अपने प्रश्नों के उत्तर चाहिए, क्योंकि वह उत्तर पाकर अपनी समस्याओं का समाधान निकालता है, परेशानियों से निजात पाता है और ताकत एवं प्रतिष्ठा हासिल करता है।

इस प्रकार जिज्ञासा की तृप्ति तथा सूचना एवं ज्ञान का आदान-प्रदान मानव ही नहीं प्राय: सभी प्राणियों के स्वभाव के प्रेरक अंग हैं जिसके परिणामस्वरूप हम घटनाओं, दुर्घटनाओं और रहस्यों आदि को जानने के लिए न केवल उत्सुक रहते हैं, बल्कि सूचना एवं ज्ञान आदि के आदान-प्रदान के लिए जिज्ञासु भी रहते हैं।

मैं यह नहीं कहता कि सब के सब प्रश्नकर्ता मेरे उत्तर से पूरी तरह संतुष्ट हो जाते हैं। प्रश्नकर्ता हों या विचारवान पाठक अपने समय और समाज की समस्याओं के किसी उत्तर से संतुष्ट नहीं हो जाते, बल्कि श्रेष्ठ साहित्य के जरिए निरंतर उनके नए और बेहतर उत्तर तलाशने का उद्यम करते रहते हैं जबकि अनेक अन्य लोग स्थापित मान्यताओं और उत्तरों से ही संतुष्ट रहते हैं। आपने देखा नहीं, वरिष्ठ तमिल लेखक प्रो. पेरूमल मुरगन ने अपने तमिल उपन्यास 'मादुरबागन' के भारी विरोध से खिन्न होकर जब अपनी मौत की घोषणा कर दी, तब बौद्धिक और लेखकीय समाज में गहरी प्रतिक्रिया हुई और दोनों पक्षों के प्रतिनिधि मामले को मद्रास उच्च न्यायालय ले गए। मद्रास उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की अध्यक्षतावाली प्रथम पीठ ने पुस्तक को प्रतिबंधित करने की माँग को खारिज करते हुए स्वीकार किया कि कलाएँ आम तौर पर भावनाओं को उद्वेलित करने वाली होती हैं, लेकिन वे सबके लिए नहीं होतीं, न ही समस्त समाज को उसे देखने

(पढ़ने) के लिए बाध्य ही करती हैं। पढ़ने का अधिकार हमेशा पाठक का होता है।

प्रष्टाओं के प्रश्नों के हमारे उत्तर के साथ भी यही बात लागू होती है। अगर किसी प्रश्नकर्ता या पाठक को मेरे उत्तर पसंद नहीं आते, तो उसे फेंक दे या उसकी आलोचना करे, लेकिन हमारे उत्तर देने और लिखने का अधिकार अक्षुण्ण है।

आज के परंपरागत समाज में जहाँ लोग आत्मकेंद्रित होते जा रहे हैं, क्या वैयक्तिकता उसके जीवन की समस्याओं का समाधान है? बहुलतावादी और बहुसांस्कृतिक एवं बहुधार्मिक इस देश में क्या असहिष्णुता को बढ़ावा दिया जा सकता है? क्या आर्थिक आजादी का रास्ता सुगम है? अदालतों में दशकों तक लंबित मामलों की स्थिति में क्या इस देश के गरीबों-वंचितों को न्याय मिलना संभव है? क्या बाजारवाद ने पूरे समाज को वस्तु में परिवर्तित नहीं कर दिया है? क्या मौजूदा व्यवस्था में हर वस्तु बिकाऊ और हर व्यक्ति खरीददार नहीं है? क्या पति, पर्दा और परिवार से आजाद होती स्त्री बाजार और बाजारवाद की जद में 'बाजारू' नहीं बन गई है? क्या गुमशुदा बच्चों के चेहरों पर मुस्कान का संदेश लेकर भारत लौटी मूकवधिर गीता के आने के बाद देश के हजारों गुमशुदा तथा अनाथ बच्चों के चेहरों पर मुस्कान आएगी? इन तमाम प्रश्नों से टकराना आज अपरिहार्य है। इन प्रसंगों को प्रष्टाओं के प्रश्नोत्तर के माध्यम से मैंने अपने विचारों को रेखांकित किया है और यथार्थ से पाठकों को अवगत कराया है कि किस प्रकार स्वार्थ, वंशवाद, परिवारवाद तथा येन केन प्रकारेण धनार्जन कर सत्ता की चाह ने राजनीतिक दलों एवं उसके राजनेताओं द्वारा समाज को व्यक्तिविहीन कर दिया है और आम जनता सत्तातंत्र की बंदी हो गई है। ऐसी विषम स्थिति में हम अपनी वाणी और विचारों को लोगों तक पहुँचाना चाहते हैं। इस प्रयास को सफल बनाने में साक्षात्कार के दौरान प्रबुद्धजनों द्वारा मेरे समक्ष प्रस्तुत प्रश्नों के उत्तर को संकलित कर तैयार यह पुस्तक अपनी भूमिका निभा सकती है।

मौजूदा दौर के भारतीय समाज में व्याप्त आधुनिकता और पश्चिमी संस्कृति के अँधानुकरण को मैं छिछले लोगों की छिछली मानसिकता का एक ज्वार भर मानता हूँ, जो समय के साथ उतर जाएगा, किंतु मुझे चिंता इस बात को लेकर है कि ज्वार अपने साथ-साथ क्या-क्या बहा ले जाएगा, किसे-किसे डुबोएगा और उतरने के पश्चात् तट पर निर्जीव सीप-घोंघे अथवा मोती न जाने क्या-क्या छोड़ेगा?

मेरा मानना है कि भारतीय समाज में आधुनिकता किसी वैचारिक क्रांति का प्रतिफल न होकर एक अँधानुकरण मात्र है जिसकी कोई वैचारिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि हमारे पास नहीं है। आधुनिकता के इस खेल में हमारी भारतीय संस्कृति और सांस्कृतिक पहचान दाव पर लगी हुई है। चिंता इस बात की है कि आधुनिकता की इस आँधी में बहकर हम अपनी सांस्कृतिक पहचान और गरिमा को कहीं मटियामेट तो नहीं कर रहे हैं? ऐसी स्थिति में हमारे भारतीय राष्ट्र का क्या होगा? इसीलिए तो इस पुस्तक के सांस्कृतिक खंड में कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा के कुलपति पद पर रहे डॉ. ब्रह्मचारी सुरेन्द्र कुमार जी के एक प्रश्न के उत्तर में चेतावनी के स्वर में मैंने कहा है,-"इस अपसंस्कृति से बचने के लिए हमें इसकी तत्काल समीक्षा करनी होगी, वरना जब अपसंस्कृति का जुनून चढ़ जाएगा, तो इसे रोकना मुश्किल होगा, क्योंकि अपसंस्कृति का यह एक ऐसा दलदल है जिसमें अगर इंसान एक बार फँस जाए, तो फँसता ही चला जाता है। मगर सौभाग्य से संस्कृत का उन्नयन हो जाय, तो इस अपसंस्कृतिरूपी दलदल से इंसान पीछा छुड़ा सकता है।"

एक सांस्कृतिक गरिमाविहीन राष्ट्र इस विराट भूमंडल पर जहाँ सैकड़ों अजगर इसे निगल जाने को मुँह फाड़े तैयार बैठे हों, कैसे अपनी आजादी और संप्रभुता की रक्षा कर पाएगा? आधुनिकता चाहे लाख अच्छी हो, किंतु आधुनिकता की यह कीमत नहीं दी जा सकती, दी जानी चाहिए भी नहीं। आखिर तभी तो इन्हीं सब सवालों को लेकर जब मुझे मौका मिला, तो मैंने बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के अपने अध्यक्ष के कार्यकाल में बोर्ड की ओर से लगातार तीनों साल पटना के श्रीकृष्ण स्मारक भवन के दोनों सभागारों के साथ-साथ तारामंडल सभागार में राष्ट्रीय स्तर पर आयोजित संस्कृत सम्मेलन में देश के कोने-कोने से संस्कृत एवं हिंदी के उद्‌भट्ट विद्वानों को सादर आमंत्रित कर हजारों सुधी श्रोताओं एवं संस्कृत से जुड़े शिक्षकों-प्राध्यापकों के बीच संस्कृत, संस्कार और संस्कृति के विभिन्न आयामों पर विचार-विमर्श और आधुनिकता पर विचार-मंथन कराया।

विभिन्न विषयों पर अपने उत्तर देने में न केवल अपने समय की कुटिलताओं को, राजनीति को, राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मुद्‌दों व समस्याओं को, समाज को, व्यक्ति को उसके पल-पल बदलते स्वरूप को ईमानदारी से हमने परखने की कोशिश की है, बल्कि उत्तर को अपने समय का आईना बनाने की पहल भी की है।

दरअसल, समाज में ऐसे बहुत सारे लोग हैं, जो मानसिक जगत में ही अपनी अकुलाहट में जीते हैं और उनके विचार, उनके मनोजगत में ही ज्वार-भाटे की शक्ल लेते हैं। वे उधेड़बुन में लगे रहते हैं, तो उलझने बढ़ जाती हैं और उनसे निजात पाने के लिए अँधेरे में ही निकल पड़ते हैं। ऐसी स्थिति में प्रष्टाओं द्वारा मेरे समक्ष प्रस्तुत प्रश्नों के उत्तर से अकुलाहट में जीते लोगों को न केवल राहत का अहसास होगा, बल्कि प्रष्टाओं की दमित इच्छाएँ भी तृप्त होंगी।

लोकतांत्रिक प्रणालीवाले भारत जैसे देशों में जहाँ व्यक्ति को वाणी की स्वतंत्रता प्राप्त है किताबों एवं अखबारों का महत्व सर्वाधिक है। यह निर्भीक जनतंत्र की वाणी है तथा दुनिया भर में हो रहे क्रियाकलापों का सच्चा दर्पण है जिसने आजादी के पूर्व और आजादी के बाद भारतवर्ष की राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने में आशातीत योगदान दिया है। पुस्तकें मार्गदर्शक के तौर पर भी काम करती हैं।

रचनाकार हो या पत्रकार उसने अपने जीवन-प्रवाह में जो मानवीय अनुभव प्राप्त किए हैं वे उसके जीवन की वास्तविकताओं की दिशाओं को न केवल मोड़ते हैं, बल्कि उनके मन में कदम-कदम पर प्रश्नों की रचना करते हैं। इसलिए जब ऐसे लोग व्यक्तिगत जीवन में उत्पन्न प्रश्नों का उत्तर खोजते हैं, तो व्यक्ति और समाज के संबंधों में उपस्थित होने वाले अंतर्विरोध को सुलझाने की प्रक्रिया में समकालीन सामाजिक-राजनीतिक एवं सांस्कृतिक संदर्भों और ऐतिहासिक विकास से जुड़े बिना नहीं रह सकते। ऐसे लोगों के प्रश्नों के उत्तर देने के दौरान मैंने अपने अनुभूत जीवन की निरंतरता में से जीवन-खंडों को उठाकर अभिव्यक्ति दी है और साक्षात्कार को जीवंतता एवं विविधता दी है। कहने की आवश्यकता नहीं कि साक्षात्कार में इस देश की जनता के दुख:, संघर्ष, आकांक्षाओं को अंकित करने का प्रयत्न किया गया है। मुझे पूरी उम्मीद है कि आने वाले समय में एक ओर जहाँ 'हिंदी के जीवंत हस्ताक्षर' में प्रष्टाओं के उत्तर में भारतीयता के उजास में काले धब्बे लगते जाने की वजह से साहित्य, भाषा, शिक्षा तथा पत्रकारिता जैसे विषयों पर मैंने अपनी दृष्टि डाली है, वहीं दूसरी ओर अपनी दूसरी कृति 'इनसानियत की धुँआती आँखें' में मैंने इन्सान की पीड़ा को उजागर करने की कोशिश की है, क्योंकि बंजर धरती को उर्वर बनाने की चुनौती स्वीकारना ही सर्जक का सबसे बड़ा धर्म है। राह कठिन है, इसके बावजूद मेरा विश्वास दृढ़ है। ऐसे वक्त मुझे याद आ रही हैं डॉ. शिवमंगल सिंह

'सुमन' की कविता के संकलन 'विश्वास बढ़ता गया' की निम्न पंक्तियाँ-

'पथ की सरलता देखकर, दो-चार डेग जब बढ़ गया
तंब दृष्टि पथ के सामने, आकर हिमालय अड़ गया
पग के अथक अभ्यास पर, विश्वास बढ़ता ही गया।'

इसी प्रकार 'राष्ट्रीय राजनीति' नाम्नी कृति में जहाँ भारतीय राष्ट्रवाद, आरक्षण से जुड़े सवाल, राष्ट्रीय एकता और अखंडता, धर्मनिरपेक्षता, इसरो की सफलता आदि राष्ट्रीय मुद्दों से संबंधित प्रश्नों के उत्तर दिए गए हैं, वहीं मौजूदा दौर की भारतीय राजनीति की वर्तमान स्थिति के विभिन्न पहलुओं पर उत्तर केंद्रित हैं। साक्षात्कार के आधार पर तैयार 'वैश्विक कूटनीति' नाम्नी पुस्तक में राजनीतिक एवं वैश्विक कूटनीति से जुड़ी जिज्ञासाओं के सवाल-जवाब सहज अंदाज में प्रस्तुत हैं। पाँचवी पुस्तक 'उम्मीद जताते न्यायिक एवं आर्थिक फैसले' में खास तौर पर सर्वोच्च न्यायालय और सरकार के आर्थिक मामलों से जुड़े फैसलों पर विस्तार से सवालों के उत्तर दिए गए हैं, क्योंकि भारतीय नागरिकों की उन फैसलों से उम्मीदें बढ़ी हैं। कुल मिलाकर देखा जाए तो साक्षात्कार के दौरान अबतक कुल एक हजार एक सौ ग्यारह प्रश्नों के उत्तर मैं दे चुका हूँ।

इसी संदर्भ में मैं इस बात को भी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करना लाजिमी समझता हूँ कि हमें जो साहित्यिक परिवेश मिला है उसे निर्मित करने में हमसे पहले के बेशुमार साहित्यकारों का गहरा योगदान है। मेरी यह कोशिश रहती है कि उनके योगदान और उनके कृतित्व को याद रखूँ और उस धारा को सूखने से बचाए रखूँ, जो हमें सरसब्ज बनाए रखती है और हमारे बाद आने वालों को भी सरसब्ज बनाए रखेगी।

इस कृति की सार्थकता अवश्य सिद्ध होगी, क्योंकि प्रष्टाओं के उत्तर में मैंने इंसानियत की धुँआती आँखों की पीड़ा को उकेरा है। प्रस्तुत पुस्तक का संपादन करने में हिंदी साहित्य के अध्येता और पटना विश्वविद्यालय, स्नातकोत्तर हिंदी विभाग के पूर्व अध्यक्ष डॉ. बलराम तिवारी ने जिस विद्वता का परिचय दिया है उसके लिए मैं उनके प्रति तहेदिल से आभार व्यक्त करता हूँ। महिला महाविद्यालय, सांगनेर, जयपुर के पूर्व प्राचार्य और वरेण्य साहित्यकार डॉ. नरेन्द्र शर्मा 'कुसुम' ने अपने अभिमत तथा हिसार(हरियाणा) के पूर्व हिंदी विभागाध्यक्ष डॉ. राम निवास 'मानव' ने अपनी शुभाशंसा से हमारा मनोबल बढ़ाया है। मैं कृतज्ञ हूँ उनका।

संपादक-मंडल के सदस्यों में माखन लाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता

एवं संचार विश्वविद्यालय, भोपाल के नोयडा केंद्र के एसोसिएट प्राफेसर डॉ. अरुण कुमार भगत, बिहार सरकार के राजभाषा पदाधिकारी एवं सुप्रसिद्ध कथाकार डॉ. शाहिद जमील, भारतीय राजनीति और वैश्विक मामलों के बेबाक टिप्पणीकार विजय कुमार सिंह, आयुर्वेद संस्कृत उच्च विद्यालय, आरा के प्रधानाध्यापक अखिलेश्वर प्रसाद, पूर्णिया के भाई उपेन्द्रनाथ सागर, राष्ट्रपति से पुरस्कृत सुपौल के आचार्य रामविलास मेहता तथा मेरे सहकर्मी सुरेश कुमार सिन्हा ने इस पुस्तक के संपादन में सराहणीय सहयोग प्रदान कर इसे पठनीय बनाया है। मैं आभारी हूँ आप सबका। इसी प्रकार इस पुस्तक की प्रस्तुती में विभिन्न विषयों पर जिन विद्वत्जनों ने हमसे साक्षात्कार के दौरान कुल 234 प्रज्ञापूर्ण समसामयिक प्रश्न पूछकर उत्तर की अपेक्षा की वे सभी मेरे सम्मानीय हैं, नमनीय हैं। मै सबके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। छोटे भाई तुल्य अमित ने अथक परिश्रम से प्रश्नोत्तर को कम्प्यूटर पर शब्द संयोजन कर इसे मुद्रण योग्य बनाने में अपने धैर्य का परिचय दिया जिसके लिए वह धन्यवाद के पात्र हैं। मैं अपने उन सभी सहयोगियों, मित्रों एवं शुभेच्छुओं के प्रति आभार प्रकट करता हूँ जिन्होंने प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से सहयोग एवं सुझावों से इसका सौष्टव बढ़ाया है। अंत में मैं अपनी अर्द्धांगिनी श्रीमति बच्ची प्रसाद के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना इसलिए नहीं भूल सकता, क्योंकि बीच-बीच में उन्होंने 'आप कलम चलाने के अलावे कुछ नहीं करते' जैसे व्यंग्य-वाण चलाते हुए भी मुझपर न केवल अपने स्नेह की बारिश की है और प्रष्टाओं के आवभगत में कोई कमी नहीं की है, बल्कि मेरी जिम्मेदारी के कार्यो को भी अपने कंधों पर लेकर मुझे कलम चलाते रहने के लिए मुक्त किए रखा है जिसके लिए मैं उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

(सिद्धेश्वर)
संस्थापक-संपादक
'विचार दृष्टि'
'दृष्टि', यू.207, शकरपुर,
विकास मार्ग, दिल्ली-92

संपर्क:
पूर्व अध्यक्ष, बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड
'संस्कृति', ए-164
ए.जी.कॉलोनी, शेखपुरा,
पटना-25, मों.-9431037221

अभिमत

विषयों को समग्रता में समझने के लिए यह जरूरी पुस्तक

□ प्रो. राज चतुर्वेदी

चिंतक एवं विचारक तथा 'विचार दृष्टि' के संस्थापक संपादक सिद्धेश्वर जी यों तो अपनी राजनीतिक टिप्पणियों के लिए जाने जाते हैं खासतौर हिंदी पट्टी के लिए उनकी सामाजिक-राजनीतिक टिप्पणियाँ खासा मायने रखती हैं, मगर पटना विश्वविद्यालय, स्नातकोत्तर विभाग के पूर्व अध्यक्ष डॉ. बलराम तिवारी जी के संपादकत्व में प्रकाशित प्रस्तुत पुस्तक-'हिंदी के जीवंत हस्ताक्षर' में सिद्धेश्वर से साक्षात्कार के दौरान इन्होंने व्यक्तिगत, साहित्यिक, शैक्षिक, भाषिक, नैतिक और पत्रकारिता से संबंधित प्रश्नों के जो उत्तर दिए हैं उनमे सच्चाई का खुलासा तो हुआ ही है, इस पुस्तक को पढ़ने पर पता चलता है कि इन्होंने प्राय: सभी विषयों के सत्य का उद्‌घाटन करने की पूरी ईमानदारी से कोशिश की है जिसके परिणामस्वरूप संदर्भित विषयों को समग्रता में समझने के लिए यह एक उल्लेखनीय, अनिवार्य और जरूरी पुस्तक बन गई है। हिंदी में इस तरह की गहनतम रूप से शोधपरक, विश्लेषणात्मक और खोजी पुस्तक की जरूरत महसूस की जाती रही है। इस दृष्टिकोण से भी इस पुस्तक का स्वागत किया जाना चाहिए कि एक ओर जहाँ यह बार-बार पढ़ने की भूख जगाती है, वहीं दूसरी ओर एक साहित्यिक, भाषिक और शैक्षिक दौर को इनके उत्तर में सच्चाई के साथ उभार दिखता है। कुछ इसी वजह से उनकी निजता का मौलिक स्वर भी हमें उनसे जोड़ता है।

सिद्धेश्वर जी की लेखकीय और वैचारिक तथा बौद्धिक ईमानदारी इनकी पुस्तकों में स्पष्ट नजर आती है जो बदलाव और आंदोलन के लिए आज़ जरूरी है। इनके उत्तर उदात्त रूप से मूलत: लोकतांत्रिक हैं और इनसे किए गए साक्षात्कार से मानव-साक्षात्कार स्पष्ट रूप से उजागर होता है। यह एक चारित्रिक और वैचारिक शून्यता को बहुत कुछ भरता प्रतीत होता है, क्योंकि अपनी सोच में वे हमेशा स्पष्ट दिखते हैं। एक रास्ता बंद होने पर वे दूसरा रास्ता खोज निकालते हैं। इस मायने में सिद्धेश्वर जी अपने समकालीनों में अपवाद हैं। आखिर तभी तो प्रस्तुत पुस्तक के विद्वान संपादक

डॉ. बलराम तिवारी जी ने भी अपने संपादकीय में लिखा है कि साक्षात्कार विधा-विशेष में हैसियत के लिहाज से 'छोटे' एवं 'बड़े' के बीच संवाद पद्धति की सीमा को सिद्धेश्वर जी ने तोड़ा है और विभिन्न प्रश्नकर्ताओं के विभिन्न विषयक प्रश्नों के उत्तर देकर प्रश्नोत्तर परम्परा को आगे बढ़ाने का श्रेय इन्हें प्राप्त है तथा वे अपनी पीढ़ी में अकेले बड़े हस्ताक्षर हैं जिन्होंने एक नहीं, दर्जनों साक्षात्कार देकर समाज, शिक्षा, संस्कृति धर्म और राजनीति के उलझे हुए सवालों को सुलझाकर रखा और अधीती विद्वानों को भी संतुष्ट किया।

खरी-खोटी और सही-सही बातें करना और अपने लेखन में सच्चाई को उजागर करना तो इनकी फितरत में है। एक प्रश्न के उत्तर में सिद्धेश्वर जी कहते हैं-अगर कुछ को अपवाद के रूप में छोड़ दें, तो बाकी आज के रचनाकारों में देश के प्रति वह प्रेम, ओजस्विता नहीं दिखती जो राष्ट्रीयता का भाव-बोध लिए लेख या कविता जहाँ हमें मैथिलीशरण गुप्त, महाप्राण निराला, जयशंकर प्रसाद, रामधारी सिंह 'दिनकर', गोपाल सिंह 'नेपाली' और राही मासूम रजा जैसे महाकवियों के राष्ट्रप्रेम से ओत-प्रोत स्वरों में दिखता था। आज के अधिकतर रचनाकार राजनैतिक कारणों से उपजे किसी न किसी 'वाद' या 'विमर्श' को लेकर चलते हैं। ये आज की समस्या का समाधान निकालने की बात नहीं करते, बल्कि उस समस्या को और बढ़ा-चढ़ाकर उजागर करते हैं।

विगत कुछ वर्षों में घर, रिश्ते, परिवार और समाज जिस तरह से हाशिए पर चले गए हैं और साहित्य के विमर्शों में जिसका जिक्र तक नहीं हुआ, सिद्धेश्वर जी की बारीक नजर लगातार इसका पीछा कर रही है और हर कोण से पकड़ने का प्रयास भी। उन्होंने स्मृतियों और पुराणों तक इसको खंगाला और संवेदना के दृष्टिकोण से महसूस किया। आखिर तभी तो 'जीवन रागिनी' नामक आत्मकथा और हाइकु काव्य में 'मेरी जीवन-यात्रा' नाम्नी आत्मकथा में अपनी स्मृतियों में संजोए घटनाक्रमों एवं संस्मरणों को बड़ी संजीदगी से पाठकों के समक्ष उन्होंने प्रस्तुत किया है। इन आत्मकथाओं में बिखरा हुआ समय अपने पूरे वजूद के साथ उस बिंब को रचता है, जो समय की आँच में कहीं बिला गया है।

इसी प्रकार 'आम आदमी की आवाज' नाम्नी इनकी पुस्तक में बहुत ही बारीकी से रेखांकित वर्तमान समय की जटिल राजनीति से दो-दो हाथ करने की जिजीविषा को महसूसा जा सकता है। इनमें व्याप्त अभिव्यंजना की

संश्लिष्टता को भी देखा जा सकता है, जो जाने-अनजाने हमारे जीवन को प्रभावित करते हैं। प्रस्तुत पुस्तक 'हिंदी के जीवंत हस्ताक्षर' सिद्धेश्वर जी के व्यक्तिगत प्रश्नों से संबंधित उत्तर इतिहास, राजनीति, सरकारी सेवा और सार्वजनिक जीवन का रसायन तो है ही, किन्तु इस रसायन में गहन अनुभूतियों की खुशबू को घोला गया है, तभी तो ये जीवन की मरमरी खुशबू से आप्त हैं। इनकी संरचना इतनी संश्लिष्ट है कि भावों और विचारों की धीमी आँच में तपी हुई लगती है। इतनी उत्कृष्ट कृति के लिए लेखक को बधाई और दीर्घायु होने की मंगलकामना।

संपर्क-'राजहंस',23 चंद्रपथ, सूरजनगर (प.) जयपुर-6, राजस्थान

प्रो. राज चतुर्वेदी
जयपुर, राजस्थान

अभिमत

सिद्धेश्वर के शब्द-कर्म को चिंहित करती कृतियाँ

□पद्मश्री डॉ. श्याम सिंह 'शशि'

राष्ट्रीय विचार मंच के राष्ट्रीय महासचिव तथा दिल्ली से प्रकाशित उसके मुख-पत्र 'विचार दृष्टि' के संस्थापक संपादक सिद्धेश्वर जी एक संघर्षशील संगठनकर्ता के रूप में तो हमलोगों के बीच परिचित हैं ही वैचारिक रूप से भी बौद्धिकजनों के बीच इन्होंने अपनी एक छाप छोड़ी है। अतीत की पड़ताल, वर्तमान सामाजिक एवं राजनीतिक संकटों की समझ और आगे की दिशा निर्धारण में भी बहुत गंभीरता और जिम्मेदारी के साथ बाहर और भीतर की लड़ाईयों को ये समझ लेते हैं। दरअसल, सिद्धेश्वर जी में यथार्थ को तटस्थ रूप से देखने की क्षमता है और विवेक भी। काफी लगन, निष्ठा और ईमानदारी से ये अपने कर्तव्य का निर्वह्ण करते हैं। आखिर तभी तो बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के राज्य मंत्री का दर्जा प्राप्त अध्यक्ष का दायित्व तीन साल तक निभाने के पश्चात् उसे छोड़कर लेखन के कार्य में लग गए और विगत तकरीबन छह वर्षो में इनकी एक दर्जन पुस्तकों की पांडुलिपियाँ तैयार हो चुकी हैं जिसमें से 'कवि और कविता' तथा 'बुजुर्गो की जिंदगी' नाम्नी इनके दो हाइकु संग्रहों का लोकार्पण विगत 14 मई, 2017 को पटना में राष्ट्रीय विचार मंच की ओर से इनके ए. जी. कॉलोनी स्थित 'संस्कृति' निवास की संस्कृति वाटिका में सुधी साहित्यकारों एवं प्रबुद्धजनों के बीच संपन्न हुआ। सिद्धेश्वर जी की जीवन-यात्रा के पचहत्तर वर्ष पूरे होने के उपलक्ष्य में आयोजित अमृत महोत्सव के अवसर पर पुस्तक लोकार्पण समारोह में पधारे बिहार विधान परिषद के भाजपा नेता माननीय गंगा प्रसाद ने उन्हें दीर्घायु होने की मंगल कामना करते हुए सिद्धेश्वर जी को शॉल ओढ़ाकर अपनी शुभकामना व्यक्त की। संयोग ऐसा कि उसके कुछ ही महीने बाद गंगा प्रसाद जी को मेघालय का राज्यपाल महामहिम राष्ट्रपति जी के द्वारा नियुक्त किया गया। उल्लेख्य है कि महामहिम राज्यपाल गंगा प्रसाद जी एक लंबे अरसे से सिद्धेश्वर जी द्वारा सामाजिक क्षेत्रों में किए जा रहे कार्यो में तहेदिल से सहयोग करते रहे हैं।

मेरा मानना है कि किसी व्यक्ति का अभ्युदय बिना कारण के नहीं

होता। सिद्धेश्वर जी द्वारा सामाजिक एवं साहित्यिक क्षेत्रों में किए जा रहे कार्य साफ-साफ दिख रहे हैं। इन्होंने अपनी कर्तव्य परायणता से यह सिद्ध कर दिया कि इन्हें किसी रहमोकरम की भीख नहीं चाहिए। इसीलिएं तो लोकतांत्रिक व्यवस्था के तहत देशवासियों के नागरिक हकों की दरकार के लिए रेलवे हिंदी सलाहकार समिति तथा राष्ट्रीय विचार मंच की ओर से पूरे भारत का दौरा कर लोगों में चेतना जागृत करने का प्रयास सिद्धेश्वर जी करते रहे हैं और राजभाषा हिंदी के प्रचार-प्रसार में अनवरत रूप से लगे हैं। इसी के परिणामस्वरूप सिद्धेश्वर जी से साक्षात्कार के दौरान व्यक्तिगत एवं साहित्यिक प्रश्नों से लेकर शैक्षिक, भाषिक, पत्रकारिता तथा नैतिक प्रश्नोत्तरों को संगृहीत कर पटना विश्वविद्यालय स्नातकोत्तर हिंदी विभाग के विद्वान पूर्व विभागाध्यक्ष डॉ. बलराम तिवारी के संपादन में एक अच्छी 'हिंदी के जीवंत हस्ताक्षर' नाम्नी कृति के साथ अन्य पाँच-छह पुस्तकें शीघ्र ही लोगों के समक्ष आने को हैं।

सिद्धेश्वर जी ने इन सारी कृतियों में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, न्यायिक एवं सांस्कृतिक तथा वैचारिक लोकतंत्र पर जोर दिया है। इनकी प्रगतिशील विचारधारा से ही क्रांतिकारी विमर्श आगे बढ़ सकेगा, ऐसा मेरा विश्वास है, क्योंकि राजनीति में भी समाज के निम्न एवं मध्य वर्ग की भागीदारी बढ़ी है और उसी से नेतृत्व भी उभरा है। आज राजनीति में उनका महत्व बढ़ा है, पर यह चिंता की बात जरूर है कि आज राजनीति में जातीय अस्मिताओं ने उनको अलग-थलग कर दिया है। वैसे भी चुनौतियाँ वंचित वर्गों के सामने शुरू से रही हैं।

साहित्य के मौन-साधक सिद्धेश्वर जी की इधर हाल की कृतियों में अनेक रचनाकारों ने अनगिनत आत्मीय रिश्तों को उद्घाटित कर उनके बहुआयामी रचनात्मक पक्षों की पहचान प्रस्तुत की है जिसमें उनके व्यक्तिगत रिश्ते-नाते ही नहीं, प्राय: साहित्य और समाज के सरोकार भी हैं। मैं भी मानता हूँ कि साहित्य की साक्षात्कार विधा के इनके पाँचों संकलन यथा 'हिंदी के जीवंत हस्ताक्षर', 'इंसानियत की धुँआती आँखें','राष्ट्रीय राजनीति', 'वैश्विक कूटनीति' और 'उम्मीद जताते न्यायिक एवं आर्थिक फैसले' वस्तुत: सिद्धेश्वर जी का जिंदगीनामा है जो इनके शब्द-कर्म को भी चिंहित करते हैं।

यह देखकर मुझे बड़ा हर्ष हो रहा है कि सिद्धेश्वर जी निरंतर प्रगति के पथ पर अग्रसर हैं। आपके पास जहाँ स्पंदनशील हृदय है, वहीं वस्तु को

देखने वाले सूक्ष्म ज्ञान के नयन भी हैं। राष्ट्रीय विचारधारा से प्रवाहित इन पाँचों कृतियों का मैं स्वागत करता हूँ, क्योंकि भावना और विचार की दृष्टि से इनमें वैयक्तिकता, राष्ट्रीयता, सरसता और इनके नाम के अनुरूप सिद्धहस्ता है।

डॉ. बलराम तिवारी सहित डॉ. नरेन्द्र शर्मा 'कुसुम', डॉ. राम निवास 'मानव' तथा अनेक सुपरिचित हिंदी साहित्य के मूर्धन्य विद्वानों द्वारा सिद्धेश्वर जी से साक्षात्कार के दौरान प्रस्तुत प्रश्नोत्तर के संकलन में संपादक का संयत और सुविचारित संपादन सराहनीय है। सिद्धेश्वर जी द्वारा विभिन्न विषयों पर दिए गए विचार सुस्पष्ट, बेबाक, संतुलित और गंभीर तथा सरस हैं जिसकी मैं मुक्त कंठ से प्रशंसा करता हूँ। समाज और राजनीति में व्याप्त विसंगतियों के साथ ही सभ्यता, संस्कृति तथा धर्म के संदर्भ में सिद्धेश्वर जी के उत्तर इनके रचना-कर्म के हिस्से हैं जो सत्यान्वेषण और आमजन की मुक्ति की आकांक्षा को स्वर प्रदान करते हैं।

मुझे खुशी इस बात की है कि सिद्धेश्वर जी जैसा साहित्यिक सज्जन यदि वर्तमान दौर की राजनीति में नैतिकता के साथ रुचि ले रहा है तो इसका सीधा अभिप्राय है कि वह देश की राजनीति के प्रति जागरूक तो है ही राष्ट्रीय जीवन के प्रति उत्तरदायी व जिम्मेदार भी। यदि साहित्यिक सज्जनता इसी प्रकार जारी रही तो हमारे राष्ट्र को जर्मनी और इटली की तरह पछताना नहीं पड़ेगा जैसे वे प्रथम महायुद्ध के पश्चात् पछताए थे। आज के वातावरण में जो साहित्यिक प्रकृति का व्यक्ति राजनीति से अलग रहकर स्वतंत्र और स्वयं को सज्जन कहने का दावा करता है वह मेरी समझ से दंभी और स्वार्थी है जिसे राष्ट्र की चिंता तनीक नहीं है, कारण कि हमारे राष्ट्र का यौवन राजनीति के दंगल में संघर्ष कर रहा है, कुश्ती लड़ रहा है, मगर साहित्यिक सज्जन भूल गया है कि वह राजनीतिक शैक्षणिक संस्थान की नैतिकता का प्राध्यापक है। सिद्धेश्वर जी ऐसे साहित्यिक सज्जनों के अपवाद स्वरूप हैं, क्योंकि इन्होंने लोकतंत्र की रक्षा के लिए तंत्र का सुदृढ़ होना परमावश्यक समझा है। इतनी अच्छी कृति में सिद्धेश्वर जी के विचार स्वागत योग्य हैं। मैं उन्हें हार्दिक बधाई देता हूँ और दीर्घायु होने की कामना करता हूँ।

डॉ. श्याम सिंह 'शशि'
पूर्व महानिदेशक, प्रकाशन विभाग,
भारत सरकार, नई दिल्ली

संपर्क:
'अनुसंधान', बी-4/245
सफदरजंग इन्क्लेव, नई दिल्ली
मो. 9818202120

साहित्य और समाज के प्रति गहरी समझ का परिचायक

□ डॉ. नरेन्द्र शर्मा 'कुसुम'

अपनी सृजनात्मकता के जरिए साहित्य जगत, पत्रकारिता, संगठन और राजनीति में निरंतर अपनी उपस्थिति दर्ज कराते रहने वाले सिद्धेश्वर जी एक ऐसे जीवंत साहित्यकार हैं जिनकी साहित्य और समाज के प्रति गहरी समझ है और इनके अध्ययनशील व्यक्तित्व से लोगों ने बहुत कुछ सीखा है। इनकी अबतक डेढ़ दर्जन पुस्तकें साहित्य की विभिन्न विधाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं। ये अपनी कृतियों के माध्यम से वर्तमान व्यवस्था की विसंगतियों पर प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष प्रश्न चिह्न लगाते रहते हैं। इनका लेखन एक चुनौती प्रस्तुत करता है। साक्षात्कार के आधार पर तैयार पुस्तकें-'हिंदी के जीवंत हस्ताक्षर' के अतिरिक्त इंसानियत की धुँआती आँखें, राष्ट्रीय राजनीति, वैश्विक कूटनीति और उम्मीद जताते न्यायिक एवं आर्थिक फैसले इसके ज्वलंत उदाहरण हैं जिनमें विविध विषयों पर चार दर्जन से अधिक प्रबुद्धजनों एवं पत्रकारों द्वारा इनके समक्ष प्रस्तुत प्रश्नों के उत्तर से इनके सुलझे विचार स्पष्ट नजर आते हैं। सच को सच कहने वाले सिद्धेश्वर जी कई सच का बयान करते-करते कड़वाहटें भी बटोर लेते हैं, लेकिन ये उसकी परवाह कतई नहीं करते। यही तो एक सच्चे साहित्यकार की विशेषता है, जो इनमें कूट-कूटकर भरी है। दूसरी बात यह है कि ये बिना किसी लाग-लपेट के अपनी बात कहने के आदी हैं।

समाज के बदलते परिदृश्य के आलोक में शांति एवं सद्भावना बनाए रखने में सिद्धेश्वर जी सरीखे साहित्यकार एवं सामाजिक कार्यकर्ता की महत्वपूर्ण भूमिका है, क्योंकि ऐसे ही साहित्यकार बेहतर समाज के निर्माण में लोगों का मार्गदर्शन कर सकते हैं और अच्छे पथ-प्रदर्शक हो सकते हैं। यद्यपि सिद्धेश्वर जी के अबतक के परिश्रम, संघर्ष और तेवर को देखकर आश्वस्त हुआ जा सकता है कि विरोधियों के साथ सामंजस्य बिठाने का कौशल तो इस लेखक के पास है ही विपरीत परिस्थितियों में रचनाधर्मिता के निर्वाह का हुनर भी। अत: भविष्य में भी इनकी रचनाओं से रू-ब-रू

होने की उम्मीद की जा सकती है। सिद्धेश्वर जी में न केवल राजनीतिक विवेक है, बल्कि उनकी भाषा की स्पष्टता और सौंदर्य भी आकृष्ट करता है। सामाजिक प्रतिबद्धता तो उनमें है ही, लोकतंत्र की भावना के अनुरूप उनके संपूर्ण प्रश्नोत्तर के केंद्र में वह 'लोक' है, जो अपने मूल अधिकारों के लिए संघर्ष कर रहा है, लेकिन अभी तक उस पूँजी के क्रूर पंजों से मुक्ति नहीं मिली है। सिद्धेश्वर जी ने अपने वर्तमान समय-समाज की द्वंद्वात्मक गतिकी का पट, संवेदनात्मक ज्ञान और ज्ञानात्मक संवेदनों के ताने-बाने से बुना है। वर्तमान समाज और समय की घनघोर विषमता के अनेक कारुणिक चित्र इनके प्रश्नोत्तर में मिलते हैं। साथ ही इनके स्थायी दर्द का करुण वर्णन भी है।

मुझे इस बात की खुशी है कि विगत कई वर्षो से हमदोनों को राष्ट्रीय चेतना की वैचारिक संस्था-'राष्ट्रीय विचार मंच' और इसके मुख-पत्र--'विचार दृष्टि' के साथ-साथ आचार्यश्री तुलसी द्वारा स्थापित 'अणुव्रत' के माध्यम से एक साथ काम करने का मौका मिला है। इस दरम्यान मैंने देखा है कि नि:संदेह सृजन और पत्रकारिता के अतिरिक्त सार्वजनिक जीवन में अपनी तरह की नयी राहों पर चलते हुए इन्होंने अपने रचनात्मक व्यक्तित्व को एक अलग ही आकार में ढाला और अपने दृष्टिकोण को एक नई धार दी है। आखिर तभी तो इनकी कृतियों में राजनीति, साहित्य, पत्रकारिता, धर्म-अध्यात्म, समाज, संस्कृति, सांप्रदायिकता, झूठ-फरेब, स्वार्थपरता, भ्रष्टाचार और शोषण एवं उत्पीड़न पर दो टूक उत्तर देते हुए ये अपने नैतिक उत्तरदायित्व को महसूस करते दिखाई देते हैं और ये हर तरह की फिरकापरस्ती-प्रवृत्ति से ऊपर उठकर उस गलती पर पूरे जोर-जोर से आघात करते हैं, चाहे संबंधित व्यक्ति कितने ही ऊँचे ओहदे पर क्यों न बैठे हों। इनकी पुस्तकों के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि सिद्धेश्वर जी चीजों को किसी पर्दे की आड़ से नहीं देखते और अपने अनुभवों तथा अनुभूतियों को सच के तीखेपन से खुली अभिव्यक्ति देते हैं। इन्हें यह भी डर नहीं कि कल अगर मौजूदा समीकरण में कोई फेर-बदल हो, तो इन्हें अपना बयान बदलने की जरूरत पड़ सकती है जैसा कि आज आए दिन राजनेताओं के बयानों में देखने-सुनने को मिल रहा है। इसके लिए इनकी खुबियों के साथ-साथ इनकी राजनीतिक समझ की भी दाद देनी पड़ती है। यद्यपि सिद्धेश्वर जी सक्रिय राजनीति से कभी कतराते नहीं और ये राजनीतिक गतिविधियों पर भी अपनी पैनी नजर डालते रहते हैं जिसे आप पाठक इस कृति के राजनीतिक प्रश्नोत्तर अध्याय

में स्पष्ट देख-पढ़ सकते हैं। यही नहीं ललित एवं व्यक्तिगत निबंधों में महारत हासिल करने वाले सिद्धेश्वर जी के निबंधों को पढ़कर भी पाठक इनकी मानसिकता से परिचित हो सकते हैं।

यह सच है कि सीधी, बेलाग स्पष्टता सिद्धेश्वर जी की अभिव्यक्तियों एवं रचनाओं का वह खास गुण है जिसकी वजह से पाठक इनकी नियत में कभी संदेह नहीं कर सकता। इनकी अभिव्यक्तियाँ पूरे तौर पर प्रासंगिक हैं। बड़ी साफगोई, सच्चाई और जिंदादिली से व्यक्त इनके भावों को 'उत्तरदाता के उद्गार' की इन पंक्तियों में देखा जा सकता है-"मौजूदा दौर के भारतीय समाज में व्याप्त आधुनिकता और पश्चिमी संस्कृति के अँधानुकरण को मैं छिछले लोगों की छिछली मानसिकता का एक ज्वार भर मानता हूँ, जो समय के साथ उतर जाएगा, किंतु मुझे चिंता इस बात को लेकर है कि ज्वार अपने साथ-साथ क्या-क्या बहा ले जाएगा, किसे-किसे डुबोएगा और उतरने के पश्चात् तटपर निर्जीव सीप-घोंघे अथवा मोती न जाने क्या छोड़ेगा?" इस प्रकार सिद्धेश्वर जी अपने सृजन-कर्म से हिंदी साहित्य को निरंतर सशक्त और संपन्न बना रहे हैं। इनके पास अंदर तक बंधने वाली भाषा है।

सिद्धेश्वर जी के समक्ष जिंदगी के अर्थों का खुलासा बहुत स्पष्ट और साफ है। अपने सृजन में कई बार वे दार्शनिक होते हुए भी अपनी राजनीतिक जन-पक्षधरता के प्रति बहुत सचेत, मजबूत और मुखर बने रहने में तनिक भी चूक नहीं करते हैं। हाशिए का आदमी उनकी दृष्टि से कभी ओझल नहीं होता है। दरअसल, इस तरह आम जिंदगी को नजदीक से देखने की यह उनकी ललक है।

सिद्धेश्वर जी के भीतर सच को सच और गलत को गलत कहने का जो दिवानापन है, वह इनकी सबसे बड़ी प्रेरकशक्ति है और सबसे बड़ी दिक्कत भी। दुष्यंत कुमार अपने एक शेर में इसीलिए तो कहते हैं-

"गजब है सच को सच कहते नहीं वे
कुरान-ओ उपनिषद् खोते हुए है।"

सिद्धेश्वर जी ने प्रश्नोत्तर के माध्यम से जो अभिव्यक्ति दी है उसमें उन्होंने लोगों को अपनी जड़ों की ओर लौटने की चेतावनी तो देते ही हैं अपने सामाजिक-सांस्कृतिक विरासत से जुड़ने की भी बात करते हैं, क्योंकि जड़विहीन होकर हम न तो बढ़ सकते हैं और न अधिक दिनों तक जिंदा ही रह सकते हैं।

अभी तक के जीवन में सिद्धेश्वर जी ने इस बात को सच कर

दिखाया है कि इनकी कथनी और करनी में कभी कोई अंतर नहीं आया। मितभाषी और बात हमेशा समझदारी से करने वाला यह सिद्धपुरुष अपना आपा कभी नहीं खोता। बेहद संयमित, संतुलित, आडंबरहीन तथा सौजन्यपूर्ण व्यवहार एवं स्वाभाविक सहज विनम्रता से ये किसी का भी दिल जीत लेते हैं। बनावट न इनके व्यवहार में है और न पहनावे में। बुजुर्गो व विद्वानों को आदर वह उदारता से बाँटते हैं। ऐसा नहीं है कि वह इंसान को पहचानने में कभी कोई चूक करते हों। मानवीय मनोविज्ञान के सिद्धेश्वर जी सचमुच पारखी हैं और वैचारिक खुलापन के पक्षधर भी। सभ्यता एवं संस्कृति सच से डरती है और अपनी छद्मता में घिरी रहना चाहती है। लेखक भी तो इन्हीं छद्मों से भागता है, लेकिन सिद्धेश्वर जी सच को कड़े शब्दों में कहना जानते हैं। जैसे दिखेगा, जिस भाषा में दिखेगा उसे वैसा ही शब्द-बद्ध करते हैं। शलील, अश्लील, सही, गलत, सभ्य, जंगली के चक्कर से तो कालिदास भी नहीं बच सके, फिर इनकी क्या बिसात! बद से बदनाम सही, उससे बदजुबान सही!

"अपनी हस्ती से ही जो कुछ हो
आग ही गर नहीं, गफलत ही सही।"

कई पुरस्कार से सम्मानित साहित्यकार सिद्धेश्वर जी का साक्षात्कार वस्तुत: वक्त का विचार प्रवाह है। समाज की विसंगतियाँ, राजनैतिक प्रभाव, वैचारिक उपस्थिति तथा बिखरते नाते-रिश्ते आदि पर उनसे बातचीत में कई समसामयिक मुद्दों पर स्पष्ट और बेबाक विचार उभर कर सामने आए हैं। भाषा, साहित्य, समाज, संस्कृति, धर्म, शिक्षा से जुड़े विभिन्न सामयिक चिंतन और दृष्टिकोण के कई महत्वपूर्ण सवालों के उत्तर बेहद मार्मिक और दिलचस्प हैं। इसके अतिरिक्त राजनैतिक, वैश्विक, आर्थिक, न्यायिक, अंतरराष्ट्रीय संबंधों पर प्रष्टाओं के प्रश्नों के जो उत्तर इन्होंने प्रस्तुत किए हैं, वे अध्यापकों, विद्यार्थियों, विचारकों और शोधकर्ताओं के लिए इसलिए अत्यंत मूल्यवान हैं, क्योंकि कक्षाओं में व्याख्यान देने, परीक्षा में पूछे गए प्रश्नों के उत्तर देने तथा शोध प्रस्तुत करने के लिए काफी कुछ सामग्रियाँ इनके उत्तरों से उपलब्ध हो जाएँगी।

वर्ण और वर्ग से परे हटकर, विचारधारा और वाद से निरपेक्ष रहकर सिद्धेश्वर ने मनुष्य के भावावेगों, जीवन-स्थितियों और इंसानियत की धुँआती आँखों की पीड़ा को उकेरने में इन्होंने जिस साहस और मर्म का परिचय दिया है उससे इनका मानवतावाद, समाज, उसकी समस्याओं, शोषण,

उत्पीड़न और कुरीतियों के चित्रण में रूपायित होता है।

परंपरा और आधुनिकता का बराबर निर्वाह करते हुए सिद्धेश्वर ने अपनी वैचारिकता और अपने उत्तर को किसी कटघरे में कैद न होने के बावजूद वह गहरे अर्थों में समाजवादी और मानवतावादी हैं। इसलिए इनके उत्तर अपने समय का मुकम्मल यथार्थ प्रतिबिंबित करने के साथ-साथ भविष्य के लिए भी सपने संजोते हैं। बहुआयामी प्रश्नों के इनके उत्तर में गोते लगाने वाले पाठक न केवल उनके विचार एवं भाषाप्रवाह में बँधे बहते चले जाएँगे, बल्कि उस बड़े फलक को भी देख पाएँगे जहाँ हमारा जनजीवन, व्यवस्था, लोक के विविध आयाम ऊजागर होते हैं। निश्चित रूप से स्वातंत्र्योत्तर भारत के न केवल सामंती समाज के जीवन और समस्याओं से रूबरू कराते हैं इनके उत्तर, बल्कि उन्हें आधुनिक भारत के जनजीवन और समस्याओं से भी जोड़ते हैं, जो सिद्धेश्वर जी के बाद आई पीढ़ियों को इनके उत्तर के मार्फत भारतीय समाज और जनजीवन को समझने का सुख प्रदान करेंगे।

सिद्धेश्वर जी के उत्तर से यहँ भी स्पष्ट होता है कि वह केवल सामाजिक यथार्थ का चित्रण ही नहीं करते, बल्कि उसका विश्लेषण भी करते हैं। समाज बदलता है, उसे बदलना भी चाहिए, पर भारतीय समाज क्यों नहीं बदलता, यह जाति प्रथा अबतक क्यों जड़ जमाए हुए है-ये प्रश्न उन्हें बेचैन करते हैं।

सिद्धेश्वर जी के वैचारिक और रचनात्मक साहित्य का मूल्याँकन होने के पश्चात् साक्षात्कार विधा का इनका लेखकीय महत्व नए सिरे से होगा, क्योंकि इनके जीवन-राग का यह रेखांकन मात्र नहीं है, बल्कि इस देश के लोगों के संघर्ष और उनके आक्रोश का जीवंत दस्तावेज भी है, जो समाज का यथार्थ चित्रण के साथ-साथ सकारात्मक सोच भी देता है। इस दृष्टिकोण से देखा जाए, तो यह पाठकों के साथ-साथ शोधार्थी भी इससे अवश्य लाभान्वित होंगे। इसलिए इसे विद्यालयों, महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों के साथ-साथ शोध संस्थानों के पुस्तकालयों में रखा जाना चाहिए। इनके प्रश्नोत्तर में एक अलग तरह की ताजगी तो आप पाठक महसूस करेंगे ही इसके साथ ही विरोध का भी एक नया और अनूठा स्वर भी आपको सुनाई देगा जिससे विद्यार्थियों के साथ प्राध्यापक भी लाभ उठा सकेंगे। उत्तर आधुनिक युग के इस वैश्विक परिवर्तन की उपभोक्तावादी संस्कृति के अंधड़ समय में वैश्वीकरण और बाजारवाद के बरअक्स उत्पन्न

विभिन्न स्थितियों, संकटों और समस्याओं से पपड़ाए संबंधों को तलाशने का भी इनका प्रयास रहा है। इसी प्रकार सिद्धेश्वर जी के उत्तर में बहुत ही बारीकी से मौजूदा दौर की जटिल राजनीति से दो-दो हाथ करने की जिजीविषा को महसूसा जा सकता है और इनमें व्याप्त अभिव्यंजना की संश्लिष्टता को भी देखा जा सकता है, जो जाने-अनजाने हमारे-आपके जीवन को प्रभावित करते हैं। राजनीति और राजनीतिज्ञों से दो-दो हाथ करने के पीछे प्रमुख वजह यह रही है कि सिद्धेश्वर जी आज तक प्रलोभन के पतन से अपने को बचाए चल रहे हैं। पेशे से सिद्धेश्वर जी सरकारी सेवक और संपादक रहे हैं, लेकिन जहाँ भी ये रहे हैं ईमानदारी, व्यवहारकुशलता और निष्ठा में इन्होंने अपना प्रतिमान बनाए रखा। आखिर तभी तो देश के मूर्धन्य साहित्य साधकों के ये प्रिय पात्र बने रहे और सरकारी सेवा में भी शीर्ष अधिकारियों सहित सहकर्मियों के बीच इनकी लोकप्रियता बनी रही। मुझे अच्छी तरह याद है सिद्धेश्वर जी की वह क्षमता, कार्यकुशलता, राष्ट्रीय चेतना जागृत करने के प्रति इनकी निष्ठा और लोगों के प्रति इनकी व्यवहार-कुशलता जब कुछ वर्ष पहले हमारे राजस्थान की राजधानी और गुलाबी शहर के ऩाम से मशहूर जयपुर के अणुव्रत भवन सभागार में लौह पुरुष सरदार पटेल की जयंती के अवसर पर राष्ट्रीय विचार मंच की राजस्थान शाखा के सौजन्य से आयोजित उसके दो-दिवसीय वार्षिक अधिवेशन के उद्‌घाटन एवं अकादमिक सत्रों में निर्धारित विषयों पर सार्थक विचार विमर्श कराने और उसे यादगार बनाने में इन्होंने अपनी असीम क्षमता, कार्य-कुशलता का परिचय देकर जयपुर के प्रबुद्धजनों का दिल जीता था। आखिर तभी तो भाई पंचशील तथा पल्लवी सिंह चौहान जैसे युवा व कर्मठ सहयोगियों ने दिन को दिन और रात को रात नहीं समझा था। तब से हमारे दिल में सिद्धेश्वर जी के लिए और ऊँचा स्थान हो गया। साथ ही अपने समाजधर्मा रचनाकारों एवं सहयोगियों के बीच भी इनकी सम्मानजनक स्वीकृति आज भी बनी हुई है।

पटना विश्वविद्यालय, स्नातकोत्तर विभाग के पूर्व अध्यक्ष और हिंदी के मूर्धन्य मनीषी डॉ. बलराम तिवारी ने 'हिंदी के जीवंत हस्ताक्षर' रचना का संपादन कर अपने पांडित्यपूर्ण संपादकीय से इसे अलंकृत किया है जिसके लिए उनके प्रति मैं सम्मान-भाव प्रकट करता हूँ। प्रश्नोत्तरी के आधार पर तैयार पाँच कृतियों का मैं मधुर स्वर से स्वागत करता हूँ और हर्षित होकर सिद्धेश्वर जी की शेष निरापद जीवन-यात्रा के लिए मंगलकामना के साथ

यह उम्मीद करता हूँ कि जिस प्रकार इन कृतियों के माध्यम से उनकी रागात्मक अनुभूतियों की तीव्र संवेदना के हृदयस्पर्शी स्वर प्रस्फुटित हुए हैं उसी प्रकार साहित्य सृजन के पथ पर आने वाले दिनों में भी इनकी कलम जगमगाते हुए शब्द-रत्न गूँथकर निरंतर मनोरम वैजयंती बनाती रहेगी। मेरी शुभकामना सदैव इनके साथ है। विश्वास है साहित्य की साक्षात्कार विधा में आई इनकी पाँचों पुस्तकों का मूर्धन्य स्थान होगा। हमारी हार्दिक बधाई।

डॉ. नरेन्द्र शर्मा 'कुसुम'
पूर्व प्राचार्य
महिला महाविद्यालय
सांगानेर, जयपुर
राजस्थान

संपर्क :
7. च/ज, जवाहर नगर,
जयपुर, राजस्थान
दूरभाष-0141.2650937
मों.-09414829376

शुभाशंसा

कृति में उभरा है

राजनीति सहित समाज का विश्लेषणात्मक पक्ष

□डॉ. ब्रह्मचारी सुरेन्द्र कुमार

कोई भी व्यक्ति अनेक स्तरों पर सक्रिय रहकर सारे काम एक साथ कर सकता है, सिद्धेश्वर जी इसके ज्वलंत उदाहरण हैं, क्योंकि आप एक सम्मानित सामाजिक कार्यकर्ता तो हैं ही, साहित्य एवं पत्रकारिता में भी इनकी अभिरुचि सराहणीय है। देश के प्रबुद्धजन, साहित्यकार, पत्रकार और राजनेता बहुत सम्मान और आदरभाव से सिद्धेश्वर प्रसाद को 'सिद्धेश्वर जी' कहते हैं। पश्चिमी ज्ञान और उपभोक्तावादी संस्कृति की चकाचौंध इन्हें अन्य प्रबुद्धजनों की तरह कभी गुमराह नहीं कर सकी। साहित्य सृजन और संगठन का काम करते हुए भी सिद्धेश्वर जी राष्ट्रीय चेतना की वैचारिक संस्था- 'राष्ट्रीय विचार मंच' और दिल्ली से प्रकाशित उसके मुख पत्र 'विचार दृष्टि' के माध्यम से देशवासियों में राष्ट्र निर्माण की चेतना जागरित करने का प्रयास करते रहे। दिल्ली में रहकर मंच का संचालन और उसके मुख पत्र का प्रकाशन करने के सिलसिले में प्रभाष जोशी तथा आलोक मेहता जैसे एक से बढ़कर एक दिग्गज साहित्यकारों एवं पत्रकारों को सुनने-समझने के साथ-साथ उनमें से कई साहित्यकारों एवं पत्रकारों का सान्निध्य इन्हें मिला।

सिद्धेश्वर जी को हम प्रगतिशील लेखक के रूप में इसलिए मानते हैं, क्योंकि इन्होंने हमेशा वर्गहीन समाज का सपना देखते हुए अपने साहित्य में मजदूरों, किसानों, गरीबों, असहायों, निर्बलों तथा समाज के हाशिए पर पड़े लोगों की चिंता की है। दरअसल, साहित्यकार को अपने भीतर और बाहर कुछ कमी महसूस होती है जिसकी पूर्ति के लिए उसकी आत्मा बेचैन रहती है। समाज को वह सुख, शांति और आजादी की जिस अवस्था में देखना चाहता है, वह उसे नजर नहीं आता है। इसलिए मानसिक और सामाजिक रूप से समाज की वर्तमान अवस्थाओं से उसका मन कुढ़ता रहता है। अपनी कृति 'आम आदमी की आवाज' में समाज की अवस्था के लिए वह राजनीति और राजनेताओं को भी बहुत कुछ जिम्मेदार मानते हैं। तभी तो वह

कहते हैं–'सत्ता का समाजशास्त्र रचने वाली जनता जनार्दन राजनेताओं के पाखंड और व्यभिचार से बच नहीं पाती। सामाजिक कार्यकर्ता और लेखक होने के नाते इस यथार्थ को मैं महसूस करता हूँ कि नैतिकता और आदर्श जहाँ हमारे संस्कारों में रचे–बसे हैं, वहीं व्यवहार में यह आदर्श और नैतिकता हमारे कर्म को मर्यादित करती है, मगर हमारी दमित इच्छाएँ तृप्ति के लिए मनोलोक का सहारा लेती हैं। जिंदगी और मौत के सायों से घिरे इंसान कभी इससे निरपेक्ष, कभी तटस्थ और कभी उसकी भयावहता से त्रस्त चिंता और खामोशी में डूबता चला जाता है। राजनीति की ऐसी स्थिति है कि उसमें उनके दुख को सहलाने वाला, उसपर अपनी संवेदना का मरहम रखने वाला कोई राजनीतिज्ञ नहीं दिखता। सिद्धेश्वर जी की अधिकांश कृतियाँ पाठकों के साथ–साथ रचनाकारों के समक्ष एक नवीन सोच, नवीन ऊर्जा प्रवाह और नवीन विश्लेषण से साक्षात्कार कराती हैं। सामयिकता की प्रखरता और भविष्य की तस्वीर इनकी रचनाओं की मुख्य धुरी है। मौजूदा दौर की भारतीय राजनीति पर केंद्रित पुस्तक 'आम आदमी की आवाज' में राजनीति संहित समय और समाज का अहम विश्लेषणात्मक पक्ष उभर कर सामने आया है। इसी प्रकार 'हमें अलविदा ना कहें' नामक इनके संस्मरणात्मक निबंध संग्रह में हमारे बीच अब नहीं रहे कई अहम साहित्यकार, कलाकार, पत्रकार, राजनीतिज्ञ तथा समाजसेवियों की रचनात्मक व सकारात्मक उपादेयता की स्मृति के आलोक में श्रद्धांजलि अर्पित की गई है। इधर हाल के वर्षो में प्रकाशित सिद्धेश्वर जी के साक्षात्कार के दौरान इनके प्रश्नोत्तर से राजनीति, साहित्य, समाज, संस्कृति, पत्रकारिता आदि विभिन्न विषयों पर जहाँ इनकी गहरी पकड़ का सहज अंदाजा लगाया जा सकता है, वहीं प्रश्नोत्तर इनके रचनाकर्म के मर्म को समझने के ,नए द्वार खोलते हैं। साक्षात्कार के दौरान साहित्य, शिक्षा, भाषा और नैतिकता से संबंधित प्रष्टाओं के द्वारा इनसे पूछे गए अनेक प्रश्नों के उत्तर सिद्धेश्वर जी ने दिए हैं जिन्हें संगृहीत कर पटना विश्वविद्यालय के पूर्व हिंदी विभागाध्यक्ष डॉ. बलराम तिवारी द्वारा संपादित 'हिंदी के जीवंत हस्ताक्षर' नाम्नी पुस्तक तैयार की गई है। यह पुस्तक अपने–आप में इनके व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डालती है।

इसमें तनिक संदेह नहीं कि बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के अध्यक्ष का पद स्वेच्छा से छोड़ने के बाद से सिद्धेश्वर जी द्वारा विरचित तकरीबन आधा दर्जन पुस्तकों के प्रकाशन से न केवल हिंदी साहित्य के लेखकों को,

बल्कि पाठकों एवं शोधकर्ताओं को भी सुविचारित, सुगंभीर, सुसिंचित रचनाशीलता से परिचित कराने में इन्होंने अपनी अलग किस्म की भूमिका निभाई है जिसकी प्रतीक्षा अब तमाम लेखकों-पाठकों को रहती है। मैं विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि रचनात्मक गंभीरता को बिना प्रभावित किए रचनाशीलता में पठनीयता को प्रमुखता देने का सिद्धेश्वर जी का यह प्रयास स्तुत्य कहा जाएगा। कुल मिलाकर देखा जाए, तो इधर हाल की इनकी कृतियाँ लेखकों-पाठकों के बीच एक सेतु बनाने की दिशा में प्रेरणा देने का काम कर रही हैं। जाहिर है इस रचनाकार की चिंतनशीलता का दायरा पहले से अब कहीं और विस्तृत हो गया है जिसकी शुभाशंसा किए बिना मैं नहीं रह सकता, क्योंकि इनकी कृतियाँ हमारे अंदर की अवरूद्ध भावनाओं को उजागर और उद्वेलित करने में उत्प्रेरक तो हैं ही, समकालीनता की अभिव्यक्ति का भी सशक्त जरिया है।

सामाजिक उपादेयता की सदैव चिंता कर रहे सिद्धेश्वर जी ने साहित्य और संगठन के जरिए समाजोत्कर्ष में अपना सारा जीवन लगा दिया है। आपके जीवन को सदैव वैशिष्ट्य की तलाश रही। आपको अपने जीवन में हमेशा श्रेष्ठ से श्रेष्ठतर और श्रेष्ठतर से श्रेष्ठतम बनने एवं करने का जुनून रहा और आप छद्म से सदैव दूर रहे। परिस्थितियों को देखते हुए तुरन्त निर्णय लेने की क्षमता इनमें है। बँधे-बँधाएँ साँचों में वे अपनी अलग नीतियाँ निर्धारित करने की क्षमता रखते हैं। आपने देखा नहीं बिहार विधान सभा के विगत 2015 के चुनाव के वक्त जैसे ही बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार ने भ्रष्टाचारियों एवं घपले-घोटाले में आकंठ डूबे राजनीतिक दलों एवं उसके नेताओं के साथ गलबहियाँ की, तो सिद्धेश्वर जी ने उसका न केवल मुखालफत किया, बल्कि सभा-संगोष्ठियों में उनके इस कदम की आलोचना करते हुए उन्हें चेतावनी भी दी कि इस बेमेल गठबंधन के लिए उन्हें पछताना पड़ेगा और भ्रष्टाचारी उनकी एक न चलने देंगे, क्योंकि इनका उस समय भी मानना था कि जिस नेता को सदैव अपने वंश और परिवार की चिंता रहती है वे भला नीतीश जी को क्यों तरजीह देंगे। राजनीति पर बेबाक टिप्पणी देने वाले सिद्धेश्वर जी को प्राय: सभी दलों के नेता इन्हें अच्छी तरह पहचानते हैं। आखिर तभी तो बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के अध्यक्ष पद पर रहते हुए इन्होंने बड़े से बड़े ओहदेवाले नेताओं की एक न सुनी और उनकी पैरवी को नजरअंदाज किया जिसका मैं प्रत्यक्ष साक्षी रहा हूँ। यही वजह है कि बोर्ड के तीन साल तक अध्यक्ष के दायित्व का निर्वहण कर उन्होंने

स्वेच्छा से पद छोड़ दिया, क्योंकि वर्तमान दौर की राजनीति के दलदल में वे फँसना नहीं चाहते थे। इस प्रकार जीवन की तपती आँच को उन्होंने प्रत्येक क्षण महसूस किया है। यही वजह है कि न तो उन्होंने कभी किसी के अधिकारों पर हस्तक्षेप किया है और न ही किसी को अपने अधिकार में हस्तक्षेप करने दिया है। हाँ, इतना जरूर है कि दूसरों की निजता का उन्होंने हमेशा आदर सत्कार किया है और अपनी सारस्वत साधना में परम जीवन्तता का परिचय देकर उन्होंने एक अनूठा उदाहरण प्रस्तुत किया है। रचना संसार में सामाजिक एवं साहित्यिक चेतना के ऐसे संवाहक को इनकी विभिन्न विषयों से संबंधित कृतियों के लिए, राजनीति पर इनकी इतनी अच्छी पकड़ के लिए मैं हार्दिक बधाई देता हूँ और दीर्घायु होने की कामना करता हूँ।

स्थानीय पता:
75 सी., पाटलिपुत्र कॉलोनी
पटना

डॉ. ब्रह्मचारी सुरेन्द्र कुमार
पूर्व कुलपति
कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय
दरभंगा, बिहार

शुभाशंसा

अक्ल की खिड़कियाँ खोलतीं कृतियाँ

□ डॉ. रामनिवास 'मानव'

सिद्धेश्वर जी अपने प्रश्नोत्तर के दौरान वर्तमान भारतीय समाज और राजनीति में व्याप्त भ्रष्टाचार, बलात्कार, सत्ता की चाटुकारिता के प्रति जहाँ अपना आक्रोश व्यक्त करते हैं, वहीं उभरती जनशक्ति के प्रति आस्था भी। क्रूर व्यवस्था के उत्पीड़न-शोषण से समाज के विपन्न वर्ग प्रायः द्वंद्व-ग्रस्त रहते हैं। वे सोचते हैं कि हम किससे अपना संबंध जोड़ें। संघर्षशील लोक से अथवा शोषक प्रभुवर्ग से, लेकिन भीतरी द्वंद्व की तीव्रता उन्हें समाज की परिवर्तनकामी जनशक्ति से जोड़ता है।

देश की वर्तमान दुर्दशा, अन्याय, अनाचार, दुराचार, उत्पीड़न, शोषण की वेदना को अपनी संवेदना के साँचे में ढालकर स्वीकारते भी हैं कि भूख की आँच से नहीं होती है कोई आँच बड़ी। सत्ता अपने लक्ष्यघाती लक्ष्य छिपाती है, परंतु अपराधियों के चेहरे छिपते नहीं हैं। हमारा देश रात-दिन उत्सवों में आकंठ मग्न रहता है। फटी बिवाइयाँ गरीब की कोई नहीं देखता है। यह सच है कि पूँजीवादी समाज से हमारा चारित्रिक पतन हुआ है। हम लाभ-लोभ के दलदल में धँस गए हैं। फँसने वालों में हम ही नहीं सत्ताधारी नेता और अधिकारी तथा उनके अनुचर भी। लोग यह भूल बैठे हैं कि समाज सर्वोपरि है, उसके लिए प्रतिबद्धता के बिना कुछ संभव नहीं है।

सिद्धेश्वर जी ने अपने प्रश्नोत्तर में इन सभी घटनाओं पर दृष्टि डालते हुए यह महसूस किया है कि अनैतिकता और मानसिक गिरावट देश का चरित्र बन गया है। निर्ममता, अमानवीयता, यातना भोगकर युवा पीढ़ी ढेर होती जा रही है। उन्होंने अपने परिवेश की विकृतियों को उजागर किया है जो हमारी अक्ल की खिड़कियाँ खोल देती हैं। आजादी के बाद की विसंगतियाँ समय, समाज और राजनीति को अपनी शर्तों पर परिभाषित करने लगी जो आजादी और गाँधी के नाम पर चल रहा है जिससे न भूख मिट रही है और न मौसम बदल रहा है। सिरकटे मुर्गे की तरह फड़कते हुए सुबह में सिर्फ चालबाजी है। अपने यहाँ जनतंत्र एक तमाशा है जिसकी जान मदारी की भाषा है और इस जनतंत्र में देशभक्ति एक धोखा है। आखिर तभी तो

आए दिन देश के विभिन्न क्षेत्रों में देश-विरोधी नारे लग रहे हैं।

यश और आदर के भूखे सिद्धेश्वर जी की एक तमन्ना जरूर है कि इस बढ़ती उम्र को देखते हुए अबतक तकरीबन अपनी नौ किताबों, जिसे वे नवरत्न कहते हैं और जिसकी पांडुलिपियाँ लगभग तैयार हो चुकी हैं उसकी छपाई अवश्य हो जाए। सच पूछा जाए, तो बस उनकी एक ही साध अब बच गई है कि लिखते-लिखते कोई ऐसी चीज उनकी कलम से निकल जाए कि वह सदा के लिए इंसान के दिल में जगह पा ले। मेरे ख्याल से उनकी यह साध भी साक्षात्कार के आधार पर प्रश्नोत्तरी की इन पाँचों पुस्तकों के प्रकाशन से पूरी हो जाएगी। सिद्धेश्वर जी की तेज-तर्रार बातें कभी-कभी कार्यक्रमों में शामिल होने वाले अतिथि-लेखकों को भीतर तक झकझोरते हुए चुभ जाती हैं, क्योंकि उनकी रचनाधर्मिता को भी प्रश्नांकित करने से वे बाज नहीं आते।

दरअसल, ख्वाब और ख्वाहिश इंसान के जीने की वजह है, जिनके सहारे इंसान जिंदा रहता है। अगर किसी की जिंदगी में कोई ख्वाब और किसी चीज को पाने की ख्वाहिश ना हो, तो ऐसी जिंदगी ही क्या भला! सिद्धेश्वर जी की यह ख्वाहिश ऐसी है जो अवश्य पूरी होगी, क्योंकि वे कोशिश बराबर करते रहते हैं और कोशिश करने वाले को ही लक्ष्य हासिल होता है। समकालीन जन-संस्कृति के प्रतीक सिद्धेश्वर जी हमलोगों के बीच हिंदी साहित्य के ऐसे ज्योति-स्तंभ हैं, जिनकी लोकप्रियता समकालीन रचनाकारों एवं सामाजिक कार्यों से जुड़े लोगों की जिह्वा पर जीवित है, क्योंकि उनकी शख्सियत में अपार अनुराग, सच्ची खरी बौद्धिकता और गहरी असहमति सब एक साथ दिल्ली, जयपुर तथा पटना में राष्ट्रीय विचार मंच और राष्ट्रीय चेतना की वैचारिक उसके मुख-पत्र 'विचार दृष्टि' की ओर से आयोजित कार्यक्रमों में हमें देखने को मिलता रहा है। अपेक्षित सहयोग भी वे मुझसे लेते रहे हैं, यह मेरे लिए सौभाग्य की बात है। मैंने देखा है सिद्धेश्वर जी न तो किसी से आतंकित होते हैं और न ही स्वयं किसी को आतंकित करते हैं। अलबत्ता वे स्वयं लोगों से अभिभूत होते हैं और औरों को अभिभूत करने की उनमें असीम एवं सहज क्षमता है। जो उनके नजदीक पहुँच जाता है या सान्निध्य में आ जाता है, वह उनके परिवार का सदस्य बन जाता है। आखिर तभी तो पटना तथा दिल्ली जैसे महानगर से हजारों किलोमीटर दूर राजस्थान की राजधानी जयपुर अथवा तमिलनाडु की राजधानी चेन्नई में भी इनके द्वारा आयोजित समारोहों में पटना तथा दिल्ली जैसी ही

इनके चाहने वालों की भीड़ रहती है। दरअसल, वे किसी पर कोई बोझ नहीं डालते, बल्कि अनेक लोगों का बेवजह बोझ उठाकर खुशी का अनुभव करते हैं। उनकी बौद्धिक प्रखरता और आत्मीयता ने कई पीढ़ियों को स्वयं अपना समय और सच समझने में मदद की, जबकि मौजूदा दौर के स्वार्थी समय में सहज, पर बौद्धिक रूप में सघन-समृद्ध तकरीबन लोग असंभव हो गए हैं।

ऐसी स्थिति में भी सिद्धेश्वर जी सत्यधर्म, जो छिप गया है उसे दिखाने का प्रयास करते हैं और यही बुद्धिजीवी का सबसे पहला कर्तव्य है- उसको उद्‌घाटित करना, प्रत्यक्ष करना। विवेकानन्द ने भी बुद्धिजीवी का पहला कर्तव्य सत्यान्वेषण ही माना था। गाँधी जी की समस्त विचारधारा इसी पर आधारित है। सिद्धेश्वर जी इस दृष्टि से देखा जाए तो सही मायनों में एक सार्वजनिक बुद्धिजीवी हैं जिसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं साक्षात्कार के दौरान इस देश के अनेक इलाकों के प्रबुद्धजनों के द्वारा कुल सोलह विषयों से संबंधित तकरीबन एक हजार से भी ज्यादा प्रश्नों का इनके सामने रखकर उनसे उत्तर की अपेक्षा करना। एक हजार से अधिक प्रश्नों का उत्तर देना वैसे भी एक दुरूह काम है जिसे उन्होंने किया है।

दरअसल, सिद्धेश्वर जी संपूर्ण स्वतंत्रता से बोलने और लिखने में विश्वास करने वाले एक ऐसे योद्धा हैं जिनके पास अनुभव का संसार व्यापक है जिसके बल पर ही उन्होंने अपने अनुभवों को बेहतरीन तरीके से उकेरा है इन पुस्तकों में। इनके उत्तर को पढ़ते-पढ़ते मैं जैसे-जैसे आगे बढ़ता गया मेरी उत्कंठा बढ़ती गई और विभिन्न विषयों के बारे में कुछ और जानने की इच्छा बची न रह गई, क्योंकि जिस प्रश्न का उत्तर इन्होंने दिया है उसमें कंजूसी नहीं की है, बल्कि प्रष्टाओं को पूरी तरह संतुष्ट करने की कोशिश की है। वैचारिक विषय के तहत देश की समस्त समस्याओं के समाधान से संबंधित प्रश्न के उत्तर में सिद्धेश्वर जी ने वैचारिक क्रांति की लौ जलाने की बात जिस लहजे में की है वह काबिलेतारीफ है। गौर करें आप भी-

'मैं भी महसूस करता हूँ कि यहाँ के लोगों में मानवीय गरिमा के अनुरूप मर्यादाओं का पालन करने के साथ-साथ वर्जनाओं का अनुशासन अपनाने के लिए हर किसी को बाधित किया जाए। इसके लिए हमें व्यापक विचार क्रांति की तैयारी करनी होगी और समझदारों के सिर पर चढ़ी हुई नासमझी का उन्माद उतारना होगा। आज जरूरत इस बात की है कि लोहा

से लोहा काटने और काँटा से काँटा निकालने की नीति अपनानी होगी। सद्विचारों का इतना उत्पादन और वितरण करना पड़ेगा कि शोक, संताप कहीं ढूंढ़े ना मिले।' इतनी सशक्त अभिव्यक्ति और सटीक उत्तर बहुत कम रचनाकारों के पास होते हैं। इनके सभी उत्तर ज्ञानवर्द्धक तो हैं ही विविधता से परिपूर्ण भी हैं। इसके अतिरिक्त उत्तर प्रायः मानवीय पीड़ा की सिसकियों से भरे हैं।

सिद्धेश्वर जी ने उत्तर देने और लेखन के साथ कभी समझौता अथवा दुराव-छिपाव नहीं किया है। इसलिए इनके सामने प्रस्तुत प्रश्नों के उत्तर से जहाँ हमें ज्ञान और जानकारी मिलती है, वहीं गौरव का भी अनुभव होता है, क्योंकि उन्होंने हमारे मन और मस्तिष्क दोनों को हिलाकर रख दिए। इनके उत्तर से स्पष्ट झलकता है कि लोग कितने संवेदनशून्य हो गए हैं और प्रेम, सदभाव, मानवता एवं मूल्य सिर्फ नाम के रूप में विद्यमान हैं। उत्तर यथार्थवादी और मर्मस्पर्शी तो हैं ही दिशा सूचक भी हैं। यह मानव जीवन के बिगड़े हुए स्वरूप के दर्शन कराते हैं और इनमें भाव बहुत प्रबल है।

सिद्धेश्वर जी के द्वारा प्रस्तुत उत्तर भी अपने आप में स्वतंत्र लेख जैसे हैं और रचनात्मक आस्वाद से भरपूर हैं, क्योंकि प्रश्नोत्तर में अनुभव और भाषा की ताजगी के बीच ऐसे अंशवाक्य और बिम्ब आते हैं जो संपूर्ण उत्तर को अर्थ प्रदान करते हैं। कृति के प्रश्नोत्तर संसार वैविध्यपूर्ण हैं जिनसे पाठकों को भविष्य का मार्ग इन्हीं के बीच कहीं तलाशना होगा।

सिद्धेश्वर जी के उत्तर की भाषिक जादूगरी तो सम्मोहक है ही, आत्मिक ऊर्जा, विवेक और मानवीय संवेदना अद्वितीय तथा उत्तर इनके गंभीर चिंतन-मनन के सुपरिणाम हैं। भारतीय वैचारिकता को बढ़ाने में इनके विचारों से पर्याप्त मदद मिल सकती है। दरअसल, विद्वानों द्वारा विभिन्न विषयों पर पूछे गए प्रश्नों के उत्तर सिद्धेश्वर जी के बहुआयामी व्यक्तित्व को सार्थक ढंग से अभिव्यक्त करते हैं। साक्षात्कार के आधार पर तैयार इनकी पाँचों कृतियों में संगृहीत उत्तरों से गुजर कर मैंने जाना कि सिद्धेश्वर जी भारतीय लेखा एवं लेखा परीक्षा विभाग के एक वरिष्ठ लेखा परीक्षा अधिकारी के रूप में अंकों से खेलने वाले शख्स का ही नहीं, बल्कि जन-जन के मानस में गहरी पैठ रखने वाले एक बेहद रचनात्मक व्यक्ति का नाम है। इनके उत्तर न केवल समय, समाज और राजनीति के प्रति उनकी जागरूकता और समाज को दर्शाते हैं, बल्कि उनके वैचारिक और रचनात्मक धरातल का पता चलता है। सच कहा जाए, तो सारे उत्तर उनके भीतर बैठे

भावुक और संवेदनशील सिद्धेश्वर जी का खाका खींचते हैं। यद्यपि हर वैयक्तिकता का विस्तार ही समाज की व्याप्ति में होता है, पर सिद्धेश्वर जी की अनुभूतियाँ जैसे लोक में पहले से ही ढलकर सार्वजनिकता का रंग लिए हुए ही साक्षात्कार और प्रश्नोत्तर की दुनिया में दाखिल होती हैं और हमारे जैसे अनेक रचनाकारों के मनोमस्तिष्क और संवेदनाओं में स्थायी प्रभाव रच देती हैं तथा विचारों को बार-बार कुरेदती हैं। सिद्धेश्वर जी के उत्तरों में यह आवेशित नहीं, बल्कि उनकी संवेदना में गहरे रचे-बसे होने का सच है और सच यह भी है कि उत्तर में उत्तरदाता की प्रतिभा उभरकर सामने आई है।

सिद्धेश्वर जी के उत्तर से यह स्पष्ट झलकता है कि आम आदमी और समाज के दु:ख-दर्द एवं भाव को भी अच्छी तरह महसूसते और समझते हैं। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय, राजनीतिक एवं वैश्विक मुद्दों की भी इनकी समझ काबिलेतारीफ है। जीवन, समाज और संस्कृति पर इनका दृष्टिकोण जीता-जागता है, मगर अब संस्कृति धीरे-धीरे छीजती जा रही है और यह सभ्यता और संस्कृति से मानवीय तत्वों का लोप होना भी है। मनुष्य के भाव, विचार और संवेदनशीलता जीवाश्म के रूप में सुरक्षित नहीं रहते, इसके लिए समाज, संस्कृति और मनुष्य की संवेदनशीलता का बचा रहना जरूरी होता है, तभी रचनात्मक भविष्य की निर्मिती संभव होती है।

यूँ तो सिद्धेश्वर जी नैतिक मूल्यों और परंपराओं के पोषक हैं, किंतु वस्तुत: वे ऐसे नैतिक मूल्यों और परंपराओं का त्याग करना आवश्यक समझते हैं जब वैसी हर परंपराएँ आती जाती साँस के लिए बेड़ियाँ बन जाती हैं। हाँ, इतना जरूर है कि सिद्धेश्वर जी के संस्कारों में जब रचे-बसे आदर्श और नैतिकता है तब व्यवहार में यह आदर्श और नैतिकता उनके कर्म को मर्यादित करती हैं।

वैसे तो सिद्धेश्वर जी ने अबतक साहित्य की कई विधाओं में सृजन किया है। कविता विधा में खासतौर पर हाइकु और सेन्र्यू, निबंध, संस्मरण आदि पर इनकी डेढ़ दर्जन रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं, किंतु साक्षात्कार के आधार पर तैयार इनकी नवीनतम पाँच पुस्तकें हैं जिनमें से 'हिंदी के जीवंत हस्ताक्षर' कृति का संपादन पटना विश्वविद्यालय के पूर्व हिंदी विभागाध्यक्ष डॉ. बलराम तिवारी जी ने किया है और बाकी चार पुस्तकों में 'इंसानियत की धुँआती आँखें', 'उम्मीद जताते न्यायिक एवं आर्थिक फैसले', 'राष्ट्रीय राजनीति' और 'वैश्विक कूटनीति' हैं जिनके माध्यम से हम एक भरी-पूरी दुनिया से रू-ब-रू होते हैं और उनके रोचक

एवं प्रेरणादायी उत्तरों से भरपूर पाँचों पुस्तकें मानसिक पौष्टिकता को बरकरार रखते हैं।

सिद्धेश्वर जी के उत्तर इतने प्रभावशाली हैं कि व्याख्या करने या अभिमत देने के लिए दो-चार नहीं अनेक पृष्ठ चाहिए, पर पुस्तक के पृष्ठों की भी एक सीमा के तहत रहना है। बहरहाल, मैं इतना बता दूँ कि इनके उत्तर भारतीय संस्कृति और लोक संस्कृति से तो परिचित कराते ही हैं, साथ ही वे हमें धर्म, भाषा, संप्रदाय और जाति को लेकर कट्टरता का रवैया न अपनाने की सीख भी देते हैं जिसे धार्मिक, आध्यात्मिक, साहित्यिक, व्यक्तिगत, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, वैचारिक, प्राकृतिक, नैतिक एवं वैश्विक विषयों से संबंधित प्रश्नों के उत्तर में आसानी से देखे जा सकते हैं। उत्तर के अंदर जो साहित्यिक विचारात्मक आभूषण हैं वे अनोखे हैं और परत-दर-परत हटाकर नग्न कटू वास्तविकता को सामने रख देते हैं। सत्साहित्य धीरज और गहन अध्ययन माँगता है जिसके प्रत्यक्ष साक्षी हैं इन साक्षात्कारों के दौरान विद्वान प्रष्टाओं द्वारा इनके समक्ष प्रस्तुत प्रश्नों के उत्तर।

इतने खूबसूरत विचारों के साहित्यिक स्वरूप की बुनियाद पर लोकहित एवं देशहित के पक्ष में इन बौद्धिक विचारों के 'हिंदी के जीवंत हस्ताक्षर' नाम्नी पुस्तक के विद्वान संपादक डॉ. बलराम तिवारी तथा उप संपादक डॉ. अरुण कुमार भगत, सहायक संपादक डॉ. शाहिद जमील, विजय कुमार सिंह, उपेन्द्रनाथ सागर, अखिलेश्वर प्रसाद तथा रामविलास मेहता ने अपनी बौद्धिकता का परिचय दिया है जिसके लिए उन सभी लोगों को साधुवाद एवं बधाई। शेष चार पुस्तकों के रचयिता और नायक सिद्धेश्वर जी को हमारी शुभकामना। इतनी अच्छी कृतियों के लिए इन्हें हार्दिक बधाई और दीर्घायु होने की मंगलकामना। साक्षात्कार विधा की इन पुस्तकों का साहित्य-जगत में जोरदार स्वागत होगा, ऐसी मेरी शुभाशंसा है।

संपर्क:
दूरभाष- 01662-238720
मो.- 8053545632

डॉ. राम निवास 'मानव'
पूर्व हिंदी विभागाध्यक्ष
स्नातकोत्तर हिंदी विभाग,
पीआरएम महाविद्यालय, हिसार,
हरियाणा

अध्याय : एक
व्यक्तिगत प्रश्नोत्तर

(१)प्रश्नः अपने साहित्य जीवन में जहाँ आपने सैकड़ों निबंध, लगभग सवा सौ संस्मरण, सौ से अधिक संपादकीय, एक दर्जन से अधिक हाइकु एवं सेन्र्यू काव्य संग्रह, एक सामान्य काव्य संग्रह तथा अनेक आलेख लिखे, वहीं कहानी केवल एक लिख पाई। इसका क्या कारण है?

उत्तर: दरअसल, प्रारंभ से ही मैं अपने जीवन में अनेक प्रकार की व्यस्तताओं से घिरा रहा हूँ। प्रारंभ में मात्र छह महीनों तक भारतीय रेलवे की सेवा करने के पश्चात् छत्तीस वर्षो तक भारतीय लेखा एवं लेखा परीक्षा विभाग में सरकारी सेवा में रहने पर लेखा परीक्षा के कार्यो में मैं बड़ी निष्ठा एवं ईमानदारी से अपने कर्तव्यों का निर्वहण तो करता रहा ही, विभागीय पत्रिका 'प्रहरी' के संपादक का दायित्व भी मैंने संभाला। इस बीच अथवा स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के बाद निबंध, संस्मरण, हाइकु एवं सेन्र्यू कविताएँ तो लिखता ही रहा दिल्ली से प्रकाशित राष्ट्रीय चेतना की वैचारिक पत्रिका 'विचार दृष्टि' के संपादक का दायित्व भी निभाता रहा। संपादकीय, पत्रकारिता और लेखन के साथ राष्ट्रीय स्तर पर गठित संस्था 'राष्ट्रीय विचार मंच' के राष्ट्रीय महासचिव का दायित्व भी आज तक निभा रहा हूँ। इतनी व्यस्तताओं के चलते कहानी अथवा उपन्यास लेखन के लिए जिस प्रकार एकाग्र होकर लंबा समय देना जरूरी होता है, वह मैं नहीं निकाल सका।

(२)प्रश्नः आप अपने साहित्य लेखन पर किन पूर्ववर्तियों का प्रभाव मानते हैं ?

उत्तर: भाई मदन जी, कथा सम्राट मुंशी प्रेमचंद और अमरकथा शिल्पी फणीश्वर नाथ रेणु का प्रभाव तो मैं पूरी तरह स्वीकार करता ही हूँ, साथ ही बांग्ला कथा साहित्य के अध्येता शरत चंद्र का प्रभाव भी मेरे साहित्य पर काफी पड़ा है।

(३)प्रश्नः आज के इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के युग में साहित्य को आप कितना प्रासंगिक मानते हैं?

उत्तर: इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि आज के इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के युग में पढ़ने की रुचि बहुत अधिक प्रभावित हुई है और पत्र-पत्रिकाओं के बहुत सारे पाठक दूरदर्शन-चैनलों के धारावाहिकों की ओर मुड़ गए हैं, किंतु इससे साहित्य की प्रासंगिकता पर प्रश्नचिह्न नहीं

लगता। साहित्य का सृजन-प्रकाशन आज भी हो रहा है और यह सदा प्रासंगिक रहेगा तथा साहित्य का सृजन भी होता रहेगा।

(४)प्रश्न: आपमें आत्मविश्वास कूट-कूटकर भरा है। क्या आप इसके कारण बता सकते हैं?

उत्तर: भाई मदन जी, आपकी बात से सहमत हूँ कि मैं आत्मविश्वास से भरा हूँ। आत्मविश्वास को मैं उन्नत जीवन रूपी बहुमंजिले भवन की मजबूत आधारशिला मानता हूँ। आत्मविश्वास ही कर्म व ज्ञान के बीच सेतु बनकर साधक को साध्य गंतव्य तक पहुँचाकर जीवन-यात्रा पर सार्थकता की मुहर लगा देता है। आत्मविश्वास ही मेरे मन को एक एकसूत्रित कर लक्ष्य तक पहुँचाता है और अपने अस्तित्व की सार्थकता की प्रतीति कराता है। आत्मविश्वास ही वह आधार है जिसके बल पर हम चुनौतियों का मुकाबला कर पाते हैं। आत्मविश्वास के आधार पर ही क्षमता का सृजन हो पाता है जिससे जीवन में आने वाली हर मुश्किल आसान हो जाती है।

(५)प्रश्न: लगभग आधी सदी से आपकी साहित्यिक यात्रा चल रही है। इस अवधि में विवाद और प्रवाद भी निरंतर आपके साथ चलते रहे हैं। आपके मित्रों एवं शुभेच्छुओं की एक बड़ी संख्या रही है, लेकिन आपके निंदकों की संख्या भी कम नहीं रही है। इसकी क्या वजहें रहीं और जीवन के इस मोड़ पर आप इन सबको कैसे देखते हैं ?

उत्तर: सच कहा जाए तो प्रशंसा-निंदा से मैं न तो कभी प्रभावित होता हूँ और न घबराता हूँ, क्योंकि मैं सदैव सच को सच और गलत को गलत कहता हूँ। मैं मानता हूँ कि जो व्यक्ति कुछ काम करता है उसी में लोग नुक्स भी निकालते हैं। मैं भी सदैव काम में लगा रहता हूँ चाहे वह सृजन का काम हो या पत्रकारिता-लेखन का, संगठन का काम हो या राजनीति का। सभी क्षेत्रों में मैं अपनी बात स्पष्ट रूप से रखता हूँ इसलिए संभव है इस स्पष्टता से लोगों का दिल दुखे और वे मेरी निंदा करें, पर उसका मुझ पर कोई असर इसलिए नहीं पड़ता है, क्योंकि मैं सही को सही कहता हूँ और उसी तरह का जीवन अपनाता भी हूँ। इसलिए स्वाभाविक है कि मेरी बात के कुछ लोग जहाँ प्रशंसक होंगे, वहीं निंदक भी।

प्रशंसा निश्चित रूप से मुझमें ऊर्जा प्रदान करती है, मेरा आत्मविश्वास बढ़ाती है, मगर निंदा या विरोध भी मुझे अपने में झांकने और आत्मावलोकन करने का मौका देती है। साथ ही अपने कार्यो की समीक्षा करने के लिए प्रेरित करती है। इसलिए निंदक के विरूद्ध मेरे मन में कटूता नहीं उपजती।

(६)प्रश्न: आपकी दृष्टि में आपका सबसे बड़ा गुण क्या है, और सबसे बड़ा दोष क्या है?

उत्तर: मेरी दृष्टि में मेरा सबसे बड़ा गुण है- मेरी ईमानदारी। मौजूदा दौर के भ्रष्टाचार और घपले-घोटाले के वक्त किसी व्यक्ति की ईमानदारी आज एक कीमत रखती है, खासतौर पर सरकारी सेवा में वह व्यक्ति जो तीन दशक से भी ज्यादा अवधि तक रहा हो। जी हाँ, मैंने भारतीय लेखा एवं लेखा परीक्षा विभाग के महालेखाकार, बिहार के राँची एवं पटना कार्यालय में लेखा-परीक्षक से वरीय लेखा परीक्षा अधिकारी के पद पर प्रोन्नति पाते हुए छतीस वर्षो तक सेवा की है और किसी की एक ऊँगली भी मेरे विरूद्ध कभी नहीं उठी और आज भी जबकि स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के पन्द्रह साल बीत जाने के बाद जब कभी उक्त कार्यालय में मैं जाता हूँ, तो ग्रूप 'घ' कर्मचारी से लेकर महालेखाकार तक के अधिकारियों की प्रतिष्ठा मुझे मिलती है, क्योंकि वे सभी एक प्याली चाय से मेरा सम्मान करने को इच्छुक दिखते हैं।

15 सितंबर, 2008 से 14 सितंबर, 2011 तक मैंने बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के पटना के राज्यमंत्री का दर्जा प्राप्त अध्यक्ष के दायित्व का ईमानदारी एवं निष्ठापूर्वक निर्वहण किया और बेदाग उस काली कोठरी से अपनी इच्छा से मुक्त हुआ जिसकी मुक्त कंठ से लोग मेरी सराहना आज भी करते हैं। लोगों के मुँह से यह कहते सुना जाता है कि इस व्यक्ति ने अपने तीन साल के कार्यकाल में रिश्वत लेना तो दूर किसी कर्मचारी-अधिकारी अथवा संस्कृत शिक्षकों का एक पॉकेट मिठाई भी नहीं स्वीकार किया। इस प्रकार सार्वजनिक जीवन में भी मैंने अपनी ईमानदारी का परचम लहराया और अपनी चदरिया पर कोई दाग-धब्बे पड़ने नहीं दिए। अपने कार्यकाल में न तो मैंने शिक्षा विभाग, बिहार का कभी भूल से भी चक्कर लगाया और न कभी विभाग के आला अधिकारियों सहित मंत्री एवं मुख्यमंत्री की चाटूकारिता की। बस केवल अपना फर्ज निभाया और स्थापना के बाद से भ्रष्टाचार में लिप्त संस्कृत बोर्ड की गाड़ी को भ्रष्टाचार मुक्त बनाने तथा संस्कृत शिक्षा और साहित्य में गुणात्मक परिवर्तन लाने का प्रयास किया जिसकी आज भी चर्चा की जाती है।

जहाँ तक सबसे बड़ा दोष का सवाल है, मैं यह दावा कतई नहीं करता और कर भी नहीं सकता कि मुझमें कोई दोष नहीं है, क्योंकि कमियाँ-खामियाँ से कोई व्यक्ति बिल्कुल मुक्त नहीं होता। मैं महसूस करता

हूँ कि मौजूदा दौर में मेरा सबसे बड़ा दोष यह है कि जब भी मैं किसी एक नए व्यक्ति से पहली बार मिलता हूँ, तो उस पर विश्वास कर लेता हूँ, पर बाद में देखता हूँ कि उनमें से कई लोग खोटे निकलते है। दरअसल, इधर हाल के वर्षो में यह स्थिति आई है कि लोगों में छल-प्रपंच, झूठ बोलने की आदत, मिथ्या धारणा और दिखाबा, पल-पल में बात बदलने की आदत बढ़ती जा रही है। विश्वसनीयता धीरे-धीरे समाप्त होती जा रही है और हर आदमी एक-दूसरे को ठगने का प्रयास कर रहा दिखता है। जो आदमी आज सबसे बड़ा रिश्वतखोर और छल-कपटी है वही अपने को सबसे बड़ा ईमानदार और पाक-साफ साबित करने को उद्दत है। कहा जाता है-'Face is the index of mind' मगर मुझे तो ठीक इसके विपरीत लगता है जो अंदर से जितना काला है आज बाहर से उतना ही भद्र दिखता है। यही विडंबना है।

(७)प्रश्न: आजकल आप क्या लिख रहे हैं और उसके केंद्रिय विचार क्या हैं?

उत्तर: इधर चार वर्षो से मैं पाँच-छह पुस्तकों को पूरा करने का प्रयास कर रहा हूँ। ये पुस्तकें विभिन्न विषयों को लेकर लिखी जा रही हैं। पुस्तकों के नाम हैं- 'आम आदमी की आवाज' जो भारतीय राजनीति की मौजूदा स्थिति पर केंद्रित है। दूसरी पुस्तक है 'दरिंदगी का दर्द' जो इस देश के विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं पर आए दिन हो रही हिंसा, दुष्कर्म की घटनाओं पर केंद्रित है। तीसरी पुस्तक का नाम है- 'बुजुर्गो की जिंदगी' जिसमें बुजुर्गो की आज हो रही उपेक्षा और अवहेलना पर तो चर्चा है ही, उससे निजात पाने के उपायों पर भी विचार किए गए हैं। चौथी पुस्तक का नाम है- 'कवि और कविता' जिसमें कविता पर विस्तार से चर्चा की गई है। और पाँचवी पुस्तक है 'जीवन रागिनी' आत्मकथा जिसमें बचपन से लेकर सतहत्तर वर्ष तक की उम्र की स्मृतियों को संजायो गया है। छठी पुस्तक- हमें अलविदा ना कहें, संस्मरणात्मक निबंध संग्रह है जिसमें साहित्य, कला, पत्रकारिता, राजनीति तथा समाजसेवा में लगे महानुभावों से जुड़ी स्मृतियों, उनके कार्यकलाप और विभिन्न क्षेत्रों में उनके द्वारा की गई उपलब्धियों पर मैंने प्रकाश डाला है, ताकि वे विस्मृत होने से बचें और मुझे उनके जीवन से मार्गदर्शन मिल सके। इन सभी पुस्तकों के माध्यम से जीवन के विविध पहलुओं को मैं देखना-परखना चाहता हूँ।

उपर्युक्त सभी छह पुस्तकों में से पाँच पुस्तकें जापान से आयातित हाइकु एवं सेन्र्‌यु काव्य विधा में लिखी गई हैं। और छठी पुस्तक में

संस्मरणात्मक निबंध संग्रह गद्य में है। फिर 'आम आदमी की आवाज' और 'जीवन रागिनी', जो क्रमश: भारतीय राजनीति और आत्मकथा पर केंद्रित हैं गद्य और पद्य दोनों में लिखी गई हैं। मेरा उद्येश्य है आम आदमी तक भारतीय राजनीति की अद्यतन स्थिति को पहुँचाना और अपने जीवन के विभिन्न आयामों से पाठकों को अवगत कराना, ताकि यदि उसकी रोशनी में उनके जीवन में थोड़ा भी सुधार आता है तो इसकी सार्थकता सिद्ध हो सके।

(८)प्रश्न: आपके लिए सर्वाधिक संतुष्टि का क्षण कौन-सा होता है?

उत्तर : जब हम किसी विषय पर लिख रहे होते हैं और वह पूरा हो जाता है, तो मुझे बड़ी संतुष्टि होती है, लेकिन जब उसके तथ्य हमारे मन के अनुरूप होते हैं, तो मेरे लिए सर्वाधिक संतुष्टि का क्षण होता है।

(९)प्रश्न: आपके जीवन का सर्वाधिक मार्मिक क्षण कौन-सा रहा?

उत्तर: 13 से 15 जुलाई, 2007 तक अमेरिका के न्यूयॉर्क स्थित संयुक्त राष्ट्रसंघ के मुख्य कार्यालय भवन में विदेश मंत्रालय द्वारा आयोजित आठवें विश्व हिंदी सम्मेलन में बिहार की ओर से भारतीय प्रतिनिधिमंडल में शामिल होकर उसके अकादमिक सत्र में मृणाल पाण्डेय की अध्यक्षता तथा राहुल देव के संचालन में 'वैश्वीकरण, मीडिया और हिंदी' विषय पर हुई परिचर्चा में जब मुझे आलेख प्रस्तुत करने के साथ-साथ विचार-विमर्श में भाग लेने का मौका मिला, तो उस क्षण को मैं अपने जीवन का सर्वाधिक क्षण मानता हूँ।

(१०)प्रश्न: आपके जीवन के सबसे अधिक प्रसन्नता का क्षण कौन-सा रहा है?

उत्तर: भाई मनोज जी, मैं अपने जीवन के सर्वाधिक प्रसन्नता का क्षण उस दिन को मानता हूँ जिस दिन मैने उम्र के बोझ को खुद पर हावी होने नहीं दिया और ढूँढ़ लिया सांझ के धुँधलके को सुबह की किरण की तरह चमकाने का रास्ता।

(११)प्रश्न: आप अपनी जिंदगी को किस प्रकार परिभाषित करेंगे ?

उत्तर: रिंकी, मेरे लिए जीवन एक सतत प्रवाद है। मैंने सदैव अपने जीवन को सकारात्मक रूप में लिया है जिसके परिणामस्वरूप पचहत्तर की उम्र में जीवन के प्रति सकारात्मक रवैया हमें आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है और आगे आने वाले पलों की राह को प्रशस्त करता है। जीवन को अपने अनुसार और अपनी शर्तों पर जीने की चाह रखते हुए जीवन की हर छोटी-बड़ी खुशी को मैंने भरपूर जिया। कभी भी स्वयं को किसी के आगे न तो अपना सिर

झुकाया और न हार से हार मानकर निराश हुआ, क्योंकि मैं जानता हूँ कि निराशा जीवन का नकारात्मक पहलू है। जीवन चलते रहने का नाम है न कि रूकने का। मैं जिंदगी को इसी रूप में परिभाषित करता हूँ।

(१२)प्रश्नः ऐसा कुछ, जो करने की प्रबल इच्छा है, लेकिन आप कर नहीं पाते?

उत्तरः देखिए मनोज जी, मैंने अपने हर काम को सौ प्रतिशत देने तथा जी जान से जुटे रहने का प्रयास किया है। कठिन परिस्थितियों में भी मैंने कभी धैर्य नहीं खोया है और संयम से काम लिया है जिसके बिना जीवन जीने की कल्पना नहीं की जाती है।

हाँ, दिल्ली से राष्ट्रीय विचार मंच की ओर से प्रकाशित राष्ट्रीय चेतना की वैचारिक पत्रिका 'विचार दृष्टि' को डेढ़ दशक से अधिक वर्षो तक पाठकों तक पहुँचाने के बाद मेरी प्रबल इच्छा थी कि इसे आगे भी जारी रखी जाए, किंतु वैसा नहीं हो पा रहा है जिसकी चिंता मुझे अवश्य है।

(१३)प्रश्नः आप हिंदी साहित्य को आज किस रूप में आँकते हैं?

उत्तरः किसी भी देश का साहित्य अपने अंदर हजारों साल के अनुभवों को समेटे रखता है, परंपरा को पोषित, संस्कारित और गतिमान बनाए रखता है। हम जानते हैं कि जिस प्रकार परंपरा निरर्थक नहीं होती उसी प्रकार साहित्य भी कभी निरर्थक नहीं हो सकता।

इस दृष्टिकोण से यदि देखा जाए, तो हिंदी साहित्य में भी कई ऐसे प्रतिमान यथा, व्यक्ति को गतिशील बनाना, सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भो की निरंतर पड़ताल करना, सामाजिक समस्याओं को निर्देशित करना तथा उसके विरूद्ध लड़ने की प्रेरणा देना, जीवन में छिपी हुई बाधाओं को हटाना, मानव के महान उद्येश्य को पूरा करना, स्वस्थ मनोरंजन उपलब्ध कराना, भाषा और लिपि को संरक्षण प्रदान करना, इतिहास लेखन में सहयोग करना, राजनीतिक मूल्यों को बढ़ावा देना तथा सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों का विकास करना आदि मौजूद हैं जिसकी वजह से ही आज हिंदी साहित्य प्रासंगिक है। इसके साथ ही हिंदी साहित्य हमारी बहुसंस्कृति के साथ देश के प्रतिनिधि साहित्य के रूप में उपस्थित हुआ है। दरअसल, हिंदी ने अपने लोकतांत्रिक स्वभाव के अनुरूप विभिन्न अस्मिताओं को जगह दी है और यही इसकी ताकत भी बनी है।

(१४)प्रश्नः आप 'कला' से जुड़े रहे हैं। 'कला' की इस विरासत को संजोए रखने का काम साहित्य भी करता है, लेकिन दिन-ब-दिन युवाओं का रूझान इस क्षेत्र में कम होता दिखाई दे रहा है इसका अंजाम आपकी दृष्टि में क्या होगा?

उत्तरः भाई सुरेश जी, मैं मानता हूँ कि 'कला' प्रकृति से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में इंसान को खूबसूरत उपहार प्राप्त है और इस विरासत को संजोए रखने का काम साहित्य करता है, लेकिन आज के दौर में कला व साहित्य के प्रति अभिरुचि युवाओं में स्पष्ट रूप से कम होती दिखाई दे रही है। वे इस प्रतिस्पर्धात्मक सामाजिक दौर में उस घोड़े की तरह दौड़ लगाने को बेताब हैं जिसे मंजिल का आभास तक नहीं। दिन-ब-दिन युवाओं में कला व साहित्य के प्रति रूझान कम होने की स्थिति में हमारा मौलिक चिंतन रसातल में चला जाएगा।

'कला' उस आभूषण की तरह है जो इंसान की बाह्य सुंदरता तो है ही, वह उसके आंतरिक व्यक्तित्व को भी निखारती है। संगीत, नृत्य, हस्तशिल्प, चित्रकला, नाट्यकला के बिना जीवन जीना कठिन हो जाएगा। अनेक विविधताओं के बावजूद कला हमें एक सूत्र में बांधती है। तकनीक की होड़ में अगर हम इसी तरह कला से दूर होते गए, तो हमारी रचनात्मकता, सृजनात्मकता, कलात्मकता लुप्त होने में समय नहीं लगेगा।

(१५)प्रश्नः आप हिंदी के एक जीवंत हस्ताक्षर हैं। विगत २००७ में अमेरिका के न्यूयॉर्क में आयोजित ८वें विश्व हिंदी सम्मेलन में आपकी सक्रिय भागीदारी रही है तब से लेकर २०१५ में भारत के म.प्र. की राजधानी भोपाल में आयोजित १०वें विश्व हिंदी सम्मेलन तक हिंदी की यात्रा में कहाँ तक प्रगति हो पाई है? न्यूयॉर्क के खट्टे-मीठे संस्मरण सहित विस्तार से हम आपसे हिंदी की अद्यतन स्थिति के बारे में जानना चाहेंगे।

उत्तरः मैं हिंदी का एक जीवंत हस्ताक्षर हूँ या नहीं, यह तो नहीं कह सकता, पर इतना मैं जरूर कहना चाहूँगा कि विगत चार दशक से अधिक से अधिक मैं हिंदी में लिखना, बोलना और सृजन करते हुए हिंदी का हिमायती अवश्य हूँ।

हाँ, विगत 13-15 जुलाई, 2007 को अमेरिका के न्यूयॉर्क में भारतीय विद्या भवन के सहयोग से विदेश मंत्रालय द्वारा आयोजित 8वें विश्व हिंदी सम्मेलन में बिहार सरकार की ओर से भारतीय प्रतिनिधिमंडल में

शामिल होकर न केवल 'वैश्वीकरण, मीडिया और हिंदी' विषय पर उसके शैक्षिक सत्र में मैंने अपने आलेख का पाठ किया, बल्कि उस पर हुए विचार-विमर्श में मेरी सक्रिय भागीदारी रही।

(१६)प्रश्न: सत्ता पर बैठे हुक्मरान ने तो अपनी राष्ट्रभाषा अथवा मातृभाषा को कभी महत्व नहीं दिया है, लेकिन क्या हमने भी अपनी मातृभाषा के लिए कभी अपनी चिंता व्यक्त की है?

उत्तर: यह बात ठीक है कि सत्ता पर बैठे हुक्मरान ने अपनी रांष्ट्रभाषा अथवा मातृभाषा को कभी महत्व नहीं दिया है, लेकिन हमने भी तो अपनी मातृभाषा के लिए कभी चिंता व्यक्त नहीं की है। लोगों को उम्मीद थी कि अँग्रेजों के जाने के बाद अँग्रेजी विदा हो जाएगी, लेकिन सामंती मानसिकतावाले नौकरशाह और सत्ता पर बैठने वाले हुक्मरानों के छल-छद्म से अँग्रेजी और पल्लवित-पुष्पित होती गई। सचमुच आज हिंदी अपनों से हारी है। भारतीय संस्कृति की समग्र साधना नहीं, बल्कि उनके लिए वोट लेने का माध्यम है, लेकिन राष्ट्र निर्माण का संसाधन नहीं। राष्ट्रभाषा हिंदी की स्थिति कुछ ऐसी ही है। हिंदी भाषी सांसदों को भी अँग्रेजी में बोलते देख हमारी हिंदी शर्मिन्दा है।

मातृभाषा का हाशिए पर जाना अपनी जड़ों से दूर जाना है। जब हमारी जड़ें ही कमजोर होंगी और हमारे प्रयासों का चरित्र व्यापक और समावेशी नहीं होगा, तो हमारी यात्रा दिशाहीन हो जाएगी। इसलिए हमें अपनी मातृभाषा की भी चिंता करनी होगी। अगर हमनें इन बातों की चिंता नहीं की, तो भविष्य को संवारने के हमारे मंसूबे कतई फलीभूत नहीं हो सकेंगे। वैसे भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने ठीक ही लिखा है, 'निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।' जिस भाषा में व्यक्ति पहली बार बोलना सीखता है, उसके साथ जैसा रागात्मक संबंध होता है, वह अन्य किसी सीखी हुई भाषा से संभव नहीं है। इसीलिए इसे 'मातृभाषा' कहते हैं। डॉ. बालशौरि रेड्डी के शब्दों को कुछ हेर-फेर के साथ कहूँ तो अँग्रेजी सफेद कपड़ों में लिपटी एक खूबसूरत नर्स हो सकती है, किंतु मैला आँचल में ग्राम वासिनी माता की गोद में जो प्यार तथा निश्छल पालन-पोषण की जैसी आश्वस्ति है, वह किसी नर्स की सेवा में नहीं।

(१७)प्रश्न: सिद्धेश्वर जी, आपकी चार दशक की साहित्य-साधना आपके अध्ययन, ज्ञान, संवेदना और वैचारिक उर्जा की जीवंत साक्ष्य है। आपने साहित्य सृजन में सामाजिक एवं सांस्कृतिक समस्याओं, विद्रूपताओं और विसंगतियों के संदर्भो पर विचार-विमर्श किया है।

क्या आपने यह सृजन स्वांतः सुखाय किया है या आप सामाजिक चेतना के विस्तार और समाज एवं देश के लोगों को सजग, जिम्मेदार और उत्तरदायी बनाने के लिए सृजनरत हैं?

उत्तर: आपके सभी प्रश्नों का अभिप्राय यह है कि मैं स्वांतः सुखाय के लिए लिखता हूँ या सामाजिक चेतना के विस्तार और लोगों को सजग एवं उत्तरदायी बनाने के लिए।

यह सच है कि जो कुछ मैंने अबतक लिखा है या अब भी लिख रहा हूँ, उसमें सामाजिक एवं सांस्कृतिक समस्याओं के साथ-साथ उसकी विद्रूपताएँ और विसंगतियों के संदर्भो पर विमर्श है, पर मूल रूप से हमारे सृजन का उद्येश्य स्वांतः सुखाय न होकर समाज व देश के लोगों में चेतना जागृत करने तथा जिम्मेदार एवं उत्तरदायी बनाने का रहा है।

हमारे लेखन को जो सामाजिक-स्वीकृति मिली है उससे मुझे आत्मसंतुष्टि भी हुई है, क्योंकि मैं लिखते समय यह भी सोचता हूँ कि हमारी रचना समाज और देश के लिए कितनी उपयोगी होगी। जहाँ तक समाज में पनपती विद्रूपताओं और विसंगतियों का सवाल है रचनाकार होने के नाते यह मेरा कर्त्तव्य बनता है कि सामाजिक विसंगतियों, विद्रूपताओं और विडंबनाओं को अरुणोदय दिशा प्रदान कर उन्हें साफ किया जाए। पाठकों को सजग और जागरूक बनाना भी हमारा दायित्व है इसलिए अपने सृजन से पाठकों को मैं उत्साह और आनंद से आपूरित करता हूँ तथा अपने जीवन के सर्वोत्तम को समाज को देने का प्रयास करता हूँ।

(१८)प्रश्न: आप पचहत्तर वर्ष की उम्र से गुजर रहे हैं। आगे आपकी योजनाएँ क्या हैं? क्या आप आत्मकथा लिखेंगे? यदि हाँ, तो क्या अपने बीते हुए वक्त का पुनरावलोकन व चरित्राभिव्यक्ति करेंगे?

उत्तर: हाँ, आपने ठीक कहा कि अभी मैं अपनी उम्र के पचहत्तर के पड़ाव से गुजर रहा हूँ। 18 मई, 2015 को मैंने 75वें वर्ष में प्रवेश किया है और पूर्व से निर्धारित कार्यक्रमों के अनुसार पाँच-छह पुस्तकों को पूरा करने की मैंने योजना बनाई है। बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड का अध्यक्ष पद छोड़ने के बाद से ही मैंने मन बनाया था कि समसामयिक विषयों पर मैं पुस्तकें लिखूँगा और सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक सभा-संगोष्ठियों में अपनी सक्रिय भागीदारी देकर लोगों को सजग और जागरूक बनाऊँगा। सो उसी सृजन में हमारा समय बीत रहा है। साहित्य से संदर्भित 'कवि और कविता' नाम्नी कृति हो या भारतीय राजनीति की मौजूदा स्थिति पर 'आम

आदमी की आवाज' देश के प्राय: प्रत्येक राज्य में दुष्कर्म की बढ़ती घटनाओं पर 'दरिंदगी का दर्द' हो या बुजुर्गों की दयनीय स्थिति पर 'बुजुर्गों की जिंदगी' सभी पुस्तकें जापान से आयातित कविता का 'हाइकु' अथवा 'सेनेर्‌यू' विधा पर लिखी जा रही हैं, इसके अतिरिक्त वर्षों पूर्व से देश के जाने-माने दिवंगत साहित्यकारों, पत्रकारों, कलाकारों, राजनीतिज्ञों तथा समाजसेवियों पर संस्मरणात्मक निबंधों को लेकर 'हमें अलविदा ना कहें' नाम्नी पुस्तक को पूरा करने में लगा हूँ।

जहाँ तक आत्मकथा लिखने का सवाल है आप सरीखे देश के अनेक राज्यों से मित्रों एवं शुभेच्छुओं के अनुरोध पर आखिर 'जीवन रागिनी' नाम्नी आत्मकथा लिखना मैंने प्रारंभ कर ही दिया है। मेरी इतनी पुस्तकें लिखने की वजह यह है कि हमारे आसपास का जीवन मुझे लगातार लिखने के लिए कई-कई तरह से मजबूर करता है। मैं उस पर लिखे बिना अपने को रोक नहीं पाता और जीवन के अन्य कर्मों के साथ यह सृजन भी होता रहता है।

आत्मकथा में मैं अपने आपको अपने से दूर रखकर, वस्तुरूप में देखने का प्रयास कर रहा हूँ और मैंने अबतक अपने जीवन को जैसे जिया है उसे वैसा ही प्रस्तुत करने की मेरी कोशिश है। निश्चित रूप से यह आत्मकथा बीते हुए कल का एक पुनरावलोकन होगा या चरित्राभिव्यक्ति। जैसे मैं पहले पिता का पुत्र था, फिर मैं स्वयं पिता बना और घर-परिवार में सबसे बड़ा बेटा होने की वजह से मैंने कितने ही किरदार की भूमिका पूरी ईमानदारी से निभाई और निभा रहा हूँ।

(१९)प्रश्न: आप पटना विश्वविद्यालय के छह वर्षों तक छात्र रहे। अपने आचरण-व्यवहार और एन.सी.सी. आदि संगठनों में अपनी सक्रियता से लोकप्रिय और प्रतिष्ठित रहे। इस लोकप्रियता और प्रतिष्ठा के कारक-तत्व क्या थे? विश्वविद्यालय के तबसे आजतक के परिवेश में बहुत अंतर आया है जिसके क्या कारण हैं?

उत्तर: हाँ, मैं नालंदा जिला के चौधरी उच्च विद्यालय से 1956 में मैट्रिक की परीक्षा में उत्तीर्ण होकर मैंने पटना कॉलेज में नामांकन कराया और वहीं से आई.ए. एवं बी.ए. तथा पटना वि.वि. से एम.ए. किया। विश्वविद्यालय में छह वर्षों की अवधि में एन.सी.सी. का प्रशिक्षण प्राप्त कर उसका सर्वोच्च सर्टिफिकेट 'सी' भी प्राप्त किया तथा पटना कॉलेज के एन.सी.सी. क्लब का आजीवन सदस्य हुआ।

इस संदर्भ में मैं आपको यह भी बता दूँ कि स्नातक के दौरान पटना कॉलेज के तब के सर्वश्रेष्ठ जैक्सन छात्रावास और स्नातकोत्तर की अवधि में न्यू हॉस्टल में मैं रहता था जिसके वार्डन थे अंतरराष्ट्रीय स्तर के भूगोलविद् डॉ. पी. दयाल। उनका सान्निध्य मुझे प्राप्त था इसलिए मुझे उनका संस्कार भी मिला। कॉलेज तथा विश्वविद्यालय की सांगठनिक गतिविधियों तथा पटना विश्वविद्यालय छात्रसंघ में अपने श्रम एवं समाज कल्याण विभाग का प्रतिनिधित्व करने की वजह से तो मैं छात्रों एवं अध्यापकों के बीच लोकप्रिय था ही, अपने आचरण और व्यवहार से भी मुझे लोगों से काफी प्रतिष्ठा मिली।

सच मानिए, आज से तीन-चार वर्ष पूर्व तक पटना कॉलेज का विद्यार्थी होने, खासतौर पर जैक्सोनियन और न्यू हॉस्टल का छात्र होने पर मैं गर्व करता रहा था, किंतु अब वहाँ का विद्यार्थी कहने में मुझे शर्मिंदगी इसलिए महसूस होती है, क्योंकि विगत तीन-चार साल से लगातार जैक्सन, मिंटो तथा इकबाल छात्रावास के छात्रों के बीच मारपीट ही नहीं, गोली-बंदूक एवं बमों की छापामारी में पकड़े जाने के कारण मुझे विश्वास नहीं होता कि क्या यही पटना कॉलेज और पटना विश्वविद्यालय को कभी बिहार का कैंब्रिज कहा जाता था और डॉ. श्रीकृष्ण सिंह, जय प्रकाश नारायण सरीखे दर्जनों महानुभाव वहाँ के विद्यार्थी रह चुके थे।

पटना विश्वविद्यालय में आज जो कुछ हो रहा है, उसके और कारण जो हों, मगर अनुशासन की कमी की वजह से छात्रों में उदंडता, शिक्षा में राजनीति के साथ जात-पात और संप्रदाय का प्रवेश भी प्रमुख कारण तो है ही, शिक्षकों की कमी और अध्ययन-अध्यापन के माहौल में गिरावट भी उसके कारक-तत्व हैं। कारण कि वर्तमान शिक्षण प्रणाली में सूचनाएँ तो हैं, पर चिंतन-मनन और निदिध्यासन का लोप हो गया है। हमारे समय में प्राय: सभी छात्र-छात्राओं का अपने वर्ग में सदैव समय से पूर्व पहुँचना और घंटी बजने के बाद ही निकलना होता था। वर्ग के बीच में छात्र-छात्राओं द्वारा किसी भी पूछे गए प्रश्न का अध्यापक स्वागत करते थे और उनके संतुष्टि-पर्यंत विषय का स्पष्टीकरण करते थे। इसी प्रकार, मुझे अच्छी तरह याद है कि जैक्सन हॉस्टल के तत्कालीन अधीक्षक डॉ. बेचन झा का नियमित रूप से अध्ययन काल (Study Period) के वक्त हॉस्टल का निरीक्षण होता था। क्या मजाल! कि कोई छात्र उस वक्त हॉस्टल से गायब रहे या छात्रावास के कमरों में बिछाबन के मच्छड़दानी के डंटों पर छात्रों के

कपड़े टंगे पाए जाएँ। आज उस अनुशासन की मात्र कल्पना ही की जा सकती है। अब तो यहाँ तक सुनने और समाचार पत्रों में पढ़ने को मिल रहे हैं कि छात्रावासों में शाम ढलते ही शुरू हो जाती हैं अनैतिक गतिविधियाँ। पुलिस की छापेमारी के दौरान कई बार मिल चुकी हैं शराब की खाली बोतलें। यानी शाम ढलने के साथ-साथ छात्रावासों के रंग भी बदलने लगते हैं और महफिल जमने लगती है। यह महफिल होती है नशे की और लोग नशे में खो जाते हैं। आखिर ऐसे छात्रावासों में रहने वालों के बीच क्यों न हो जरा-जरा सी बात पर मारपीट? अब आप ही बताइए कैसे कहूँ कि आज से पचपन वर्ष पहले कभी मैं भी इसी छात्रावास में रहता था? क्या यह कहने में मुझे शर्मिंदगी नहीं महसूस होगी?

(२०)प्रश्न: आपके जीवन की सफलता के रहस्य क्या है?

उत्तर: अनुशासन और व्यवस्थित दिनचर्या यह लेखन और स्वस्थ जीवन दोनों के लिए आवश्यक है जिसे मैं अपने जीवन में निभाता हूँ। रात दस बजे सो जाना और सुबह चार बजे जग जाना मैंने अपने दैनिक जीवन की आदत बना डाली है। मैं अराजक जीवन नहीं जीता हूँ। न मैंने कभी सिगरेट पीया और नहीं शराब को कभी छुआ। मैंने अपने कई समकालीनों को इन्हीं सब आदतों के कारण वेवक्त काल के गाल में समाते देखा है और ऐसे लोगों को भी देख रहा हूँ जो इन्हीं सब आदतों की वजह से बराबर बीमार रहा करते हैं और अपने परिवार एवं समाज पर निर्भर करते हैं। पत्रकार भाई मार्कण्डे प्रवासी जी को कहते-कहते मैं थक गया, फिर भी शराब को उन्होंने नहीं छोड़ा और आखिर शराब ने ही उनकी जान ले ली। इसी तरह कथाकार मधुकर सिंह भी अपनी आदत से लाचार थे।

मुझे ऐसा लगता है कि जीवन जीते चले जाने का दिनचर्या का दुहराव मात्र है। शेष कुछ आपके हाथ में नहीं है। इसके मद्देनजर मेरे ख्याल से जीवन की सार्थकता इसी में है कि इसे तलाशते हुए जिया जाय और जितना व जो कुछ आपसे हो सके समाज को दिया जाए। मैं अपने को इसी रूप में ज़िता हूँ और स्वस्थ-प्रसन्न रहने की चेष्टा करता हूँ। यही हमारे जीवन की सफलता के रहस्य हैं।

(२१)प्रश्न: आपके बारे में कहा जाता है कि आप काफी आशावादी हैं। इस आशावादिता पर क्या कभी पानी फिरा है जिसके चलते आपके कार्य प्रभावित हुए हों?

उत्तर: इसमें कोई संदेह नहीं कि मैं बेहद आशावादी हूँ, क्योंकि मेरा

मानना है कि आशावादी व्यक्ति ही अपने सपने साकार करने की ताकत रखता है। मेरे ख्याल से एक व्यक्ति को कर्मयोगी होने के साथ-साथ आशावादी भी होना चाहिए तभी वह जीवन में बड़े काम कर सकता है।

(२२)प्रश्नः आपकी जिंदगी का सबसे बड़ा सबक क्या है?

उत्तर: उदारता और सदाशयता।

(२३)प्रश्नः तो क्या आप भाग्यवाद के विरोधी हैं?

उत्तर: हाँ, मैं भाग्यवाद का विरोधी हूँ, क्योंकि मैं कर्म में विश्वास करता हूँ और मेरी समझ से भाग्यवादी इंसान समाज पर बोझ के समान होता है। इसलिए मैं भाग्यवादी कभी नहीं रहा और कर्म में विश्वास किया। भाग्य से कभी समझौता नहीं किया, भाग्य से हमेशा संघर्ष किया। मेरा मानना है कि भाग्य भरोसे रहना कायरों की कायरता को बढ़ाना है। दरअसल, भाग्यवाद कायरों, अज्ञानियों, धर्म के ठेकेदारों की देन है। हमें प्रकृति के सूर्य, चाँद, नदी, झरना, सागर, पहाड़ आदि से इस माने में शिक्षा लेनी चाहिए कि वे भी कर्म की ही तो पाठ पढ़ा रहे हैं। सभी अपने कर्मो के प्रति सजग और सतत् जागरूक रहकर विश्व को बरकरार रखते हैं, भाग्य भरोसे बैठे नहीं रहते।

वस्तुतः सफलता का रास्ता थोड़ा कठिन और लंबा अवश्य होता है, लेकिन परिश्रम से जो सफलता मिलती है, उसकी सुगंध एक लंबे अरसे तक रहती है।

(२४)प्रश्नः सेवावधि से स्वैच्छिक सेवा निवृत्ति लेने के बाद आपका जीवन यायावरी में ज्यादा बीता है। इस दौरान का कोई ऐसा अनुभव जिससे आपको बेहद संतुष्टि मिलती हो?

उत्तर: सचमुच स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के बाद हमारा जीवन ज्यादा यायावरी में बीता है, क्योंकि राष्ट्रीय चेतना की वैचारिक संस्था राष्ट्रीय विचार मंच का राष्ट्रीय कार्यालय पटना से दिल्ली स्थानांतरित होने के बाद विभिन्न राज्य इकाइयों से समन्वय स्थापित करने तथा मंच के मुख पत्र 'विचार दृष्टि' के प्रचार-प्रसार के लिए अक्सरहा मुझे दक्षिण तथा पशिचम भारत के सभी राज्यों का दौरा करना पड़ता था। वैसे भी सेवा में रहने के बावजूद रेलवे हिंदी सलाहकार समिति के सदस्य होने के नाते राजभाषा कार्यान्वयन को लेकर अथवा रेलवे के क्षेत्रीय एवं मण्डल कार्यालयों की राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठकों में प्रत्येक तीन माह के अंतराल पर भाग लेना और राजभाषा के कार्यान्वयन पर अद्यतन जानकारी प्राप्त करने के ख्याल से यायावरी करना तो स्वाभाविक हो गया था।

इस यायावरी के दौरान जो अनुभव मैंने प्राप्त किया और जिससे मुझे काफी संतुष्टि मिलती है वह यह कि इस यायावरी ने मुझे यह पहचानने और जानने की दृष्टि दी कि उत्तर या दक्षिण, पूरब हो या पश्चिम सभी साहित्यकारों एवं पत्रकारों की धड़कन्न एक है। हमने अपने यायावरी जीवन से अनुभव के बहुमूल्य मोती बटोरे जिसके परिणामस्वरूप मैंने कई बड़े ही रोचक संस्मरण लिखे जो 'विचार दृष्टि' में प्रकाशित हुए।

(२५)प्रश्न:आज के इस दौर में जब साहित्यकार व पत्रकार पद, पैसा और पुरस्कार के लिए कुछ भी करने को तैयार हैं और सामाजिक कार्यकर्ताओं की निरंतर कमी देखी जा रही है आप खुद का मूल्याँकन किस तरह करते हैं? क्या आपको कभी ऐसा लगता है कि समाज और साहित्य में आप जो योगदान दे रहे हैं वह संतोषजनक है?

उत्तर: देखिए, मुझे किसी तरह का भ्रम नहीं है और न मैं यह समझता हूँ कि समाज, साहित्य और पत्रकारिता में हमारा जो योगदान है वह संतोषजनक है। मगर इतना जरूर है कि पद, पैसा और पुरस्कार के लिए जिस प्रकार लोग राजनीति की गलियों में दौड़ लगा रहे हैं, मैंने कभी ऐसा नहीं किया। हाँ, समाज का सजग नागरिक होने के नाते अथवा साहित्य एवं पत्रकारिता से अभिरुचि रखने के नाते मैं अपने दायित्व के प्रति सावधान हूँ और कर्म किए जा रहा हूँ। फल की चिंता मुझे कभी नहीं रही और जितना मेरे पास है उससे मैं संतुष्ट भी हूँ।

यदि लोगों को लगता है कि साहित्य, समाज और पत्रकारिता में मेरा योगदान है या संस्कृत के लिए कुछ कर रहा हूँ, तो उसमें जरूर सच्चाई होगी। उस दिशा में अपनी समझ और क्षमता के मुताबिक मैंने कोशिश की है और कर रहा हूँ जिसे शायद लोग पसंद कर रहे हैं।

(२६)प्रश्न: आजकल आप अपने विचारों व भावों को शब्दबद्ध करते हुए, सभा-संगोष्ठियों में बोलते हुए, पुस्तकों एवं पत्रिकाओं का लोकार्पण करते हुए या भेंटवार्ता देते हुए अधिक नजर आते हैं। आखिर क्यों? संस्कृत बोर्ड के अध्यक्ष का दायित्व संभालने से तो ऐसा नहीं?

उत्तर: देखिए, लिखने-पढ़ने की आदत तो मेरी सेवावधि से ही रही है और आज तो इसे मैंने दिनचर्या में ले लिया है। रही बांत सभा-संगोष्ठियों में बोलने और पुस्तकों एवं पत्रिकाओं के लोकार्पण करने की, तो ऐसा भी नहीं कि मैं पहले इन कार्यक्रमों में भाग नहीं लेता रहा हूँ। हाँ, इतना जरूर है कि जबसे मैंने बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के अध्यक्ष का पद संभाला है और मेरे

आने के छह माह बाद जबसे बिहार सरकार ने मुझ राज्यमंत्री का दर्जा प्रदान किया है, सामाजिक, साहित्यिक तथा सांस्कृतिक संगठनों के लोगों को मेरे प्रति स्नेह कुछ ज्यादा दिखता है। दूसरा कारण है कि जिस किसी संगोष्ठी में मैं जाता हूँ, तो उसके निर्धारित विषय पर मैं 'होमवर्क' अवश्य कर लेता हूँ। इसलिए मेरी अभिव्यक्ति में श्रोताओं को स्पष्टता नजर आती है। वैसे सच मानिए, तो विधायकों, राजनीतिज्ञों और मंत्रियों को विशेष तौर पर इसलिए भी आमंत्रित किया जाता है कि उनकी उपस्थिति से कार्यक्रम आलंकारिक या शोभाकारी हो जाते हैं।

(२७)प्रश्न: आपके बारे में कहा जाता है कि आप एक जबरदस्त आयोजक और संगठनकर्ता हैं। किसी भी कार्यक्रम में भीड़ जुटाना कोई आप से सीखे! क्या आप इसके पीछे का राज बताएँगे?

उत्तर: दरअसल, छात्र जीवन से ही मैं संगठन में भाग लेता रहा हूँ। जब मैं पटना विश्वविद्यालय के श्रम एवं समाज कल्याण विभाग का विद्यार्थी था तो पटना विश्वविद्यालय छात्र संघ में अपने विभाग के छात्रों का मैं प्रतिनिधित्व करता था। यही नहीं पटना कॉलेज में प्रथम वर्ष से एन.सी.सी. का कैडेट रहा और स्नातक या चतुर्थ वर्ष में मैंने एन.सी.सी. का सर्वोच्च प्रमाण पत्र 'सी. सर्टिफिकेट' प्राप्त कर लिया था। इसके अतिरिक्त पटना कॉलेज का 'कॉलेज कलर' भी मुझे मिला था और पटना कॉलेज के एन. सी.सी. क्लब का मैं एक अधिकारी भी चुना गया था।

जब मैंने भारतीय लेखा एवं लेखा परीक्षा विभाग की सेवा में आया, तो योगदान के कुछ ही दिनों के बाद बिहार सिविल ऑडिट एण्ड एकाउन्ट्स ऑफिस एसोसियेशन का सदस्य निर्वाचित हुआ और अराजपत्रि संघों से लेकर राजपत्रित अधिकारियों के संघों में महासचिव तथा अध्यक्ष के पद पर निर्वाचित होता रहा जिसकी विस्तार से चर्चा मैंने पहले भी की है। वैसे भी लोगों को अपने साथ सहज ही जोड़ लेने की कला मैंने सीख ली है। स्वैच्छिक सेवा निवृत्ति के बाद भी पटेल सेवा संघ, बिहार, राजेन्द्र साहित्य परिषद तथा संस्कृत के उन्नयन हेतु स्थापित कई संगठनों के महासचिव तथा संरक्षक के पद पर रहा और संप्रति राष्ट्रीय चेतना की वैचारिक संस्था-राष्ट्रीय विचार मंच का मैं राष्ट्रीय महासचिव हूँ। इस प्रकार संगठन का पूरा अनुभव मुझे है और इसके द्वारा आयोजित कार्यक्रमों का कर्ता-धर्ता भी। और सबसे बड़ी बात यह है कि मैं जो भी आयोजन करता हूँ, तहेदिल से करता हूँ, समय पर करता हूँ और ईमानदारी एवं निष्ठा से करता हूँ। कार्यक्रमों में पधारे

सुधीजनों को पूरा भाव देता हूँ, आयोजन में आए सभी लोगों का आतिथ्य सत्कार करने में कभी कोताही नहीं करता, किसी को छोटा-बड़ा नहीं समझता और अतिथियों के प्रति अपेक्षित आदर व सम्मान का भाव प्रदर्शित करता हूँ। इन सभी कारणों से आयोजन में भाग लेने वाले वक्ताओं, अतिथियों तथा सुधी श्रोताओं का कीर्तिस्व या सदिच्छा (Good Will) मुझे प्राप्त है। यही कीर्तिस्व के बलपर हमारे सारे कार्यक्रम सफल होते हैं। मेरी समझ से आपके प्रश्नों के उत्तर आप को मिल गए होंगे और उसके पीछे के राज से भी आप अवगत हो गए होंगे।

(२८)प्रश्न: आपका जो व्यक्तित्व है वह अपने समय के अनेक आयामों को छूता रहा है। राष्ट्रीय विचार मंच और उसके मुख पत्र 'विचार दृष्टि' को लेकर लगभग आठ साल आपको दिल्ली में रहना पड़ा और वहाँ से पूरे भारत का आपने भ्रमण किया। इस अवधि में कितने और कौन-कौन साहित्यकारों से आपकी मित्रता हुई और परिचय बढ़ा। क्या विस्तार से मुझे बताएँगे आप?

उत्तर: दरअसल, भारतीय लेखा एवं लेखा परीक्षा विभाग के प्रधान महालेखाकार (लेखा परीक्षा) बिहार, पटना के कार्यालय में जब मैं कार्यरत था, तभी रेल मंत्री नीतीश कुमार जी के कार्यकाल में मुझे रेलवे हिंदी सलाहकार समिति का सरकारी होते हुए भी गैर-सरकारी सदस्य बनाया गया। इसकी भी एक रोचक कहानी है। सरकारी नौकरी में रहते हुए रेलवे हिंदी सलाहकार समिति का सदस्य आमतौर पर नियमानुसार कोई साहित्यकार नहीं रह सकता है, किंतु नीतीश जी मुझे हर हाल में समिति में रखना चाहते थे, भले ही मुझे नौकरी छोड़ना पड़े। उन दिनों भारत सरकार के गृह मंत्री लाल कृष्ण आडवाणी थे जिनके अधीन राजभाषा विभाग भी था। लेखा परीक्षा विभाग से जब नौकरी में रहने के चलते मेरे नाम पर अड़चन आई, तो नीतीश जी स्वयं आडवाणी जी से मिले और उनसे कहा कि सिद्धेश्वर जी को वह रेलवे हिंदी सलाहकार समिति में रखना चाहते हैं, भले ही उन्हें नौकरी छोड़ने को बाध्य होना पड़े। जहाँ तक मेरी जानकारी है श्री आडवाणी जी के आदेश पर गृह मंत्रालय के राजभाषा विभाग ने विशेष परिस्थिति में सरकारी नौकरी में रहते हुए भी रेलवे हिंदी सलाहकार समिति का गैर-सरकारी सदस्य के रूप में रखने की अनुमति रेल मंत्रालय को मिली।

समिति में रहने से मुझे लाभ यह मिला कि राजभाषा हिंदी को लेकर रेलवे हिंदी सलाहकार समिति की ओर से भारतीय रेल के क्षेत्रीय

कार्यालयों से लेकर मंडल कार्यालयों में जाकर यह देखना पड़ा कि क्षेत्रीय एवं मंडल स्तर पर राजभाषा अधिनियम का कहाँ तक अनुपालन हो पा रहा है। इसके अतिरिक्त कई क्षेत्रीय एवं मंडल राजभाषा कार्यान्वयन समितियों में रेलवे हिंदी सलाहकार समिति की ओर से मुझे प्रतिनिधित्व करने को कहा गया जिसके परिणामस्वरूप प्रत्येक तीन माह के अंतराल पर कई क्षेत्रीय एवं मंडल स्तर पर आयोजित राजभाषा कार्यान्वयन समितियों की बैठकों में भाग लेकर और राजभाषा की अद्यतन स्थिति का जायजा लेकर रेलवे हिंदी सलाहकार समिति को प्रतिवेदन देना पड़ता था। इससे मुझे फायदा यह मिला कि देश के महानगरों के अतिरिक्त प्राय: सभी प्रमुख शहरों के ख्यातिप्राप्त साहित्यकारों तथा हिंदी प्रेमियों से मिलने का मौका मिला और परिचय हुआ। इसी अवधि में मैंने मौके का लाभ उठाते हुए दक्षिण भारत के चारों राज्यों के अलावे पश्चिमी तथा पूर्वी भारत के राज्यों में राष्ट्रीय विचार मंच की राज्य शाखाएँ मैंने स्थापित कर लीं। नतीजा यह हुआ कि मंच का राष्ट्रीय कार्यालय पटना से दिल्ली स्थानांतरित करना पड़ा। सर्वप्रथम तो यह मुख्यालय सी.एस. आइ.आर. के वरिष्ठ अधिकारी जे.एन.पी. सिन्हा के सौजन्य से नई दिल्ली के झंडेवालान में रहा। बाद फिर उसके स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के पश्चात् दिल्ली के विकासमार्ग स्थित शकरपुर के फ्लैट सं.यू. 207 के 'दृष्टि' में मंच का राष्ट्रीय कार्यालय हो गया और तबसे आज तक वहीं अवस्थित है।

इस अवधि में जिन साहित्यकारों से मेरा परिचय हुआ और जिनके सान्निध्य में आने से मेरे लेखन को बल मिला उनमें प्रमुख हैं– प्रो.बी.एम. के. सिन्हा, डॉ. पी. दयाल, प्रो. सिद्धेश्वर प्रसाद, पद्मश्री डॉ. श्याम सिंह शशि, डॉ. मधु धवन, डॉ. बालशौरि रेड्डी, कविवर गोपी वल्लभ सहाय, भोला प्र. सिंह 'तोमर', कविवर सत्यनारायण, डॉ. शिवनारायण, प्रो. रामबुझावन सिंह, बाँकेनंदन प्र. सिन्हा, जिया लाल आर्य, डॉ. वीणा रानी श्रीवास्तव, प्रो. शैलेन्द्र नाथ श्रीवास्तव, शंकर दयाल सिंह, प्रो. आनंद कुमार, प्रो. धर्मेन्द्र कुमार 'अमन', डॉ. महेन्द्र कर्णावट, बाबू राम सिंह 'लमगोड़ा', प्रो. साधुशरण, डॉ. एल.एन. शर्मा, कर्नल एस. एस. राय, डॉ. एस.एफ.रब, न्यायमूर्ति बी. एल.यादव, यू.सी.अग्रवाल, डॉ. विजय नारायण मणि त्रिपाठी, डॉ. देवेन्द्र आर्य, प्रो. रामकृष्ण प्र. सिन्हा, डॉ. सतीश राज पुष्करणा, परमानंद दोषी, डॉ. पी. एन. विद्यार्थी, डॉ. कलानाथ मिश्र, डॉ. राधा कृष्ण सिंह, डॉ. शिववंश पाण्डेय, नृपेन्द्र नाथ गुप्त, गीतकार नचिकेता, पी.के. बालासुब्रह्मण्यम, इंद्रराज वैद्य, डॉ. रामशोभित प्र. सिंह, डॉ. डी.आर. ब्रह्मचारी, डॉ. ब्रह्मचारी, सुरेन्द्र

कुमार, डॉ. शाहिद जमील, प्रो. श्यामनंदन शास्त्री, डॉ. एन. एस. शर्मा, डॉ. अनिल दत्त मिश्र, प्रो. अनिल मिश्र, डॉ. वर्षा दास, डॉ. सविता सिंह, प्रो. विमल प्रसाद, डॉ. रमाशंकर श्रीवास्तव, रमाकांत शुक्ल, गिरीश चंद्र श्रीवास्तव, डॉ. नवल किशोर प्रसाद श्रीवास्तव, प्रो. दीनानाथ 'शरण', डॉ. रामदेव प्रसाद, ज्योतिशंकर चौबे, प्रो. रामभगवान सिंह, प्रो. राज चतुर्वेदी, डॉ. सत्येन्द्र चतुर्वेदी, प्रो. सुषमा शर्मा, डॉ. नरेन्द्र शर्मा 'कुसुम', डॉ. सच्चिदानंद सिंह 'साथी', बलभद्र कल्याण, राजभवन सिंह, युगल किशोर प्रसाद, मनु सिंह, वंशीधर सिंह, डॉ. नंद किशोर नवल, आनंद किशोर शास्त्री, डॉ. एम. शेषण, डॉ. ईश्वर करुण, त.शि.क. कण्णन, डॉ. एन चंद्रशेखरन, डॉ. पी. लता, प्रो. ऋषभदेव शर्मा, प्रो. एस. निरजा, डॉ. गुलाब चंद्र कटोडिया, डॉ. चुन्नी लाल शर्मा, डॉ. जयलक्ष्मी सुब्रह्मण्यम, डॉ विद्या शर्मा, डॉ. निर्मला एस. मौर्य, आर. पार्वती, प्रह्लाद श्रीमाली, आशुतोष मनुज, रमेश गुप्त 'नीरद', डॉ. रवीन्द्र कुमार जैन, राधा विजय लक्ष्मी, सुंदर राजन, डॉ. हरि सिंह पाल, शिवानंद धुत्रे, प्रो. रामनिवास 'मानव', आलोक मेहता, प्रदीप मेहता, प्रो. अनुपमा, प्रो. पी. लता, नलिनी मेहता, डॉ. ए. बी. साई प्रसाद, अन्नु रंजन, पी. आर. बासुदेवन 'शेष', डॉ. कमला विश्वनाथन, वी. एल्लुमल्लै, सुनीता जाजोदिया, मंजु भंडारी आदि।

(२९)प्रश्नः आप मेरी चाची जी के बारे में अक्सरहा कार्यक्रमों में चर्चा करते हुए कहते पाए गए हैं कि जो कुछ भी आप अब तक कर पाए हैं उसमें उनका काफी योगदान है। वैसे भी कहा गया है कि हर सफल पुरुष के पीछे नारी होती है। ऐसा लगता है कि इसे आपकी धर्म-पत्नी श्रीमति बी. प्रसाद ने चरितार्थ किया है। किस रूप में उन्होंने आपकी सहायता की है?

उत्तर: भाई मनोज जी, निश्चित रूप से हमनें अब तक जो कार्य किए हैं और कर रहें हैं उसकी सफलता का पूरा श्रेय आपकी चाची यानी मेरी धर्मपत्नी श्रीमती बी. प्रसाद को जाता है। दरअसल, दाम्पत्य जीवन का स्थायित्व पति-पत्नी के आपसी प्रेम-संबंधों में ही है। संशय से मुक्त भरपूर विश्वास और भरोसा ही इसका रहस्य है। घर के सभी कार्यो को अपने कंधों पर लेकर मुझे उस दायित्व से मुक्त कर देना उनकी सबसे बड़ी सहायता है। दूसरी बात यह कि मेरी माँ इतनी सीधी और मृदुल स्वभाव की थी कि सास की प्रताड़ना मेरी श्रीमती जी को कभी नहीं मिली और न मेरी उपेक्षा का दंश उन्हें कभी झेलना पड़ा। पुत्रवधू से भी उन्हें कभी खटपट नहीं हुआ।

यही कारण है कि उनकी मुस्कान की खिलती रोशनी में मैं हमेशा ही आनंद पाता रहा हूँ। मेरा तमाम जीवन, मेरे आगे बढ़ने के तमाम परिश्रम में उनका साथ रहा।

(३०)प्रश्न: एक व्यक्ति अनेक स्तरों पर सक्रिय रहकर साहित्य, समाज, पत्रकारिता, संगठन और प्रशासनिक सारे काम एक साथ कर सकता है, आप इसके प्रमाण हैं। अनेक अवसरों पर आप कड़वे अनुभवों से भी गुजरे, पर कभी उन अवसरों पर या तो चुप रहते या उसे भुला देते। आपकी इस सक्रियता के पीछे क्या राज है?

उत्तर: दरअसल, जो भी और जिस क्षेत्र में मैं काम करता हूँ, तो उसे विश्वास के साथ करता हूँ और यह काम करते हुए मैं उससे होने वाले खतरों से कभी भयभीत नहीं होता। दूसरी बात यह है कि जो भी काम करता हूँ उसे अपना दायित्व समझकर करता हूँ। मैं सोचता हूँ कि जिस परिवार में, जिस समाज में, जिस राज्य में और जिस देश में, मेरा जन्म हुआ है उसके प्रति मेरा कुछ कर्त्तव्य भी है। इसलिए सामाजिक प्रतिबद्धता को मैं कभी नहीं भूलता और न राष्ट्र के प्रति अपनी जवाबदेही को। चूँकि मैं जानता हूँ कि यह जीवन दो-चार सौ साल के लिए मुझे नहीं मिला है इसलिए जितना दिन शेष है उसका सदुपयोग समाज व राष्ट्र की सेवा में ज्यादा से ज्यादा लगा दूँ। देश के शीर्षस्थ बुद्धिजीवियों में शुमार किए जाने वाले नेमिचंद्र जैन की निम्न पंक्तियाँ मेरे पराक्रम का सही अर्थ देती हैं-

'है कांप रहा जिससे संसृति का वक्ष-देश
है कंठ रूधा-सा पलक अविचल निर्निमेष।'

इन संदर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि जब उम्र होती है लगता है वक्त थम गया है। जब उम्र नहीं होती वक्त को पकड़ने उसे रोके रखने की सारी कोशिशें नाकामयाब हो जाती हैं। यह मेरे मन-मस्तिष्क में पूरी तरह घर कर गया है। बस मेरी सक्रियता के पीछे यही राज है।

(३१)प्रश्न: एक कहावत है- समय किसी का नहीं होता। वास्तव में समय उसी का साथ देता है जिसके पास उसे साथ ले चलने की समझ और ताकत होती है। आप इस कहावत से कहाँ तक सहमत हैं?

उत्तर: मैं इस बात से शत-प्रतिशत सहमत हूँ कि समय किसी का नहीं होता। वास्तव में समय उसी का साथ देता है जिसके पास उसकी समझ और ताकत होती है। लेकिन यह भी सच है कि समय को साथ लेकर चलने की समझ व हिम्मत बहुत कम लोगों में होती है। जहाँ तक मै समझता हूँ

समय के साथ चलने की बजाय समय को साथ लेकर चलने का श्रेष्ठ उपाय है- समय का कुशल प्रबंधन। मैंने अपने जीवन में समय का न केवल प्रबंधन किया है, बल्कि उसका सम्मान भी किया है। जिस प्रकार अपने कार्यक्रम को बिल्कुल समय पर करने की मैंने आदत बना डाली है, उसी प्रकार अपने दैनंदिन जीवन में भी इसका पालन अवश्य करता हूँ। रात दस बजे सोना है, तो ठीक दस बजे सो जाता हूँ और अहले सुबह चार बजे बिछावन छोड़ देना है तो चार बजते ही सोकर उठ जाता हूँ। यह मैं कभी नहीं सोचता कि काम न करने से समय बचता है, बल्कि सच तो यह है कि समय तो काम सही ढंग से करने से ही बचता है।

(३२)प्रश्न: सिद्धेश्वर जी, जीवन के सात दशक पार करने के बाद आज आप कैसा महसूस कर रहे हैं? इतनी अवस्था के बावजूद आपके सक्रिय रूप से लेखन कार्य करने के कौन से कारण हैं ?

उत्तर: सच बताऊँ, सत्तर बरस के पड़ाव पर मैं कैसे पहुँच गया यह आज तक मैंने महसूस ही नहीं किया। जैसा पहले महसूस करता था वैसा ही आज भी महसूस कर रहा हूँ। कोई भी काम करने में मैं हमेशा ताजगी महसूस करता हूँ। यही देखिए न, आज से ग्यारह-बारह साल पूर्व जबतक मैं महालेखाकार कार्यालय में रहा दो-ढाई घंटे में ही अपना काम निपटाकर फिर सांस्कृतिक एवं साहित्यिक गतिविधियों में लग जाता था। फिर विभागीय पत्रिका 'प्रहरी' के संपादन में भी समय बितता था। लेकिन जब से बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड, पटना के अध्यक्ष का दायित्व संभाला, प्रतिदिन पूर्वाह्न 10 बजे से लेकर संध्या 5 बजे तक लगातार कार्यालय के कार्यों को निपटाया करता हूँ। यहाँ तक कि दिन का भोजन भी घर से ले जाकर कार्यालय में ही करता हूँ। यह आदत महालेखाकार कार्यालय की सेवावधि में कभी नहीं रही। इतना के बावजूद भी मैंने कभी थकावट महसूस नहीं की और न कभी अस्पताल का चक्कर लगा। अभी भी शारीरिक और मानसिक रूप से स्वस्थ हूँ।

इतनी अवस्था के बावजूद मैं लेखन में सक्रिय हूँ इसकी एक वजह तो यह है कि लेखन अनुभव की उपज होती है और यह अनुभव स्वयं की आत्मा से मिलता है। दूसरी वजह यह है कि मेरी समझ से जैसे-जैसे हमारी उम्र बढ़ रही है हमारे शेष जीवन समाज व देश के लिए काम करने का मौका घटता जा रहा है इसलिए मैं सोचता हूँ कि कम-से-कम समय में अधिक से अधिक योगदान कर सकूँ। और जो भी करूँ निष्ठा और बड़ी

ईमानदारी से करूँ। इससे जहाँ मुझे संतोष मिलता है, वहीं दूसरे को राहत। मैं हमेशा सकारात्मक जीवन जीने में विश्वास रखता हूँ और अपने समय और समाज की जिंदगी को बड़ी करीब से देखता हूँ। इसके साथ ही हमारा गहरा संबंध जन-सामान्य से तो है ही, बौद्धिक लोगों के सान्निध्य से भी मैं गर्व का अनुभव करता हूँ जिनसे मुझे आगे बढ़ने की रोशनी मिलती है और मुझमें कुछ और अधिक काम करने का जज्बा पैदा होता है।

सच मानिए तो आदमी अपनी कर्मशीलता से ही पहचाना जाता है। 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचना'

श्रीमद्‌भागवत गीता का यह वाक्य मुझे सदैव प्रेरित करता रहा है।

(३३)प्रश्नः आपके अबतक के जीवन का सबसे रोचक और रोमांचक क्षण।

उत्तर: पड़ोसी देश नेपाल के सिवा मैं विदेश कभी नहीं गया था। वर्ष 2007 में जब बिहार सरकार के सौजन्य से अमेरिका के न्यूयॉर्क स्थित संयुक्त राष्ट्र संघ सभागार में भारत सरकार के विदेश मंत्रालय द्वारा आयोजित आठवें विश्व हिंदी सम्ममेलन में भारत का प्रतिनिधित्व करने और उसके शैक्षिक सत्र में 'वैश्वीकरण, मीडिया और हिंदी' विषय पर अपने आलेख प्रस्तुत करने के साथ-साथ विचार-विमर्श में भाग लेने का जब मुझे सुअवसर मिला, तो वह क्षण मेरे लिए सबसे अधिक रोचक और रोमांचक होना स्वाभाविक था।

नई दिल्ली के इंदिरा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डे से ब्रिटिश एयरवेज से जब मैंने उड़ान भरा और लंदन का हिथ्रो एयर पोर्ट पर पहुँचा, तो वह क्षण भी मेरे लिए रोमांचक रहा और फिर लंदन से दूसरे ब्रिटिश एयरवेज से ही अमेरिका के जॉन एफ. केनेडी एयर पोर्ट के लिए उड़ान भरा, तो सात समुंदर पार का मेरा सपना साकार होते दिखा। जहाज की खिड़की से बार-बार बाहर देखना और समुद्र, पहाड़ आदि को देखते गुजरना आज भी मेरे स्मृति पटल पर आ जाते हैं और मैं रोमांचित हो जाता हूँ।

(३४)प्रश्नः आप किस प्रकार के लोगों से मित्रता पसंद करते हैं? क्या आज की तिथि में आपके कोई ऐसे मित्र हैं जिनके साथ छात्र जीवन से ही आपकी मित्रता रही है?

उत्तर: पहली बात तो यह कि मित्र बनाए नहीं जाते, बन जाते हैं। रही बात कि किस प्रकार के लोगों से मैं मित्रता पसंद करता हूँ, तो इसके उत्तर में मैं कहना चाहूँगा कि जो एक मन के हों, सहज हों और जिनसे खुलकर

मन की बातें की जा सकती हैं। मैं वैसे लोगों से भी मित्रता पसंद करता हूँ जो दु:ख-सुख में साथ देता हो।

विद्यालीय छात्र जीवन से लेकर महाविद्यालय और विद्यालय स्तर तक मित्रता निभाने वाले मित्रों की एक लंबी सूची है, किंतु जिनसे आज भी मित्रता बरकरार है उनमें प्रमुख हैं अर्जुन सिंह, जो वाणिज्य कर विभाग से उपायुक्त से अवकाश प्राप्त कर इन दिनों राँची में स्थाई रूप से रह रहे हैं और दूसरे हैं अखिलेश पाठक, जो बिहार सरकार के संयुक्त सचिव के पद से सेवानिवृत होकर पटना उच्च न्यायालय में अधिवक्ता के रूप में अपनी सेवा दे रहे हैं और राजीव नगर में अपना आशियाना बनाए हुए हैं। प्रो. युवराज देव प्रसाद भी मेरे वैसे ही मित्रों में से हैं जो अनुग्रह नारायण सिंह समाज अध्ययन संस्थान में निदेशक रह चुके हैं और डॉ. एल.एन. शर्मा पूर्व राजनीति विज्ञान विभाग, पटना विश्वविद्यालय के अध्यक्ष भी मेरे सहपाठी रह चुके हैं और जिनसे मेरी मित्रता अभी भी कायम है। इसी प्रकार राजनीति, साहित्य तथा पत्रकारिता से संबंधित भी हमारे अनेक मित्र हैं। वैसे सच कहा जाए, तो पचास के बाद मित्र बनाना मुश्किल है खासकर वर्तमान दौर के भौतिकवादी युग में जहाँ स्वार्थ मित्रता से आगे हो जाता है।

(३५)प्रश्न: भ्रष्टाचार में संलिप्त संस्कृत बोर्ड के अध्यक्ष पद पर काम करने का आपका अनुभव कैसा रहा?

उत्तर: बेहद यादगार। बोर्ड की बेहतरी और संस्कृत के उन्नययन के लिए मैंने ही नहीं, हमारी पूरी टीम ने कड़ी मेहनत की। बोर्ड के समक्ष खड़ी चुनौतियों और हमारी राहों में आई मुश्किलों का सामना हमनें डटकर किया, तभी हमें सफलता मिली।

(३६)प्रश्न: राजनीतिक पद पर आपने पहली बार काम किया। कितना आसान रहा वह काम?

उत्तर: हाँ, मैंने राजनीतिक पद पर पहली बार काम किया। काम के दौरान आई मुश्किलें आसां हो गई मेरी मेहनत और लगन के चलते। वैसे मेरी निष्ठा और ईमानदारी के चलते भी मुझे कामयाबी मिली।

(३७)प्रश्न: आपको सरकारी नौकरी तथा राजनीतिक पद दोनों में से किसमें ज्यादा मजा आया?

उत्तर: कम या ज्यादा मजा का सवाल नहीं सवाल निष्ठा और ईमानदारी का है। मैंने दोनों में अपने दायित्व का निर्वहण बड़ी ईमानदारी और निष्ठा से किया है।

(३८)प्रश्न: बोर्ड में अपने विरोधियों के साथ आप कैसे पेश आए ?

उत्तर: दरअसल, मैंने निर्भीकता से काम लिया। एक दृष्टि-निक्षेप से शत्रु परास्त किए जा सकते हैं। मैं कभी भी Offensive नहीं हुआ, सदैव Defensive रहा। विरोधी बार-बार तीर चलाते रहे, पर मैंने रक्षक की भूमिका निभाई। कभी तीर नहीं चलाया, बल्कि उसे रोकते हुए आगे बढ़ गया। सच तो यह है कि निर्भीकता की एक झड़प से विजय प्राप्त की जा सकती है। राम ने हिमालय की सघन घाटियों में विचरण किया है और उनको शेर, चीते, भालू एवं अनेक विषैले जीव-जंतुओं का सामना करना पड़ा, परन्तु उनको कभी किसी ने हानि नहीं पहुँचाई। मेरी स्थिति भी कुछ वैसी ही थी। मैंने भी अपने विरोधियों पर सीधे उनकी आँखों पर भ्रू-निक्षेप किया, दृष्टियाँ मिलीं, विरोधियों ने आँखें नीची कर लीं और जिन्हें लोग अत्यंत भयानक मानते हैं वे चुपचाप खिसक गए। दरअसल, निर्भीकता से चीता भी वश में किया जा सकता है और भयातुरता के सामने बिल्ली भी शेर बन जाती है। प्रकृति स्वयं बार-बार उच्च स्वर से इसी निर्भीकता की शिक्षा देती है। सच मानिए मैं आशावादी हूँ। वैसे भी निराशा कमजोरी है, उससे हमेशा बचना चाहिए। निर्भीकता ही मेरी शक्ति-पुँज बनी और आत्मनिर्भरता मेरा आत्मबल।

(३९)प्रश्न: बोर्ड के अध्यक्ष पद पर रहकर आप कैसा महसूस करते हैं? क्या आप इससे संतुष्ट हैं?

उत्तर: बोर्ड के अध्यक्ष पद पर रहकर मुझे बिहार के साथ-साथ वैश्विक भाषाओं की जननी कही जाने वाली संस्कृत भाषा के लिए कुछ करने का मौका मिला और साथ ही वर्तमान दौर की सबसे बड़ी चुनौती भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाने का भी। मुझे खुशी है कि इस चुनौती का सामना मैंने अबतक डटकर किया है जिसका परिणाम जनता के सामने है। बोर्ड के दायित्व से मुझे प्रभावन (Exposure) मिला, यह संतोष की बात है। अब तक जो कुछ भी बोर्ड तथा संस्कृत के लिए मैंने किया है उससे संतुष्टि होना स्वाभाविक है, मगर अभी बहुत कुछ करना शेष है जिसके लिए मैं प्रयत्नशील हूँ।

(४०)प्रश्न: बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के राज्यमंत्री का दर्जा प्राप्त अध्यक्ष पद तक पहुँचने के लिए किन संघर्षों से गुजरना पड़ा?

उत्तर: आज सत्तर वर्ष की आयु में मैं जहाँ पर हूँ, वहाँ तक पहुँचने के लिए न तो मुझे किसी राजनीतिज्ञों के आगे-पीछे करना पड़ा और ना ही चमचागिरी, जबकि मौजूदा भारतीय राजनीति में किसी भी राजनीतिक पद

की प्राप्ति के लिए आमतौर पर पैरबी या पैसे की भूमिका अहम होती है। मगर शुक्र है कि मुझे उन रास्तों से होकर नहीं गुजरना पड़ा। कारण कि साहित्य, समाज, पत्रकारिता और संगठन से जुड़कर ही समाज व राष्ट्र के लिए कुछ करने का मैंने संकल्प लिया है और भारत सरकार की एक अच्छी खासी नौकरी से मैंने स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति ली। हिंदी साहित्य की अभिवृद्धि, हिंदी पत्रकारिता को नया आयाम देने तथा तेजी से लुप्त होती राष्ट्रीयता की भावना की स्थिति में राष्ट्रीय चेतना जागरित करने के लिए मैंने काफी मेहनत की है और कई वर्ष संघर्षों की राह में समर्पित किए। यह सब संभव हुआ मेरे आत्मविश्वास और परिश्रम के कारण। मैं खुशकिस्मत हूँ कि संघर्ष के वक्त परिवार ने मेरा पूरा साथ दिया। आज जब सत्तर के दशक में मैं अपने अतीत पर नजर डालता हूँ, तो संतुष्टि का अहसास होता है। अब मेरे लिए खुद को साबित करने की चुनौती नहीं है।

(४१)प्रश्न: बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड, पटना का अध्यक्ष पद संभालने के बाद दो वर्षो तक यानी वर्ष २००८ और २००९ में क्रमशः राष्ट्रीय संगोष्ठी एवं राष्ट्रीय संस्कृत सम्मेलन के अवसर पर आपने सुरुचिपूर्ण स्मारिका प्रकाशित की। फिर वर्ष जनवरी २०१० से आपके संपादकत्व में संस्कृत बोर्ड से साहित्यिक एवं सांस्कृतिक चेतना की वैचारिक पत्रिका 'वाग्वन्दना' का प्रकाशन हुआ। आपने किस उद्येश्य को लेकर और क्यों संस्कृत सम्मेलन और एक पत्रिका के प्रकाशन की आवश्यकता महसूस की? क्या आपके जाने के बाद 'वाग्वंदना' का प्रकाशन हो पायेगा और वह भी नियमित रूप से ?

उत्तर: सबसे पहले तो मैं आपको यह बता दूँ कि बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के तीस साल के इतिहास में संस्कृत शिक्षा के इस मंदिर से संस्कृत भाषा, उसके साहित्य और संस्कृत शिक्षा को लेकर वर्ष 2008 के पूर्व तक न तो किसी संगोष्ठी का आयोजन हुआ और न किसी पत्रिका का प्रकाशन, यह बोर्ड के लिए अत्यंत दु:खद और दुर्भाग्यपूर्ण माना जाएगा। इससे आखिर कौन सा संदेश जाता है? यही न, कि बोर्ड के कर्णधारों के मन में इसके लिए कोई समझ नहीं बन पाई या फिर इसकी आवश्यकता उन लोगों ने नहीं महसूस की और वे सदैव उदासीन रहे। यानी कहा जाए, तो संस्कृत के प्रति समर्पण के भाव का पूरा-पूरा अभाव रहा।

15 सितंबर 2008 को बोर्ड के अध्यक्ष का दायित्व मैंने संभाला और मात्र तीन माह के बाद ही यानी 28 दिसंबर 2008 को पटना के तारामंडल

सभागार में बारह घंटे तक लगातार आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी में संस्कृत के उन्नयन हेतु उसके विभिन्न आयामों पर चर्चा कर मार्गदर्शन प्राप्त किया। इसी तरह पुनः दूसरे वर्ष 28 एवं 29 दिसंबर 2009 को पटना के श्रीकृष्ण स्मारक भवन में दो दिवसीय राष्ट्रीय संस्कृत सम्मेलन में देश भर के ख्यातिप्राप्त संस्कृताचार्यों द्वारा निम्नांकित विषयों पर विचारों का आदान-प्रदान हुआ और बोर्ड को सही दिशा दी गई-

(1) संस्कृत शिक्षण की समस्या और समाधान

(2) भारतीय संस्कृति के सदर्भ में संस्कृत की भूमिका

(3) लौकिक संस्कृत साहित्य में बिहार की प्रतिभागिता तथा

(4) संस्कृत साहित्य में वैज्ञानिक चिंतन

इस सम्मेलन को पद्मभूषण डॉ. सत्यव्रत शास्त्री तथा पूर्व कुलपति डॉ. रामकरण शर्मा सरीखे अंतरराष्ट्रीय स्तर के सुपरिचित संस्कृताचार्यों ने संबोधित किया। इस सम्मेलन के अवसर पर अखिल भारतीय सर्वभाषा कवि सम्मेलन के साथ-साथ संस्कृत विद्यालयों के छात्र-छात्राओं द्वारा मनमोहक सामूहिक नृत्य एवं संगीत की भी प्रस्तुति हुई। कुल पाँच अकादमिक सत्रों में संपन्न इस राष्ट्रीय संस्कृत सम्मेलन में लगभग दस हजार प्रतिनिधियों ने भाग लेकर सभी ने एक मत से यह महसूस किया कि तेजी से ह्रासोन्मुखी संस्कृत भाषा को बचाने की जिम्मेदारी संस्कृत से जुड़े तमाम लोगों की है, लेकिन जिसने संस्कृत को मिटाने और इसे जनभाषा बनाने के रास्ते में रूकावट उत्पन्न करने में जितना योगदान किया है उसे उतनी ही कुर्बानी देनी होगी। कुल मिलाकर यही विचार सम्मेलन के अंत में उभर कर सामने आया कि घर के बुजुर्ग की तरह किसी भी समाज की बुनियाद संस्कृति यानी जीने की राह पर निर्भर करती है जिसे संस्कृत को बचाकर ही सहेजा जा सकता है। इस चिंतन के जरिए ही हम संस्कृत के विकास की नीति तैयार कर सकते हैं।

इस प्रकार सम्मेलन के अतिरिक्त संस्कृत दिवस का आयोजन सहित समय-समय पर संगोष्ठियाँ एवं परिचर्चा जैसे कार्यक्रमों के जरिए संस्कार, संस्कृत और संस्कृति को सहेजने का कार्य किया जा रहा है।

संस्कृत शिक्षा के इस मंदिर रूपी संस्कृत बोर्ड की ओर से साहित्यिक एवं सांस्कृतिक चेतना की वैचारिक पत्रिका 'वाग्वन्दना' के प्रकाशन का उद्येश्य है वैश्विक भाषाओं में समृद्धतम कही जाने वाली संस्कृत भाषा और इसके माध्यम से सांस्कृतिक चेतना जाग्रत करते हुए

संस्कृत साहित्य की अभिवृद्धि में महत्वपूर्ण योगदान देना और संस्कृत शिक्षा में गुणात्मक परिवर्तन के लिए आवश्यक शैक्षणिक वातावरण तैयार करना। मूल्यों के प्रति अडिग और आस्थावान संस्कृत एवं हिंदी की इस द्वैभाषिक स्मारिका एवं त्रैमासिक पत्रिका की दृष्टि साफ, पूर्वाग्रहमुक्त और राष्ट्रीयता की अवधारणा से विनिर्मित है। इसके सारे सरोकार संस्कृत के प्रति प्रतिबद्धता, सामाजिकता और राष्ट्रीयता की संवेदनात्मक अनुभूतियों से संलिप्त होंगे। इसके लेखों व अग्रलेखों में राजनीति से आक्रांत होकर बिखरते समाज, साहित्य, संचार-माध्यम, धर्म और संस्कृति के सार्वकालिक सरकारों के मानदंडों से जुड़े सवाल और उभरते प्रश्न एवं संदर्भो से जुड़ी सूचनाएँ होंगी। इसका दायरा वहाँ तक होगा जहाँ अभी भी थोड़ी रोशनी बाकी है।

हमें विश्वास है कि इसकी रोशनी में शक और शुबहे के बादल छंट जाएँगे, दुविधा और विरोध का कोहरा दूर होगा और मेल व मुहब्बत का आसमान संस्कृत जगत के लोगों की आँखों की रोशनी लौटाएगा जिससे वे मिलकर संस्कृत रूपी कौमी जिंदगी का नया ताना-बाना तैयार कर सकेंगे। हमें भरोसा है कि 'वाग्वन्दना' के माध्यम से संस्कृत से जुड़े हम सब संस्कृत के वास्तविक स्वरूप को पहचान कर इसकी समग्ररूपता को फिर से बलवती बना सकेंगे।

जहाँ तक हमारे नहीं रहने पर 'वाग्वंदना' के नियमित प्रकाशन के होने या न होने का प्रश्न है, हमारा विश्वास है कि हमारे उत्तराधिकारी चाहकर भी इसका प्रकाशन बंद नहीं कर सकते, क्योंकि यह उनकी प्रतिष्ठा से भी जुड़ जाएगी और कोई भी अधिकारी या कर्मचारी अपनी प्रतिष्ठा मिट्टी में मिलती नहीं देख सकता। हाँ, इतना जरूर है कि संबंधित अधिकारियों एवं कर्मचारियों की थोड़ी शिथिलता से इसके नियमित प्रकाशन पर थोड़ी आँच आए। इसलिए मुझे नहीं लगता कि मेरे जाने के बाद 'वाग्वन्दना' का प्रकाशन नहीं हो सकेगा। समाज में एक से एक लोग अच्छे हैं। जरूरत केवल इस बात की है कि उन्हें अच्छी और नेक राह दिखलाई जाए। मैं उसी रास्ते की ओर अग्रसर हूँ जिसपर चलकर आने वाले अध्यक्ष या सचिव भी संस्कृत और बोर्ड की छवि को धूमिल नहीं होने देंगे।

(४२)प्रश्न: **क्या यह सही है कि भारतीय लेखा एवं लेखा परीक्षा विभाग से स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति लेने के बाद आपने दिल्ली को अपना कार्यक्षेत्र बनाया? फिर तकरीबन आठ वर्षो के बाद संस्कृत बोर्ड की गाड़ी को पटरी पर लाने के लिए उसके अध्यक्ष पद पर आपको**

बैठाया गया। आप दिल्ली में कैसा महसूस कर रहे थे?

उत्तर: हाँ यह सही है कि स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के बाद मैंने दिल्ली को अपना कार्यक्षेत्र बनाया कारण कि राष्ट्रीय चेतना की वैचारिक संस्था 'राष्ट्रीय विचार मंच' के राष्ट्रीय महासचिव और उसके मुख-पत्र 'विचार दृष्टि' के संपादक होने के नाते मुझे दिल्ली में रहना ही था। इन दोनों का राष्ट्रीय कार्यालय भी पटना से दिल्ली में स्थानांतरित हो गया था और पूरे भारत में स्थापित उसकी शाखाओं के कार्यकलापों का मुझे समन्वय करना था। इसलिए दिल्ली जाने के बाद जहाँ मेरे कार्यों का विस्तार हुआ, वहीं हमारे लेखन को भी गति मिली। कई पुस्तकें प्रकाशित हुईं। वैसे सच कहा जाए तो दिल्ली में अपनापन का मैंने अभाव देखा। आत्मीयता नाम की वहाँ चीज ही नहीं है। जो कुछ है वह सब दिखावा है। हाँ, वहाँ के लोग ठकुरसुहाती ओठ सेवा (लिप सर्विस) देना बखूबी जानते हैं, पर समय आने पर उतनी ही दूर नजर आते हैं। आबादी और प्रदूषण बढ़ने से भी समस्याएँ बढ़ी हैं जिसके लिए लोगों को सचेत होना होगा।

आज जब सब कुछ दिल्ली में ही केंद्रित होते जा रहे हैं, पता नहीं क्यों, मुझे पटना अधिक पसंद आ रहा है। हालांकि आठ सालों के दौरान दिल्ली में मैंने एक अपना साहित्य संसार बना लिया था और संगठन एवं पत्रिका के माध्यम से सैकड़ों शुभच्छुओं की एक ऐसी जमात बन गई थी कि किसी भी कार्यक्रम को कार्यान्वित करना मेरे लिए आसान हो गया था।

(४३)प्रश्न: क्या आप इस बात से सहमत हैं कि हम आज बस तकनीक पर ही ज्यादा से ज्यादा निर्भर होते जा रहे हैं? तकनीक पर निर्भर होते जाने से हम किन-किन चीजों से महरूम हो रहे हैं ?

उत्तर: हाँ, मैं आपकी इस बात से सहमत हूँ कि हम आज बस तकनीक पर ही ज्यादा-से-ज्यादा निर्भर होते जा रहे हैं जिसके परिणामस्वरूप हम समुदाय, रिश्ते-नाते, समाज और सामुहिकता और हरेक चीज से महरूम होते जा रहे हैं। सामुहिकता और सहभाजन जो मानव समाज के लिए धर्मनिष्ठता की तरह थी, को हमने खोया है। आज तो बस तितर-बितर, एकाकी, तनावग्रस्त जीवन हम जी रहे हैं। इसी वजह से सामुदायिक मूल्य लुप्त होते जा रहे हैं।

उदाहरण के तौर पर आप कम-से-कम शहरी समाज में मोबाइल फोन की टेक्नोलॉजी की लोकप्रियता की वजह से हम लोगों से आमने-सामने होकर बात करने की अपेक्षा हम हर दम फोन पर ही बात करने के आदी

हो गए हैं, लेकिन हमें अपने पड़ोसी के बारे में कुछ भी पता नहीं होता, हम जानना भी नहीं चाहते। हम खुद को सीमित करते जाने के लिए तैयार कर दिए गए हैं, क्योंकि तकनीक इसी दिशा में बढ़ते जाने में सहायक है।

(४४)प्रश्नः क्या आपने कभी भी आलस्य या प्रमाद को अपने पास फटकने दिया है?

उत्तरः मैंने कभी भी आलस्य या प्रमाद को अपने पास फटकने नहीं दिया है। मुझे अच्छी तरह याद है कि सरकारी सेवा में आने के दिन से ही तन-मन और धन तीनों से पूर्ण समर्पण के साथ, प्रत्येक क्षण दूसरों के बारे में सोचा है। आखिर तभी तो आज से तकरीबन 53 साल पूर्व जिस दिन महालेखाकार, बिहार के राँची कार्यालय में नियुक्ति-पत्र सौंपकर योगदान किया उसी दिन उस कार्यालय के बिहार सिविल ऑडिट एंड एकाउन्ट्स ऑफिस एसोसिएशन की कार्यकारिणी के पदाधिकारी एवं सदस्यों के वार्षिक चुनाव के लिए जारी अधिसूचना को सूचना पट्ट पर देखकर मैंने कार्यकारिणी के सदस्य के लिए अपना मनोनयन दाखिल कर दिया और चुनाव अभियान प्रारंभ कर दिया। संयोग ऐसा कि उस चुनाव में तो मैं विजयी हुआ ही, 31 मई 2000 को जब मैंने प्रधान महालेखाकार लेखा परीक्षा, बिहार, पटना के कार्यालय से वरीय लेखा परीक्षा अधिकारी के पद से सार्वजनिक जीवन बिताने हेतु स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति ली, उस दिन भी अखिल भारतीय लेखा परीक्षा एवं लेखा अधिकारी एसोसिएशन के संयुक्त महासचिव पद से मैंने विदा ली। आलस्य या प्रमाद को अपने पास फटकने नहीं देने का इससे अच्छा उदाहरण और क्या हो सकता है? और आज जब मैं 75 के पड़ाव से गुजर चुका हूँ तब भी लेखन-कर्म में लगा हूँ। यह मेरी सक्रियता की ओर संकेत है।

(४५)प्रश्नः जीवन की वे कौन सी परिस्थितियाँ रहीं जिन्होंने आपको एक लेखक के रूप में तैयार किया ?

उत्तरः बचपन से ही मुझे साहित्य पढ़ना अच्छा लगता था। साहित्य में मेरा मन रमता था। मैंने आज से कई दशक पूर्व प्रेमचंद और रेणू को पढ़ा। फिर शरदचंद को पढ़ना अच्छा लगा और साथ ही वृंजलाल वर्मा और अमृत लाल नागर के हिंदी का कथा-साहित्य चुन-चुन कर पढ़ता था। मुझे लेखक बनना है ऐसा कभी निर्णय मैंने नहीं लिया। जिस प्रकार मुझे प्रारंभ से आज तक साहित्य व राजनीति आदि की पुस्तकें पढ़ने की आदत रही है उसी प्रकार लिखना भी मैं पसंद करता रहा हूँ। लिख लेने के बाद मुझे अच्छा

लगता है। लिखना मेरी पहली प्राथमिकता है। हाँ, कुछ पढ़ लेने के बाद अनायास विषय मेरे मानस पटल पर आ जाता है और फिर उसी विषय पर लिखना प्रारंभ कर देता हूँ। संदर्भ के लिए मेरे एक हजार से अधिक पुस्तकें और पत्र-पत्रिकाएँ आलमारियों में भरी पड़ी हैं। सच कहा जाए तो अभिरुचि सामाजिक सरोकारों से जुड़ी रही है और अपनी बातें और विचारों को लोगों तक पहुँचाने की उत्कंठा। बस उत्कंठा ने मुझे लेखन की ओर प्रवृत्त किया और आज मैं बिना लेखन किए एक दिन भी नहीं रह सकता, क्योंकि लेखन से मुझे संतुष्टि मिलती है।

(४६)प्रश्न: आपकी सबसे बड़ी संपदा क्या है?

उत्तर: आपको एक महान विचारक का यह कथन याद होगा कि जब धन चला गया, तो कुछ भी नहीं गया, जब स्वास्थ्य चला गया, तो कुछ गया, जब चरित्र चला गया, तो सब कुछ गया। मैंने अब तक के अपने जीवन में इस विचार के इसी कथन को चरित्रार्थ किया है अपने चरित्र को बचाकर। इसलिए मेरी सबसे बड़ी संपदा चरित्र है जिसपर हमने कभी दाग का एक छीटा तक पड़ने नहीं दिया।

स्वामी विवेकानंद का कहना था कि यदि चरित्र निर्माण हो गया है, तो बाकी निर्माण स्वत: ही हो जाएगा। दरअसल, चरित्र का निर्माण विचार ही करते हैं। इस दृष्टि से अच्छे चरित्र के लिए हमें उत्तम विचारों की जरूरत होती है। हमने इसी जरूरत को अपने जीवन में मद्देनजर रखा है। हमारा चरित्र ही हमें अच्छा या बुरा कर्म करने के लिए अनुप्रेरित करता है।

आज के दिन हमारी पहचान हमारे रंग-रूप, धन-वैभव, कपड़े और मकानों से नहीं, बल्कि हमारे चरित्र से है। इसलिए चरित्र को ही हम अपने जीवन की सबसे बड़ी संपदा समझते हैं।

(४७)प्रश्न: अबतक आपकी डेढ़ दर्जन पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं और तकरीबन एक दर्जन पुस्तकें प्रकाशनाधीन हैं। इनमें से आप अपनी सबसे श्रेष्ठ कृति किसे मानते हैं?

उत्तर: इसके पहले कि आपके इस प्रश्न का उत्तर दूँ मैं महान चित्रकार मॉर्देसी ऑरदेन का जवाब आपके समाने प्रस्तुत कर देना चाहता हूँ। इस महान चित्रकार से जब पूछा गया कि 'आप अपनी सबसे सुंदर कृति किसे मानते हैं? तो उन्होंने कहा, 'उसे जिसे मैं कल रचूँगा।'

मुझे लगता है कि चित्रकार मॉर्देसी ऑरदेन के जवाब की तरह उनके शब्दों को कुछ हेर-फेर के साथ कहूँ, तो कहूँगा कि मेरी सर्वश्रेष्ठ

कृति वही होगी जिसे मैं कल रचूँगा। कारण कि मेरे पास सपने हैं और सपने के अनुसार मैं अपने को बूढ़ा नहीं मानता हूँ और न कभी मैंने सेवा से अवकाश प्राप्त किया है। मैं युवा हूँ, क्योंकि युवा की तरह मैं भी सपने देखता हूँ। हर रोज पढ़ता हूँ और खूब लिखता हूँ। किताबें मेरी सबसे सहृदय मित्र हैं और लेखन मेरा सर्वश्रेष्ठ रचना-कर्म। इसलिए कहता हूँ कि कल आने वाली मेरी रचना सर्वश्रेष्ठ होगी। दिन-रात में दो बार खाता हूँ और दो-तीन बार अल्पाहार लेता हूँ जिससे पेट की भूख शांत होती है, मगर अधिकाधिक पढ़ने-लिखने से ही मेरे मानस की भूख शांत होती है।

(४८)प्रश्न: जिंदगी की सबसे बड़ी उपलब्धि आप किसे मानते हैं ?

उत्तर: जब मैं किसी की मदद करता हूँ और वह मदद कारगर सिद्ध होती है, तो मुझे अत्यधिक खुशी होती है और उसे मैं अपनी सबसे बड़ी उपलब्धि इसलिए मानता हूँ, क्योंकि मैंने अबतक अपने को इस लायक बनाया कि दूसरों की मदद कर सकता हूँ।

दूसरी बड़ी उपलब्धि मैं नैतिक दायित्वबोध को मानता हूँ जो हमारी पहली उपलब्धि से जुड़ा है, क्योंकि जबतक नैतिक दायित्वबोध नहीं होगा, किसी की मदद करने की बात मन में आएगी ही नहीं।

मैं अपनी जिंदगी की सबसे बड़ी उपलब्धि ईमानदारी को भी मानता हूँ, जिसके बल पर मेरी पहचान बनी है और लोगों के मानस पटल पर मैं बैठ गया हूँ और जिसकी मुक्तकंठ से लोग सराहना करते हैं जिससे मुझे अत्यधिक संतुष्टि मिलती है और संतुष्टि मेरे लिए सबसे बड़ा धन है। चाहे भारतीय लेखा एवं लेखा परीक्षा विभाग में छत्तीस वर्षो की मेरी सेवा हो या बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के राज्यमंत्री का दर्जा प्राप्त अध्यक्ष पद पर तीन साल का कार्यकाल, किसी ने मुझपर ऊँगली कभी नहीं उठाई। हर इंसान का अपना एक रूप होता है, स्वभाव होता है और उसे क्या कुछ जीवन में करना है यह सब भी लगभग तय होता है। जीवन में संघर्ष होता है तब ही इंसान जीवन का आनंद ले पाता है जिसे मैं ले रहा हूँ।

(४९)प्रश्न: आपके लेखकीय जीवन का जाने-अनजाने आपके घर-परिवार व सगे-संबंधियों पर क्या कोई प्रभाव पड़ा है? या उन्हें कोई परेशानी झेलनी पड़ी है?

उत्तर: हाँ, मेरे लेखकीय जीवन का घर-परिवार व सगे संबंधियों पर बिल्कुल प्रभाव पड़ा है और उन्हें परेशानी भी उठानी पड़ती है। मेरी श्रीमति जी को तो खासतौर पर परेशानी उठानी पड़ती है, क्योंकि घर के सारे कार्यों

का बोझ तो उनके कंधों पर है ही, मेरे हिस्से की बाहरी जिम्मेवारी जेस बिजली या टेलीफोन बिल के भुगतान के लिए उन्हें बिजली ऑफिस जाना पड़ता है अथवा खाने-पीने की सामग्रियों का भी प्रबंध वही करती हैं जिसके लिए मुझे उनके ताने अवश्य सुनने को मिलते हैं, पर मैं उन्हें हँसकर टाल जाता हूँ। इसलिए लेखक होने का मूल्य तो चुकाना ही पड़ता है।

(५०)प्रश्नः किस रूप में मूल्य चुकाया आपने?

उत्तर : मैंने नहीं, परिवार के सदस्यों या पत्नी को यह मूल्य चुकाना पड़ता है। जाहिर है कि लेखक होने के नाते साहित्यिक सभा-संगोष्ठियों तथा दोस्तों-रिश्तेदारों वगैरह में मैं अपना समय ज्यादा दिया करता रहा हूँ और आज भी दिया करता हूँ जिसकी वजह से घर-परिवार की जरूरतों के लिए पर्याप्त समय नहीं दे पाया और अब भी नहीं दे पा रहा हूँ।

(५१)प्रश्नः आपके घर-परिवार में आपका मूल्याँकन किस रूप में होता है?

उत्तरः आमतौर से जैसे घर की मुर्गी का होता है। आपने यह कहावत तो सुनी ही होगी- 'घर की मुर्गी दाल बराबर', पर इसपर ज्यादा सोचने-विचारने की मैं जरूरत नहीं समझता, क्योंकि जब मुझे सृजन करना है, तब यह सब तो मुझे झेलना ही पड़ेगा और फिर पत्नी का गुस्सा भी मुझे पसंद आता है। दाम्पत्य जीवन का यही तो मजा है।

(५२)प्रश्नः आप किस व्यवहार और किन चीजों से सबसे अधिक प्रसन्न होते हैं और किस बात से अधिक चिंढ़ते हैं?

उत्तरः भाई मदन जी, निश्छल और आत्मीय व्यवहार से प्रसन्न होता हूँ और जब कोई झूठ बोलकर पकड़ा जाता है, तो मुझे चिढ होती है। इसके अतिरिक्त औपचारिकता भी मुझे खीझ उत्पन्न करती है। इसके ठीक विपरीत यदि कोई स्पष्ट बात मुझसे करता है, तो मुझे प्रसन्नता होती है।

इसी प्रकार अपने देशहित के खिलाफ कोई बात करता है, तो उसका पूरजोर मुखालफत करता हूँ। यदि कोई गलत कदम उठाता है तो मुझे कतई पसंद नहीं और उसका साथ छोड़ देता हूँ चाहे वह कितना ही बड़ा आदमी क्यों न हो।

(५३)प्रश्नः अगर आपको सिद्धेश्वर को पारिभाषित करना हो, तो आप क्या कहेंगे?

उत्तरः वैसे तो सिद्धेश्वर को शाब्दिक अर्थ में पारिभाषित करने पर इसका अर्थ निकलता है जिसने ईश्वर को सिद्ध कर लिया है वही सिद्धेश्वर

है, लेकिन मैंने ईश्वर को सिद्ध कर लिया है ऐसा दावा मैं नहीं करता हूँ और कर भी नहीं सकता। पर मैं एक किसान का बेटा हूँ, इस नाते किसान की निष्ठा, कर्तव्य परायणता, ईमानदारी, आत्मनिर्भरता, सरलता और सहजता आदि जो सदगुण या विशेषताएँ हैं उन्हें ही अपने जीवन के प्रारंभ से अबतक आत्मसात् करने की मैंने कोशिश की है और अपने पिता जी के बताए रास्ते पर चलता रहा हूँ।

जहाँ तक सरकारी सेवा में रहकर अपने दायित्वों के निर्वहण सवाल है, पटना विश्वविद्यालय से सन् 1962 में एम.ए. करने के बाद मात्र छह-सात माह तक भारतीय रेलवे में नौकरी करने और उसके बाद भारतीय लेखा एवं लेखा परीक्षा विभाग में लगातार 36 वर्षो तक इसलिए अपनी सेवा देना पसंद किया, क्योंकि भारतीय रेलवे में भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी देखने के बाद ही उसे छोड़ने का मैंने मन बना लिया और भारतीय लेखा एवं लेखा परीक्षा विभाग के महालेखाकार कार्यालय, राँची और पटना में छत्तीस वर्षो तक इसलिए सेवा करता रहा कि यहाँ मुझे अपने कामों से संतुष्टि मिलती रही जिसे सेवा संतुष्टि (Job Satisfaction) कहा जाता है और दूसरे कि यहाँ शीर्ष अधिकारियों का दबदबा या दवाब नहीं रहा जिसे बॉसिज्म कहा जाता है।

हाँ, महालेखाकार कार्यालय में भी वरिष्ठ लेखा परीक्षा अधिकारी के पद पर रहने के बावजूद इसलिए स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति मैंने ली, क्योंकि सार्वजनिक जीवन में रहकर समाज और देश के व्यापक एवं वृहतर हित में काम करने की मेरी तमन्ना थी और उसे भी पूरा कर यानी बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के राज्य मंत्री का दर्जा प्राप्त अध्यक्ष के दायित्व का निष्ठा एवं ईमानदारीपूर्वक निर्वहण कर उसे भी छोड़ा, क्योंकि रचना-कर्म की गति मेरी धिमी पड़ गई थी जिसे आज पचहत्तर वर्ष की उम्र पार करने के बाद भी पूरा कर रहा हूँ। सृजन कार्य में मुझे मन लगता है और साहित्य की दुनिया में रहकर राजनीति के लड़खड़ाते कदम को भी रास्ते पर लाने का प्रयास कर रहा हूँ जिससे मुझे संतुष्टि मिलती है। मैं समझता हूँ इतना कुछ कहने-करने के बाद तो सिद्धेश्वर को परिभाषित करने के प्रश्न का उत्तर आपको मिल ही गया होगा।

(५४)प्रश्न: आपको कैसे लोगों से मिलना अच्छा लगता है?

उत्तर: मुझे वैसे लोगों से मिलना अच्छा लगता है जिनमें इंसानियत दिखती है या फिर वैसे लोगों से जिनके दिल में समाज व देशहित में कुछ

कर गुजरने का ज़ज़्बा हो। जिनकी बातें निराधार होती हैं या तर्कसंगत नहीं यानी कुतर्क करते हैं उनकी बातें सुनकर मैं अपने को किनारा कर लेता हूँ और उस दिन का इंतजार करता हूँ जब वे मुझे समझने के काबिल हो जाते हैं इसीलिए तो–

दरवाजे खोलकर रखता हूँ वैसे लोगों के लिए,
क्योंकि 'संस्कृति' या 'बसेरा' निवास हमारे सयाने हैं,
मैं जानता हूँ कि समझने पर वे आएँगे,
उन्हीं दिनों के लिए मुझे अपनी ऊर्जा बचानी है।

(५५)प्रश्न: पचहत्तर की उम्र पार करने के बावजूद आप कलम को नहीं छोड़ पा रहे हैं। क्या आपको ऐसा लगता है कि कलम वाकई बंदूक से ज्यादा ताकतवर होती है?

उत्तर: भाई मनोज जी, आपने ठीक कहा कि पचहत्तर की उम्र पार कर जाने के बावजूद हम कलम को नहीं छोड़ पा रहे हैं। दरअसल, प्रतिदिन चार–पाँच अखबार और पत्र–पत्रिकाएँ पढ़ने के बाद व्यक्ति, परिवार, समाज, राजनीति, राष्ट्रीय एवं वैश्विक मसलों पर इतनी सामग्रियों के मसाले मिल जाते हैं कि मुझे लगता है उसपर अपनी कलम चलाकर और अपने विचार को स्थाई बनाने की फिराक में उसे दूसरे लोगों अथवा अगामी पीढ़ी तक पहुँचाने के लिए कलम चलाते रहना ही एक मात्र राह दिखती है।

फिर कलम में इतनी ताकत है कि वह बंदूक को भी मात दे सकती है। क्रांति ऐसे नहीं आती। आमजन में चेतना लानी पड़ती है। उन्हें मुद्दों के प्रति सावधान, संघर्ष अथवा जागरूक बनाना पड़ता है। आजादी ऐसी नहीं आई थी। उसके लिए जितनी कुर्बानियाँ हमारे देशवासियों और देशभक्तों को देनी पड़ी थी, उससे कम नहीं कलमकारों को अपनी कलम का इस्तेमाल कर साहित्य और उसकी कविता, लेख, निबंध आदि माध्यमों से अलख जगाना पड़ा था। इस माने में देखा जाए तो कलम वाकई बंदूक से ज्यादा ताकतवर होती है।

(५६)प्रश्न: अगर आपसे कलम और किताबें छीन ली जाएँ और ऐसे टापू पर भेज दिया जाए जहाँ कोई न हो, तो आप क्या करेंगे ?

उत्तर: यह तो हमारी कल्पना से परे है।

(५७)प्रश्न: गाँव के किसान परिवार में जन्में आपकी शिक्षा मैट्रिक के बाद उच्च शिक्षा पटना में हुई और आज आपका जीवन पटना-दिल्ली के बुद्धिजीवियों के बीच बीत रहा है। आज आप कैसा महसूस करते हैं?

उत्तर: मनोज जी, आपका यह कहना सही है कि गाँव के एक किसान परिवार में जन्म लेने के बाद मैट्रिक तक तो देहात के स्कूलों से ही प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त की और उसके बाद उच्च शिक्षा पटना कॉलेज तथा पटना विश्वविद्यालय से, मगर आज मैं पटना-दिल्ली के बुद्धिजीवियों के बीच अपना जीवन बिता रहा हूँ।

दरअसल, पटना-दिल्ली में रहते हुए भी आज से तीन-चार वर्ष पूर्व तक चार-पाँच वर्षो के अंतराल पर पाँच-सात घंटे के लिए ही सही अपने गाँव सहित आस-पास के गाँवों में जाकर न केवल लोगों से मिलता रहा था, बल्कि खेत-खलिहान में पुआल पर दो-तीन सौ ग्रामीणों के बीच सामाजिक एवं राजनीतिक गतिविधियों पर चर्चा करता था जिसमें लोगों की दिलचस्पी स्पष्ट देखने को मिलती थी, मगर अब जब शहर की सारी गंदी नालियाँ गाँवों की ओर से गुजरने लगी हैं, ग्रामीण परिवेश और वहाँ के लोगों की मानसिकता में बहुत बड़ा बदलाव दिख रहा है, भाई-चारे, सद्भाव, समरसता, निश्छलता, सरलता और सहजता की जगह गाँव के लोगों में भी परस्पर, घृणा, मतभेद, द्वेष, जलन ने ले रखी है। दूसरी बात यह है कि हमारी पीढ़ी के लोगों में से वहाँ 10 प्रतिशत से भी कम दिखते हैं। अपनी रोजी-रोटी की जुगाड़ में ज्यादातर लोग शहर की ओर पलायन कर गए हैं या जो मध्यवर्गीय किसान-मजदूर हैं वे भी अपने बाल-बच्चों की पढ़ाई-लिखाई वास्ते अथवा अपने स्वयं का भी शेष जीवन बिताने के लिए शहर में जा बसे हैं। ऐसे में नयी पीढ़ी से अजनबी की तरह रहना मेरी मजबूरी है, क्योंकि वहाँ मुझे कोई अपना नहीं समझेगा। इसलिए मैं अपनी आँख का पानी छुपा लेता हूँ।

ऐसी स्थिति में गाँवों में जाना मैं समझता हूँ निरर्थक होगा, वैसे पचहत्तर की उम्र पार जाने के बाद उम्र भी लंबी दूरी तय करने की अनुमति नहीं देती और वैसे भी सभी कामों को छोड़ अपना शेष जीवन समाज व देशहित में लेखन में ही देना मैंने श्रेयष्कर समझा है। पुस्तकों के सृजन और सभा-संगोष्ठियों में उद्गार के माध्यम से ही समाज व देश के लोगों को कुछ दे सकूँ तभी हमारे शेष जीवन की सार्थकता सिद्ध होगी, यही मेरी समझ है।

(५८)प्रश्न: कैसी टिप्पणियाँ, बयान या उद्गार सुन या पढ़कर आपको क्रोध आता है?

उत्तर: जब कहीं किसी की टिप्पणियाँ, बयान या उद्गार अपने देशहित के विरूद्ध होते हैं या पुस्तकों में पढ़ता हूँ उसे सुन या पढ़कर मुझे क्रोध आता है और तुरंत मैं उसका विरोध भी प्रकट कर देता हूँ।

(५९)प्रश्नः चूँकि मैं आपके साथ रहा हूँ, मैंने देखा है कि सार्वजनिक जीवन जीते हुए आपके पास कई अवसर आए जब आप अकादमिक या राजनीतिक पदों पर जा सकते थे, मगर एक बार बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के अध्यक्ष पद पर आपकी नियुक्ति भी हुई, तो मात्र तीन साल तक उसके दायित्व का निर्वहण कर उसे आपने स्वतः छोड़ दिया जबकि तीन साल तक आप और उस पद पर रह सकते थे। इसके वास्तविक कारण क्या रहे?

उत्तरः बात ऐसी है मनोज जी कि मैं एक किसान परिवार का रहा हूँ और मेरे पिताजी की फिर भी यह इच्छा रही कि मैं बिहार के सर्वश्रेष्ठ कॉलेज में पढ़ूँ। संयोग से वैसा हुआ भी कि मैं पटना विश्वविद्यालय से संबद्ध बिहार का कला के मायने में सर्वश्रेष्ठ पटना कॉलेज जिसे पूरब का ऑक्सफोर्ड कहा जाता रहा है, का मैं विद्यार्थी रहा और चार साल में आई. ए. तथा स्नातक की परीक्षा पास करने के बाद पटना विश्वविद्यालय से स्नातकोत्तर की डिग्री ली।

किसान परिवार की वजह से मुझमें किसान का संस्कार-यथा स्वाभिमानी, ईमानदारी, निष्ठा और कर्तव्यपरायणता प्रारंभ से भरे रहे और कभी भी हीनभावना से मैं ग्रस्त नहीं रहा और न आज हूँ। इसीलिए, तो भारतीय रेलवे की नौकरी त्याग कर भारतीय लेखा एवं लेखा परीक्षा विभाग में मौका मिलने पर मैंने पूरे छत्तीस वर्षो तक सेवा करने के बाद स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति लेकर सार्वजनिक जीवन बिताना ही मैने उचित समझा। इसके दो कारण थे। एक तो भारतीय लेखा एवं लेखा परीक्षा विभाग के महालेखाकार कार्यालय में हमारे कार्यकाल में भ्रष्टाचार यानी रिश्वतखोरी नहीं थी और 'बॉसिजम' भी नहीं के बराबर रहा, भले ही मौजूदा दौर में उसकी यह स्थिति नहीं रह गयी हो। इसलिए मैं वहाँ तीन दशक से भी ज्यादा अवधि तक रहने में मुझे कोई परेशानी नहीं हुई। फिर समाज व देश के व्यापक और वृहतर हित में सार्वजनिक जीवन में आया, तो यहाँ की राजनीति मुझे इसलिए नहीं भायी, क्योंकि मौजूदा दौर की राजनीति के गिरते मापदंड, अपराधियों की बढ़ती संख्या, बाहुबलियों और धनपशुओं का बोलबाला, चापलूसों की ही चलती और दखलंदाजी, राजनीतिक अस्थिरता के साथ-साथ भ्रष्टाचार, हिंसा, फिजुलखर्ची जैसी प्रवृत्ति की वजह से निःस्वार्थ भाव से अपने कर्तव्यों का निर्वहण करना मेरे लिए मुश्किल जान पड़ा और संस्कृत बोर्ड छोड़ने का भी एक मात्र कारण यह रहा कि वह भी आकंठ भ्रष्टाचार में डुबा है जिसे मैंने

अपने आत्मबल, निष्ठा, ईमानदारी, नियम-कानून की जानकारी की वजह से पूरे समाज में अपनी एक अलग पहचान व प्रतिष्ठा, आत्मविश्वास तथा अपनी प्रशासनिक क्षमता के बल पर अपने तीन साल के कार्यकाल तक बोर्ड को पटरी पर लाने का प्रयास किया, मगर उसके बाद वह मुझे गंवारा इसलिए भी नहीं लगा कि मेरा मूल सृजन-धर्म छूट रहा था। राजनीति और संस्कृत बोर्ड की स्थिति पर मुझे दिविक रमेश की कविता की निम्न पंक्तियाँ याद आ रही हैं जिसे आप भी देखें-

'आज न तसल्ली में तसल्ली है,
न दु:ख में दु:ख
यहाँ तक चालाकियाँ भी
अब कहाँ रहीं ढकी-दबी
सरेआम नग्न हैं
घूम रही हैं बेइमानियाँ पेट फुलाए।'

भाई मनोज जी, मुझे नहीं लगता कि इससे अधिक अब और कुछ आपके समक्ष प्रस्तुत करने की जरूरत है।

(६०)प्रश्न: छिहत्तर साल आपने अपनी जिंदगी का पूरा किया और इतने सालों में पद, सम्मान, प्रतिष्ठा और ऐश्वर्य-सारा कुछ आपको मिल चुका है। वह क्या है जो नहीं मिला है?

उत्तर: आपने सही कहा, विगत 18 मई, 2016 को मैं अपनी जिंदगी का पचहत्तर साल पूरा कर 76 वाँ वर्ष भी 18 मई, 2017 को पूरा कर चुका हूँ और इतने वर्षो के दौरान पद, प्रतिष्ठा, सम्मान और ऐश्वर्य मुझे सब कुछ मिल चुका है जिससे मैं पूरी तरह संतुष्ट हूँ और सबसे बड़ी बात तो यह कि मैं स्वस्थ हूँ और अपने जीवन के छिहत्तर साल का सफर मान-सम्मान और आत्माभिमान के साथ पूरा कर लिया। न तो रक्तचाप से पीड़ित और न ही मधुमेह का शिकार। साथ ही मेरी श्रीमति जी भी स्वस्थ हैं और मेरे कदम से कदम मिलाकर चल रही हैं बिना किसी बीमारी को ढोए। हाँ, इधर हाल के दिनों में मेरे दाहिने पैर के घुटने में दर्द हो आया है जिसे लोग बुढ़ापा की निशानी कहते हैं। इसलिए मैं आश्वस्त हूँ अपने परिवार के सदस्य सरीखे होमियोपैथ चिकित्सक डॉ. महेश प्रसाद के इलाज पर, जिन्होंने अपनी फैक्ट्री निर्मित होमियोपैथिक दवा के साथ कसरत व व्यायाम करने की सलाह देकर स्वस्थ जीवन जीने का नुस्खा दे रखा है। और सबसे बड़ी बात यह है कि लगभग डेढ़ दर्जन पुस्तकों के बाद वर्षो से मेरी

कलम जो शिथिल पड़ गई थी फिर से सृजन व लेखन के पथ पर अग्रसर है जिसका प्रतिफल है कि आधा दर्जन पुस्तकों की पांडुलिपियाँ मुद्रण के लिए इंतजार कर रही हैं और कम्प्यूटर पर उसका शब्द-संयोजन हो रहा है। बस और मुझे कुछ नहीं चाहिए साहित्य के माध्यम से समाज व देश की सेवा के सिवाय।

(६१ प्रश्नः क्या आप कभी खालीपन या अकेलापन महसूस करते हैं? नहीं तो क्यों नहीं?

उत्तर: नहीं, मैं कभी भी खालीपन या अकेलापन नहीं महसूस करता हूँ, क्योंकि एक तो लेखन एक ऐसा कार्य है जो मुझे अकेलापन महसूस होने नहीं देता और दूसरे कि प्रायः सब दिन कोई न कोई मेरे मित्र, शुभेच्छु, सामाजिक-राजनीतिक कार्यकर्ता, साहित्यकार एवं पत्रकार बन्धुवर सहित गाँव-घर के लोग हमारे निवास पर आकर मेरे अकेलेपन को आने ही नहीं देते, यह मेरा सौभाग्य है अन्यथा आज के इस भौतिकवादी युग में किसे फुर्सत है किसी से मिलने का ?

वैसे सच मानिए, लोगों के आने से मैंने अपने लेखन में कभी व्यावधान नहीं महसूस किया, वरन् उनके आने से एक तो श्रीमति जी मेरे समक्ष भी एक प्याली चाय रख देती हैं वरना वैसे मेरे लिए कभी चाय नहीं बनती और दूसरे कि लिखते-लिखते जब थक जाता हूँ तो बीच में लोगों से बातचीत कर पुनः मुझमें जहाँ ऊर्जा आ जाती है, वहीं उनसे बातचीत के दौरान व्यक्ति, समाज, परिवेश, धर्म, संस्कृति, राज्य और देश के बारे में मुझे वैसी ही सही-सही सूचना और ज्ञान मिल जाता है जैसे पुस्तकों को पढ़ने-लिखने से मिलते हैं। आगन्तुकों में बौद्धिक लोगों से धर्म, संस्कृति और सामाजिक नियमों के बारे में मुझे जानकारी मिलती है। इसलिए ऐसी स्थिति में खालीपन या अकेलापन महसूस करने का मेरे साथ कोई सवाल ही नहीं उठता।

(६२)प्रश्नः क्या आप केवल अपने बारे में सोचते हैं ?

उत्तर: नहीं, मैं केवल अपने बारे में नहीं सोचता हूँ, क्योंकि यदि मैं केवल अपने बारे में सोचूँगा, तो दुनिया आगे कैसे बढ़ेगी? हमारा कर्तव्य है कि एक सुंदर दुनिया आने वाली पीढ़ी को सौंपे। आखिर तभी तो पढ़ाई-लिखाई के बाद जब हमने सरकारी सेवा की, तो अपने परिवार के सभी सदस्यों के लिए रोटी, कपड़ा और मकान मुहैया कराने का प्रयास किया और जब उसकी पूर्ति हो गई, तो समाज व देश के लिए व्यापक एवं वृहतर हित में स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति लेकर सार्वजनिक जीवन बिताया और आज

जब मैं छिहत्तर की उम्र पार कर गया हूँ तब पूरी तरह रचना-कर्म में अपना समय दे रहा हूँ, क्योंकि जिस पेड़ का फल मैं आज खा रहा हूँ उसे मैंने नहीं लगाया था यानी दूसरों द्वारा लिखी पुस्तकों से ज्ञान प्राप्त किया था इसलिए आज मेरा भी यह कर्तव्य है कि यह रचना रूपी कर्म का पेड़ आने वाली पीढ़ी के लिए लगा रहा हूँ। हम सिर्फ अपने बारे में न सोचकर इसे गतिमान रखने के लिए आने वाली पीढ़ी के बारे में सोचता हूँ। ग्लोबल वार्मिंग और प्रदूषण कम करने का प्रयास करता हूँ, जैविक ईंधन को बचाता हूँ और पानी का इस्तेमाल सोच-समझकर करता हूँ, क्योंकि आज तक मनुष्य के लिए इसका विकल्प नहीं बना है। मैंने अपने जीवन में भरपूर प्रतिष्ठा पाई है। इसलिए उसके एवज में समाज के कल्याणार्थ मैंने सृजन के कार्य को चुना है जिससे मुझे संतुष्टि भी मिलती है।

(६३)प्रश्नः क्या सब कुछ गंवाकर केवल धन प्राप्त करके आप खुद को समृद्ध कह सकते हैं खासतौर पर तब जब दीपावली के अवसर पर समृद्धि की कामना की जाती है?

उत्तरः आप इस बात से अवगत हैं कि धन को हाथ का मैल समझने वाले हमारे मनीषियों ने सदा से धन और समृद्धि पर चरित्र को तरजीह दी। हमारे धर्मशास्त्रों में भी सद्चरित्र को सर्वोत्तम ध्येय बताया गया है और उसी धर्मग्रंथों में समृद्धि का एक रूप अपनी संस्कृति को भी बताया गया है जिसमें जहाँ एक ओर सुख-शांति है, तो वहीं दूसरी ओर 'सर्वे सन्तु निरामया' और 'सर्वे भ्रदाणि पशयन्तु' भी है। यही नहीं 'वसुधैव कुटुम्बकम' यानी समूची वसुधा को अपना कुटुम्ब जानकर उसके कल्याण की कामना की गयी है, लेकिन इन सबों को नजरअंदाज कर लोग भौतिक समृद्धि को ही सबकुछ समझकर दीपावली जैसे त्योहार में लक्ष्मी की पूजा कर रहे हैं, पर वे भ्रष्टाचार, अपराध और समाज विरोधी गतिविधियों में आकंठ डूबे हैं।

ऐसी स्थिति में जहाँ तक मेरा सवाल है, मैंने जाने-माने अमेरिकी पादरी बिली ग्राहम के उस कथन को सत्य समझकर उसी रास्ते पर चलते रहने का निश्चय किया है जिसमें उन्होंने कहा है, 'अगर आपका धन चला जाए तो समझो कुछ नहीं गया। अगर आपका स्वास्थ्य चला जाए तो समझो आपने कुछ खोया, लेकिन अगर चरित्र चला जाए, तो समझो सब कुछ चला गया।' मैंने खुद इसे अपनाते हुए अपने चरित्र को बचाया है। आज हमारे पास सबकुछ के साथ चरित्र जैसी मूल्यवान चीज भी बची हुई है। चरित्र रूपी समृद्धि को हासिल करना ही हमारे लिए सबसे बड़ा मुद्दा है। इसलिए

दीवाली जैसे पर्व के अवसर पर हम 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' का संकल्प लेते हैं। आखिर तभी तो हम तनावग्रस्त नहीं हैं और समाज में अच्छी प्रतिष्ठा है जिसके चलते हम ज्यादा खुश हैं और अमीर भी। एक लेखक की हैसियत से समाज में जो प्रतिष्ठा प्राप्त है उसे किसी पूँजी से खरीदा नहीं जा सकता। यानी सारा खेल मन का है, संतोष का है। 'संतोषं परम सुखम्' इसी को मैं अपने जीवन का ध्येय बनाया है।

(६४)प्रश्न: आपने पुस्तक पढ़ने और पुस्तक लिखने को अपने दैनंदिन क्रियाकलाप का महत्वपूर्ण अंग क्यों बना लिया है ?

उत्तर: हाँ, आपका यह कहना सही है कि हमने पुस्तक पढ़ने और पुस्तक लिखने का अपने दैनंदिन क्रियाकलाप का अंग बना लिया है, क्योंकि मनुष्य की सामूहिक तथा व्यक्तिगत समझ और कार्य व्यवहार को नियोजित करने व दिशा देने में पुस्तक संस्कृति और पठनीयता का स्थान उल्लेखनीय है। पुस्तक पढ़ने और लिखने की संस्कृति किसी व्यक्ति को एक सामान्य प्राणी से मनुष्य बनाती है और मनुष्य को एक बेहतर मनुष्य। यही नहीं यह मेरे सोचने और समझने के दायरे का विस्तार करती मुझे तर्कसंगत, विचारवान और आधुनिक बनाती है।

दरअसल, पुस्तक या पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ने तथा विभिन्न सामाजिक एवं राष्ट्रीय मुद्दों पर अपने विचार भविष्य के लिए अपने संचित ज्ञान को सहेजने की आदत लंबे अरसे से रही है। सामाजिक मानसिकता होने की वजह से समाज में पिछड़ रही रचनात्मकता और बढ़ रही असहिष्णुता के दौर में कमी लाने के लिए मैं पुस्तकें लिखने को प्रेरित हुआ, क्योंकि मेरा विश्वास है कि आर्थिक प्रगति और सांस्कृतिक मूल्यों के बीच संतुलन बनाए रखने में पुस्तकें महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं। सभ्यता एवं संस्कृति के संरक्षण के लिए पुस्तक संस्कृति का विकास अब भी एक जरूरी शर्त है।

(६५)प्रश्न: सूचना क्रांति, इंटरनेट, गुगल सर्च, ई-बुक और वेबजीन के दौर में क्या आप पुस्तकों को बचा पाएँगे?

उत्तर: आपका यह कहना सही है कि सूचना क्रांति, इंटरनेट, गुगल सर्च, ई-बुक और वेबजीन के दौर में पुस्तक की प्रासंगिकता कम होती जा रही है, लेकिन उससे कहीं ज्यादा बड़ी तादाद ऐसे लोगों की है जो पहली बार पढ़ाई-लिखाई की दुनिया में आ रहे हैं। यह नव साक्षर भारत में पुस्तकों के लिए एक बड़ी उम्मीद है। आपने देखा नहीं इसी के परिणामस्वरूप वर्ष 2011 से 2015 के बीच भारत में पुस्तकों का कारोबार 20 प्रतिशत से

अधिक की रफ्तार से बढ़ा है।

दुर्भाग्य से इस देश में भी पढ़ाई-लिखाई अँग्रेजी में होने के बावजूद भारतीय भाषाएँ उन घरों में अभी बच रही हैं जहाँ पहली पीढ़ी साक्षर हो रही है या पुस्तकों की दुनिया से जुड़ रही है। और तो और ज्यादा से ज्यादा जीबी की हाइडिस्क से भी तो बहुत सारी पुस्तकें ही निकलेंगी। हजारों-हजार कई अनूठी पुस्तकों के संचयकर्ता उंबेर्तो इको का कहना है कि अगर किसी प्राकृतिक आपदा को बचाने के लिए केवल एक विकल्प यह है कि हाई डिस्क के लेखन को बचाना होगा। इसलिए पुस्तकें छपती रहेंगी, उनके ऑनलाइन संस्करण आएँगे, मोबाइल और ई-बुक संस्करण आएँगे फिर भी पन्ने पलटने की फड़फड़ाहट जेहन में बनी रहेगी।

(६६)प्रश्नः आपने बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के अध्यक्ष के दायित्व का सफलतापूर्वक निर्वहण किया। आखिर वह कौन सी लकीर है जो सफलता और असफलता के बीच अंतर उत्पन्न करती है?

उत्तर: हाँ, बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के राज्यमंत्री का दर्जा प्राप्त अध्यक्ष के दायित्व का निर्वहण करने में मैंने सफलता इस माने में प्राप्त की, क्योंकि भ्रष्टाचार में अपने स्थापना काल से ही आकंठ लिप्त बोर्ड को तीन साल के लिए ही सही भ्रष्टाचार पर काफी चोट किया और बहुत कुछ उसे भ्रष्टाचार से मुक्त किया जिसकी मुक्तकंठ से लोग आज भी सराहना कर रहे हैं, खासतौर पर बिहार विद्यालय परीक्षा समिति के अध्यक्ष द्वारा किए गए घपले-घोटाले उजागर होने के बाद।

जहाँ तक सफलता और असफलता के बीच अंतर उत्पन्न करने की लकीर का सवाल है, मुझे लगता है कि वह महीन लकीर आत्मविश्वास की है। गीता में भी कहा गया है कि हृदय में व्याप्त तुच्छ दुर्बलता को त्यागे बिना सफलता के सोपानों पर पग रखना संभव नहीं है। हृदय में व्याप्त दुर्बलता को तभी समाप्त किया जा सकता है जब आत्मविश्वास रूपी शक्ति हृदय में प्रवाहित की जाए। मैने अध्यक्ष पद पर रहकर इसी आत्मविश्वास रूपी शक्ति को अपने हृदय में प्रवाहित किया। दरअसल, विजेता बनने की अनिवार्य शर्त है आत्मविश्वास। हम अंदर से जितने मजबूत होते हैं, लक्ष्य के प्रति जितने समर्पित होते हैं, उसका प्रतिफल भी उतना ही मनोनुकूल और मधुर होता है। मैं विपरीत परिस्थितियों में भी नहीं हारा और अपने सत्य के पथ से नहीं डिगा, क्योंकि मुझे खुद पर भरोसा रहता है इसीलिए मन में जीत की सुगंध से हमारे आगे की राह सुगम होती गई।

(६७) प्रश्नः मुझे सुनने को यह मिला है कि आपके इकलौते सुपुत्र और पुत्रवधू ने दिल्ली में अपने साथ रहने के लिए आपसे अनुरोध किया था, लेकिन आपने पटना में ही रहना क्यों पसंद किया?

उत्तरः हाँ, आपकी जानकारी सही है कि दिल्ली में स्थापित अपनी हार्डवेयर कम्प्यूटर कंपनी-एस पी सोलुसंस प्वायंट में प्रबंध निदेशक का दायित्व संभाल रहे मेरे इकलौते सुपुत्र सुधीर रंजन तथा उसकी निदेशक मेरी पुत्रवधू सुनीता रंजन ने हम दोनों पति-पत्नी को अपना शेष जीवन अपने साथ दिल्ली में रहकर बिताने का अनुरोध किया था, लेकिन हम दोनों ने पटना में ही रहना इसलिए पसंद किया, क्योंकि मेरी उच्च और उच्चत्तर शिक्षा-दीक्षा पटना विश्वविद्यालय में 1956 से 1962 तक हुई और फिर 1963 से राँची के महालेखाकार कार्यालय में सरकारी सेवा प्रदान करने के बाद 1973 से 2000 तक पटना के महालेखाकार कार्यालय में सेवा की। इसके पश्चात् मैंने स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति लेकर सार्वजनिक जीवन में प्रवेश किया और 'रेलवे हिंदी सलाहकार समिति' के सदस्य पद पर भी मैं रहा। मुझे पटना में रहना इसलिए पसंद है, क्योंकि मेरे सारे दोस्त, हितैषी, रिश्तेदार सहित शुभेच्छुओं की काफी बड़ी संख्या पटना में है। वैसे स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के बाद सात-आठ वर्षो तक दिल्ली में भी मैं रहा और पत्रकारिता तथा संगठन के माध्यम से मेरे कार्यकलाप होते रहे। मगर दिल्ली के बाद पटना ही ऐसी जगह है भारत में, जो मुझे अपनापन देती है। पटना के ए.जी. कॉलोनी के चार हजार वर्गफीट के प्लॉट में से एक हजार वर्गफीट में मैंने एक मकान बना रखा है और शेष तीन हजार वर्गफीट में से दो हजार वर्गफीट में आम, अमरूद, केला, अनार आदि का बागीचा है जो मुझे आत्मिक संतुष्टि देता है। यही नहीं, इसी वाटिका में आम के पेड़ों के बीच चिंतन-मनन, अध्ययन, सृजन और योगासन के लिए एक सिद्धाश्रम बना रखा है जिसका विगत 14 मई, 2017 को पटना के यशस्वी साहित्यकारों एवं मान्य अतिथियों की उपस्थिति में राष्ट्रीय विचार मंच की ओर से मेरी सफल एवं सक्रिय जीवन-यात्रा के पचहत्तर वर्ष पूरे होने के उपलक्ष्य में आयोजित अमृत महोत्सव के शुभ अवसर पर न केवल मेरी जीवन संगिनी श्रीमती बच्ची प्रसाद ने सिद्धाश्रम के शिलापट का अनावरण किया, बल्कि मेरे द्वारा विरचित दो हाइकु काव्य संग्रह 'कवि और कविता' तथा 'बुजुर्गों की जिंदगी' का यशस्वी साहित्यकारों एवं मान्य अतिथियों द्वारा सम्मिलित रूप से लोकार्पण भी संपन्न हुआ। कुछ इन्ही सब कारणों से पटना में रहना मुझे अच्छा लगता है।

(६८)प्रश्न: नोटबंदी के बाद जब नकद रहित लेन-देन का चलन शुरू हुआ, तो आप चेक द्वारा लेन-देन को अपनाने के लिए क्यों प्रेरित हुए?

उत्तर: नोटबंदी के बाद जब नकद रहित लेन-देन का चलन शुरू हुआ, तो मैं चेक द्वारा लेन-देन को अपनाने के लिए इसलिए प्रेरित हुआ, क्योंकि मैं कार्ड एवं साधनों का उपयोग नहीं कर सकता था। इसके और कारण चाहे जो हों मगर यह कहने में मुझे कोई हिचक नहीं कि अभी तक मोबाइल का ठीक तरह से संचालन करना मैं नहीं जानता। यहाँ तक किसी का मोबाइल नंबर या दूरभाष नंबर भी अपने मोबाइल में सुरक्षित करना मुझे नहीं आता। सिर्फ मोबाईल पर किसी से बात कर लेता हूँ, लेकिन समय का तकाजा है कि जीवन-जगत के कई जरूरी कार्य या भुगतान मोबाइल से होने लगे हैं जिसके लिए मुझे उसकी जानकारी होनी चाहिए। उदाहरण के लिए मकान का टैक्स जिसे नगर निगम को भुगतान करना पड़ता है या बिजली का बिल बिजली कार्यालय में जाकर जो भुगतान करना पड़ता है उसे ऑनलाईन भुगतान मोबाइल के जरिए किया जा सकता है उसे सिखना जरूरी है। इसी प्रकार नकदी लेन-देन से बचने के लिए मोबाइल के जरिए भुगतान अथवा रूप कार्ड द्वारा डेविट-क्रेडिट करने की स्थिति में उसके संचालन की जानकारी जरूरी है। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि इन सबों की जानकारी शीघ्र ही हासिल करने का मैं प्रयास करूँगा।

वैसे मैं आपको यह बता दूँ कि पटना के ए.जी. कॉलोनी में जब मुझे एक छोटा सा मकान निर्मित करना जरूरी हो गया, तो विगत दो-ढाई वर्षो से सिर्फ मजदूर-मिस्त्री को छोड़कर भवन निर्माण सामग्रियों यथा सिमेंट, छड़, टाइल्स, मोजाइक, बिजली-बत्ती, शौचालय तथा स्नानघर की सारी चीजों का भुगतान दुकानदार को हो अथवा टेकेदार या पलम्बर मिस्त्री को मैंने चेक द्वारा ही भुगतान किया। इसलिए कहा जाए तो नकद रहित लेन-देन का आदी मैं पहले से भी रहा हूँ। हाँ, इतना जरूर है कि खाने-पीने की सामग्री से लेकर साग-सब्जी की खरीद अबतक मेरी श्रीमति जी नकदी लेन-देन से ही करती रही हैं, लेकिन कार्ड की व्यवस्था हो जाने के बाद वे सभी घरेलू कार्य भी नकदी लेन-देन से न होकर कार्ड के जरिए होने लगेगा।

वैसे भी नकद रहित लेन-देन की संस्कृति के प्रति रूझान बढ़ता जा रहा है जिसका स्वागत मैं भी करता हूँ, क्योंकि भष्टाचार और कालेधन के विरूद्ध शुरू की गई यह महत्वाकांक्षी लड़ाई का समर्थन करते हुए

नापाक गठजोड़ को तोड़ने के लिए नोटबंदी के साथ नकदविहीन लेनदेन के फैसले को क्रियान्वित करने की जरूरत महसूस करता हूँ। हम यह नहीं कहते कि सरकार के इस कदम से भ्रष्टाचार का नामोनिशान मिट जाएगा, लेकिन इतना जरूर कहूँगा कि एक हद तक इस नोटबंदी और नकदी रहित कदम से देश के आर्थिक स्वास्थ्य पर काफी प्रभाव पड़ेगा। वैसे भी देश जिस मुकाम पर आज जहाँ खड़ा है वहाँ कालेधन नामक दैत्य की बुराई का दमन जरूरी हो गया है जिससे दूरगामी नतीजे अच्छे ही होंगे।

(६९)प्रश्नः आपके द्वारा लिखी गई किताबें इधर कोई एक दशक के बाद आने के क्या कारण रहे?

उत्तरः दरअसल, जबसे बिहार सरकार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार के अनुरोध पर भ्रष्टाचार में आकंठ डूबे बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के अध्यक्ष का दायित्व मैंने संभाला, इतनी व्यस्तता रही कि लिखने का समय नहीं निकाल सका। लिखा जरूर, मगर दिल्ली से प्रकाशित राष्ट्रीय विचार मंच के मुख-पत्र 'विचार दृष्टि', महालेखाकार लेखा परीक्षा कार्यालय, बिहार, पटना से प्रकाशित पत्रिका 'प्रहरी' तथा बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड से संस्कृत एवं हिंदी में प्रकाशित द्विभाषीय पत्रिका 'वाग्वन्दना' के लिए नियमित रूप से लिखता रहा। बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड का अध्यक्ष पद मात्र तीन साल की अवधि के बाद उसे छोड़ने का यही एक कारण रहा। पद छोड़ने के बाद से ही सामाजिक, साहित्यिक, राजनीतिक तथा वैश्विक विषयों पर लिखने में जुट गया और 2016 तक तकरीबन उन पुस्तकों की पांडुलिपियाँ तैयार हैं और 2017 से उनका प्रकाशन शुरू हो गया है। अपने शेष जीवन में मैं सृजन के कार्य से ही समाज व देश को कुछ देना चाहता हूँ। बस आपकी शुभकामना चाहिए।

(७०)प्रश्नःएक सजग रचनाकार होने के नाते क्या आप हमें यह बताएँगे कि एक रचनाकार के समक्ष आज सबसे बड़ा संकट क्या है? उसके सामने प्रमुख चुनौतियाँ कौन-कौन सी हैं? इस बारे में आप क्या सोचते हैं?

उत्तरः एक रचनाकार होने के नाते मैं समझता हूँ कि जीवन, समय और समाज के प्रति सजगता ही एक रचनाकार के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती है। हर दौर में सत्ता का चेहरा बदल जाता है, पर चरित्र वही रहता है। सिर्फ सत्ता का हस्तांतरण होता है। अन्याय, शोषण, अत्याचार का स्वरूप वही रहेगा, उग्रता कभी बढ़ती हुई, तो कभी कम होती दिखाई देगी।

जहाँ तक इस बारे में हमारी सोच का सवाल है आज के वक्त एक

लेखक को समय, समाज और जीवन के प्रति ईमानदार होना चाहिए, साथ ही उसकी जीवन-दृष्टि भी साफ होनी चाहिए।

(७१)प्रश्न: क्या आप उनलोगों से हमेशा नाराज रहते हैं, जो ज्यादा अपशब्दों का इस्तेमाल करते हैं ? आखिर ऐसा क्यों ?

उत्तर: हाँ, मैं उन लोगों से हमेशा नाराज रहता हूँ, जो ज्यादा अपशब्दों का इस्तेमाल करते हैं, क्योंकि वैसे लोग जो अपने अपशब्दों या गालियों में जिस अश्लील भाषा का इस्तेमाल करते हैं उनमें से कुछ को समाज में अनुचित माना जाता है। ऐसी भाषा अक्सर यौन, दुराचार, निंदा और अन्य असभ्य शब्दावलियों में आती हैं। आम तौर पर ऐसे शब्द गुस्सा, हताशा और आश्चर्य जैसी भावनाओं को जाहिर करने से संबंधित होते हैं। हालांकि ऐसे अपशब्दों का इस्तेमाल मनोरंजन करने और दर्शकों अथवा दोस्तों का दिल जीतने के लिए भी इस्तेमाल किया जा सकता है।

वैसे सच कहा जाए, तो गाली बकना प्राय: असामाजिक और अनैतिक समझा जाता है, लेकिन ब्रिटेन के कैंब्रिज विश्वविद्यालय के डेविड स्टीलवेल का कहना है कि गाली देना और बेईमानी के बीच एक जटिल संबंध होता है। गाली देना अक्सर अनुचित व असभ्य आचरण होता है, लेकिन यह ईमानदारी से किसी की अपनी राय व्यक्त करने का जरिया भी हो सकता है। वे लोग बिल्कुल अपनी भाषा को बिना लाग-लपेट के प्रयोग करते हैं और इसमें वे लोग अपने विचार को भी निष्कपटता और स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करते हैं।

वैज्ञानिकों ने अपने शोध में पाया है कि जो लोग इस तरह के अभद्र शब्दों का इस्तेमाल अधिक करते हैं उनके झूठ बोलने की संभावना कम होती है। यह शोध 'सोशल साइकोलॉजीकल और पर्सनालिटी साइंस' नामक पत्रिका में छपी है। भले ही इस शोध में अपशब्दों का इस्तेमाल करने वाले लोगों को ईमानदार होने का दावा करते हों, मगर मुझे हमेशा ऐसे लोगों से नाराजगी रहती है।

(७२)प्रश्न: आपने सरकारी नौकरी भी की है और उससे स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के बाद सार्वजनिक जीवन बिताते हुए बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के अध्यक्ष का दायित्व भी निभाया और उस दायित्व को भी आपने स्वयं छोड़ा। भविष्य में लेखन को लेकर आपकी क्या योजना हैं?

उत्तर: आपने सही कहा कि सरकारी नौकरी से स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति

के बाद सार्वजनिक जीवन जीते हुए बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के अध्यक्ष का दायित्व भी मैंने तीन साल का एक कार्यकाल निभाया, जबकि तीन का एक और कार्यकाल तक मैं रह सकता था उस पद पर, लेकिन मेरा लेखन-कार्य पिछड़ रहा था। इसी को देखते हुए मैंने अध्यक्ष पद पर तीन साल के बाद स्वयं छोड़ दिया, जबकि सरकार ने मुझे उस पद पर रहते हुए राज्य मंत्री का दर्जा भी दे रखा था।

अध्यक्ष पद से मुक्त होने के बाद लेखन कार्य में मैं व्यस्त हूँ जिसके परिणामस्वरूप आधे दर्जन पुस्तकों की पांडुलिपि अब तक तैयार हो चुकी है जिनके नाम इस प्रकार हैं- 'हिंदी के जीवंत हस्ताक्षर', 'इंसानियत की धुँआती आँखें', 'राष्ट्रीय राजनीति', 'वैश्विक कूटनीति', 'उम्मीद जताते न्यायिक एवं आर्थिक फैसले', 'आम आदमी की आवाज' और 'जीवन रागिनी' (आत्मकथा)।

(७३) प्रश्न: अपनी जिंदगी के बारे में आपकी मान्यता, विश्वास और भरोसा क्या है? क्या आपने कभी सोचा था कि यह आपके वर्तमान और भविष्य पर असर डालता है?

उत्तर: हाँ, मदन जी, आज हम जहाँ भी पहुँचे हैं, तो अपनी मान्यताओं, विश्वासों और भरोसा की वजह से, जो भूतकाल में हमने अपनाए थे। हमारा कैरियर, व्यक्तिगत जीवन, भावात्मक जीवन, वित्तीय स्थिति, सेहत, रिश्ते, जीवन शैली, रचना कर्म और हर छोटा-मोटा ब्योरा हमारी मान्यताओं का नतीजा है।

हमने सोचा था कि हमारी मान्यताएँ, विश्वास और भरोसा हमारे वर्तमान और भविष्य पर असर डालता है, क्योंकि यह विश्वास और यह मान्यता हमारे मन, शरीर और हृदय में किसी कम्प्यूटर प्रोग्राम की तरह रस-बस जाती है फिर वे वैसा व्यवहार करने लग जाती है। मेरी मान्यता है कि मेरा मन, शरीर और दिल का हर हिस्सा हमारी मान्यता के अनुसार व्यवहार करने लगता है। हमारा विश्वास हमारे तौर-तरीके बदल देता है और लोगों से बातचीत करने का तरीका भी बदल जाता है।

(७४) प्रश्न: आपकी निजी जिंदगी में जो उतार-चढ़ाव आए उस पर आप क्या कहना चाहेंगे?

उत्तर: पेशेवर जिंदगी हो या निजी, उतार-चढ़ाव तो लगे ही रहते हैं। इन सभी बातों से जो ऊपर उठ जाता है, वही सफल होता है। निजी जिंदगी में जो कुछ घटनाएँ घटीं, उसे मैं याद नहीं रखता हूँ और न पूर्वाग्रह से ग्रस्त

रहता हूँ। मैं केवल अपने दायित्व और कर्तव्य को ही सदैव आगे रखता हूँ।

(७५) प्रश्न: अपने स्वास्थ्य पर आप कितना ध्यान देते हैं?

उत्तर: स्वास्थ्य, खानपान और संयम जीवन के अहम पहलू हैं। इन्हें नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। मैं संतुलित और निरामिष आहार लेता हूँ। सुबह और शाम एक घंटा मैं अवश्य टहलता हूँ तथा सुबह में कुछ देर के लिए सही व्यायाम व योगा निश्चित करता हूँ। खाने में दो रोटियाँ दही या दूध के साथ खाता हूँ तथा कम तेल और बिना मसाला की हरी शब्जियाँ खाता हूँ। साथ ही मौसम के अनुसार उपलब्ध फलों का सेवन मुझे प्रिय लगता है। रात नौ से साढ़े नौ के बीच सो जाता हूँ तथा ठीक चार बजे सुबह जग जाता हूँ।

(७६) प्रश्न: धर्म के अनेक सूत्रों में एक है, ईमानदारी जिसे आपने अपने जीवन में तहेदिल से स्वीकार किया है। हालांकि इसकी वजह से आपको थोड़ा संघर्ष झेलना पड़ रहा है, कष्ट सहना पड़ रहा है। फिर भी ईमानदारी को छोड़ना आपको कतई मंजूर नहीं। आखिर क्यों?

उत्तर: भाई राकेश प्रियदर्शी जी, ईमानदारी वह मार्ग है जिस पर चलने से व्यक्ति का तो भला होता ही है समष्टि का भी भला होता है। अँग्रेजी भाषा का एक सुक्त है-"Honesty is the best policy" इसे बोलना जितना अच्छा लगता है, अपने जीवन में उतारना उतना ही कठिन। पर मैंने इसे अपने जीवन में उतारने का संकल्प ले रखा है, क्योंकि इससे समाज का नवनिर्माण हो सकता है, समाज का कायाकल्प हो सकता है। यह बात ठीक है कि ईमानदारी के मार्ग पर चलने से मुझे संघर्ष तो करना ही पड़ता है, कष्ट भी सहना पड़ता है, किंतु ईमानदारी के रास्ते पर चलने से न केवल मुझे संतुष्टि मिलती है, बल्कि अपने कार्य में सफलता भी मिलती है और सम्मान भी। सुप्रसिद्ध विचारक राबर्ट्सन के शब्दों में- सफलता उन्हें पारितोषिक रूप में मिलती है, जो अपने काम में ईमानदार हैं, जिन्हें अपने काम से प्यार है।' दरअसल महत्व पैसे का नहीं काम का होता है। ईमानदारी से किया गया काम प्रगति की ओर ले जाता है मैंने इसे अपने जीवन के हर मोड़ पर महसूस किया है। इसीलिए ईमानदारी को छोड़ना मुझे कतई मंजूर नहीं। यही हमारी पूँज़ी है और यही है हमारा बल जो हमें आगे बढ़ने की ताकत देता है।

(७७)प्रश्न: उच्च से उच्च पदों पर विराजमान व्यक्ति जब अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति करना चाहता है, तो अपने सारे सिद्धांतों और आदर्शों को एक किनारे रख देता है, किंतु आपके साथ ऐसा नहीं देखा गया है। इसके क्या कारण हैं?

उत्तर: भाई उमेश्वर जी, जीवन में सबसे घातक है अहं को पालना, उसका पोषण करना। जिस भी पद पर मैं रहा कभी अहं को फटकने तक नहीं दिया और न उसका पोषण किया। हमेशा मैं जमीन से जुड़ा रहा और मेरे बात-विचार, रहन-सहन तथा आचरण.एवं व्यवहार में कोई परिवर्तन नहीं देखे गए।

भाई उमेश जी, आप तो हमारे सहकर्मी रह चुके हैं इस नाते आपने देखा है कि काम के दौरान हमारे समक्ष चाहे जिस किसी भी मुश्किलों और चुनौतियों का मुझे सामना करना पड़ा हो, मैंने सिद्धांतों और आदर्शो से कभी समझौता नहीं किया और न अपनी ईमानदारी को छोड़ना मुझे मंजूर हुआ। आत्म-सम्मान की कीमत पर मैंने कोई भी नाजायज काम नहीं किया और अपने दायित्व एवं कर्तव्य के प्रति मैं हमेशा जागरूक रहा और आज भी हूँ। और दूसरी बात यह है कि अपनी सात पीढ़ियों के लिए संपत्ति-संग्रह करने की मैंने कभी कल्पना भी नहीं की तथा नैतिकता को सदैव सामने रखा।

(७८)प्रश्न: आप स्नातक तक अर्थशास्त्र के विद्यार्थी रहे हैं इस नाते महंगाई के संदर्भ में क्या आप बताएँगे कि वह बेलगाम क्यों होती जा रही है?

उत्तर: भाई कृष्ण नन्दन जी, महंगाई के काबू में न आने का कारण केंद्र सरकार की वे नीतियाँ हैं जिनके चलते कृषि क्षेत्र में सुधार नहीं हो पा रहे हैं। इस तथ्य से कोई इनकार नहीं कर सकता कि कृषि विकास दर बढ़ने का नाम नहीं ले रही है। एक ओर खाद्य पदार्थो के दाम नहीं आ रहे हैं और दूसरी ओर यह देखने को मिल रहा है कि देश में गेहूँ का इतना भंडार है कि वह गोदामों में सड़ रहा है। इस स्थिति के बावजूद बाजार में गेहूँ के दाम न्यूनतम स्तर पर् नहीं है। स्पष्ट है कि सरकारी नीतियों में विसंगति व्याप्त है।

ऐसे वक्त योजना आयोग के उपाध्यक्ष मोंटेक सिंह अहलुवालिया का यह बयान चकित करता है कि खाद्य पदार्थो के दाम इसलिए नियंत्रित नहीं हो पा रहे हैं, क्योंकि ग्रामीण क्षेत्रों में संपन्नता बढ़ने के कारण फल, दूध, सब्जी आदि की खपत बढ़ी है। हालांकि इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि बेहतर विकास दर के चलते देश में एक हद तक संपन्नता बढ़ी

है, लेकिन यह भी हकीकत है कि ग्रामीण इलाकों में संपन्नता मुश्किल से नजर आती है। सच तो यह है कि ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी पांव पसारे हुए है। तब यह ठीक नहीं कि देश को यह कारण बताया जाए कि ग्रामीण क्षेत्रों में संपन्नता बढ़ने की वजह से महंगाई बढ़ रही है। ऐसा लगता है कि हमारे नीति-निर्माता अब इस तथ्य से मुँह मोड़ना चाहते हैं कि केंद्र सरकार महंगाई नियंत्रित करने में नाकाम है, लेकिन सच्चाई इससे छिपने वाली नहीं।

◆◆◆

अध्यायः दो
साहित्यिक प्रश्नोत्तर

(१)प्रश्नः साहित्य के क्षेत्र में आपने एक अलग पहचान बनाई है। समाज में प्रतिष्ठा है और जिंदगी जीने लायक पैसा भी। ऐसे में पीछे मुड़कर जब आप देखते हैं, तो कैसा अनुभव करते हैं?

उत्तरः भाई मनोज जी, पहली बात तो यह कि मैं पीछे मुड़कर कभी नहीं देखता और भविष्य की भी चिंता नहीं करता। रही बात वर्तमान की, तो इसे ही मैं असली मानता हूँ। अतीत से तो थोड़ी सीख ली भी जा सकती है, भविष्य को किसने देखा है? सो मैं उसकी चिंता क्यों करूँ? आज भी मैं समाज और राष्ट्र के बारे में सोचा करता हूँ और उसी के बारे में लिखता रहता हूँ। शोहरत, समृद्धि की चकाचौंध में अपने लेखन के सामाजिक सरोकारों को मैं नहीं भूलता। मैं यह भी सोचता हूँ कि इस दिशा में आगे बढ़ने के लिए मेरी तरह और रचनाकारों, पत्रकारों एवं बुद्धिजीवियों को आपस में अनवरत सार्थक संवाद बनाए रखना होगा, ताकि हम समाज के मरे हुए सपनों को कब्र से बाहर निकाल सकें। ये सपने ही एक ऐसा धरातल प्रस्तुत करेंगे, जहाँ खड़े सभी लोगों का लक्ष्य एक होगा, उन सबकी लड़ाई की दिशा एक होगी और तभी उसकी सफलता की उम्मीद जगेगी। यही कारण है कि पीछे न देखकर मैं वर्तमान को महत्व देता हूँ।

(२)प्रश्नः आप एक अच्छे लेखक, सशक्त पत्रकार, सुलझे सामाजिक कार्यकर्ता तथा कुशल प्रशासक हैं। आपने इन सभी क्षेत्रों में अपनी एक अलग पहचान बनाई है, तो आप अपनी आत्मकथा क्यों नहीं लिखते, ताकि वर्तमान एवं भावी पीढ़ी उसे पढ़कर लाभान्वित हो सके ?

उत्तरः अपने बारे में स्वयं लिखना मुश्किल तो है ही, रोचक भी, क्योंकि अपनी बुराई और निंदा करना स्वयं को बुरा मालूम होता है और अगर अपनी प्रशंसा करें, तो पाठकों को सुनना अच्छा नहीं लगता। सच तो यह है कि अपनी निगाह से अपने को देखना असंभव जैसा है। या तो मैं अपनी प्रशंसा कर सकता हूँ या अति उदार होने का नाटक करते हुए अतिनिंदा। दोनों ही दृष्टिकोण गलत हैं। दूसरों की दृष्टि से अपने को देखूँ, तो भी तटस्थ रहना मुश्किल हो जाता है। व्यक्ति अहं के इस युग में तटस्थता मात्र एक दंभ है। 'मैं' को अनाश्वयक महत्व देना उसी दंभ का एक रूप है। फिर क्यों न आपसे क्षमा माँग लूँ कि आत्मकथा लिखना मेरे वश की

बात नहीं। फिर प्रो. रामबुझावन बाबू और डॉ. ब्रह्मचारी सुरेन्द्र कुमार के साथ आप तो मुझ पर मेहरबान हैं ही। वैसे मेरे कई मित्रों एवं शुभेच्छुओं ने भी आत्मकथा लिखने का अनुरोध किया है। इसलिए आगे आने वाले दिनों में आत्मकथा लिखने का प्रयास करूँगा, ताकि लोग हमारी आत्मकथा पढ़कर लाभान्वित हो सकें।

(३)प्रश्नः आपका साहित्य-संसार कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण, श्रेष्ठ और उल्लेखनीय है। फिर भी साहित्य जगत में आपको वह पहचान नहीं मिली, जिसके आप हकदार हैं? आखिर क्यों?

उत्तरः डॉ. उमेश शर्मा जी, वैसे तो इस प्रश्न का उत्तर पाठकों को देना चाहिए या फिर साहित्यकारों को, मैंने तो निष्ठापूर्वक लिखा और अभी भी मैं लिख रहा हूँ। यही मेरे लिए संतोष की बात है। इस संदर्भ मैं कहना चाहूँगा कि साहित्य के अतिरिक्त मेरे कार्य करने के कई और क्षेत्र हैं जिनमें से पत्रकारिता, संगठन और राजनीति प्रमुख क्षेत्र हैं। हो सकता है यदि मैं केवल साहित्य क्षेत्र तक ही सीमित रहता, तो संभव है अभी से अधिक साहित्य जगत मैं मेरी पहचान मिलती। हालांकि इसे देखना भी मैं उचित नहीं समझता कि कौन मूल्याँकन करता है और कौन नहीं, लेखक चुपचाप लिखे और लेखन को परिष्कार दे, यही उसके लिए श्रेयस्कर है।

जहाँ तक पहचान का सवाल है बिना दौड़-धूप और चाटुकारिता के मुझे रेलवे हिंदी सलाहकार समिति का सदस्य बनाया गया, न्यूयॉर्क में आठवे विश्व हिंदी सम्मेलन में बिहार की ओर से मुझे भेजा गया और फिर अभी बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड का अध्यक्ष बनाया गया और अध्यक्ष का दायित्व संभालने के कुछ ही महीनों बाद मेरे अध्यक्ष पद को राज्यमंत्री का दर्जा दिया गया। इसे पहचान नहीं तो और क्या कहेंगे?

(4)प्रश्नः इन दिनों आप क्या लिख रहे हैं?

उत्तरः सच मानिए उमेश बाबू, जबसे मैंने बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के अध्यक्ष पद पर योगदान किया है यानी पिछले दो वर्षो से साहित्य के लिए मैं नहीं के बराबर लिख पाया हूँ। वैसे भी 'विचार दृष्टि' और अब संस्कृत बोर्ड की पत्रिका 'वाग्वंदना' के लिए लिखने से फूर्सत मिले, तब न? बोर्ड के प्रशासनिक कार्यो की व्यस्तता की वजह से भी समय बहुत कम मिल पाता है। फिर साहित्यिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक आयोजनों से भी मुख मोड़ नहीं सकता। तकरीबन पाँच पुस्तकों की पांडुलिपियाँ प्रकाशन के लिए पड़ी हैं उनमें से कुछ के तो कंप्यूटर पर शब्द संयोजन भी हो चुके हैं।

जरूरत केवल एक नजर देकर उन्हें पूरा करने की है। इन सबों के बावजूद जब समय मिलता है, तो कुछ लिख ही लेता हूँ। जिस निष्ठा से लिख रहा हूँ, उसी निष्ठा से आगे भी लिखता रहूँ, यही मेरी चाहत है।

(५)प्रश्नः साहित्य जगत में इन दिनों दलित साहित्य पर काफी चर्चा होती है। इसे लेकर समय-समय पर अनेक प्रश्न खड़े किए जाते रहे हैं, किंतु हिंदी की किसी भी साहित्यिक चर्चा में इस स्वर को नकारा नहीं जा सकता। आप इससे कहाँ तक सहमंत हैं? दलित साहित्य पर हम आपसे कुछ विशेष और विस्तार से जानना चाहेंगे।

उत्तरः डॉ. बालशौरि रेड्डी जी, प्रख्यात साहित्यकार होने के नाते आप तो इस बात से अवगत हैं कि दलित साहित्य पर चर्चा कोई नई बात नहीं है। दलित चिंतन एक ऐसी अवधारणा है जो आधुनिक मूल्यों, संवैधानिक मान्यताओं, सामाजिक न्याय और लोकतांत्रिक संरचनाओं से विकसित हुई है। इसमें धार्मिक जीवन की विकृतियों के विरूद्ध, मानव के मान-सम्मान का चिंतन है।

भारतीय संविधान सभी लोगों को नागरिक के रूप में परिभाषित करता है तथा उसके साथ धर्म, जाति, लिंग, नस्ल व रंग के आधार पर भेदभाव पर रोक लगाता है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 15(क), 16(क) में सामाजिक शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़े वर्गो के उत्थान के लिए विशेष प्रावधान किए गए हैं। दलित-आदिवासियों को प्रतिनिधित्व करने हेतु अनुच्छेद 330 व 332 के तहत संसद में 119 व राज्य विधानसभाओं में 1050 स्थान आरक्षित किए गए हैं। भारतीय समाज में सदियों से व्याप्त प्रतिगामी, जड़ ताकतों से संघर्ष करने के लिए दलित विमर्श इसलिए मैदान में है ताकि वर्णो एवं हजारों जातियों के स्तंभनुमा शोषण का खात्मा करके मानवीय भेदभावरहित, न्यायपरक का खात्मा करके, न्यायपरक समाज बनाया जा सके। मानव की प्रतिष्ठा के लिए यह आवश्यक है कि धर्म-संस्कृति, परंपरा के नाम पर भेदभाव की आँखोंवाली जातिवादी रूग्ण मानसिकता पर कड़ाई से रोक लगे। इसी उद्येश्य को लेकर दलित साहित्य सामने आया।

पहली बार जब मराठी में दलितों द्वारा लिखे गए 'दलित साहित्य' ने दस्तक दी, तो मराठी जगत के अनेक परंपरागत और संभ्रात लेखक बौंखला गए। आज भी लेखकों में बहुत सारे ऐसे लोग हैं जो न केवल अपनी नाक-भौं सिकोड़ते हैं, वरन कुछ लोग तो इसे उपहास का माध्यम भी बनाते

हैं। मगर अब तो मराठी के अतिरिक्त हिंदी, गुजराती, कन्नड़, तेलुगु तथा अन्य भारतीय सहित्य में दलितों द्वारा ही नहीं, अपितु गैर-दलितों द्वारा भी 'दलित साहित्य' के स्वर गूँजने लगे हैं और अब तो शिक्षा के प्रचार-प्रसार से शताब्दियों से शोषित, पीड़ित और सामाजिक्ष मान्यताओं से वंचित इस वर्ग में दलित चेतना के नए स्वर सुनाई दे रहे हैं। सामाजिक उत्पीड़न के शिकार अब खामोश नहीं हैं। वे सत्ता नहीं, सत्ता में भागीदारी चाहते हैं। समाज इस परिवर्तनशील परिस्थिति में दलित वर्ग यह आशा कर रहा है कि उसके जीवन पर सदियों से छाई हुई काली छाया शीघ्र दूर हो और वह नई सुबह का सूरज देख सके।

(६)प्रश्नः मौजूदा दौर का रचनाकार अपने देशकाल के ज्वलंत मुद्दों व समस्याओं के साथ कितना कदमताल कर पा रहा है?

उत्तरः डॉ. बलराम तिवारी जी, निःसंदेह आज का रचनाकार, चाहे वह गद्य में लिख रहा हो या पद्य में, अपने समय-समाज के साथ खड़ा है और स्थानिक एवं वैश्विक समय में एक साथ जी रहा है। मौजूदा दौर का सचेत रचनाकार एक ओर जहाँ हिंसा, नक्सलवाद, सांप्रदायिकता, स्त्री व दलित विमर्श, प्रदूषण एवं पर्यावरण तथा विस्थापन एवं विकास जैसे मुद्दों पर अपनी कलम चला रहा है, वहीं दूसरी ओर बहुराष्ट्रीय कंपनियों के प्रभाव, बाजारवाद, उदारवाद, पश्चिमी उपभोक्तावादी सभ्यता-संस्कृति से प्रभावित भारतीय समाज जैसे गंभीर मुद्दों पर भी उसकी चिंता अधिक से अधिक मुखरित हुई है। लेखकीय क्षेत्र में स्त्रियों और दलितों की भागीदारी बढ़ी है। पुरुषों के साथ महिलाओं ने भी कविता, कहानी, उपन्यास आदि अलग-अलग विधाओं में स्तरीय सृजन कर भारतीय भाषाओं एवं उसके साहित्य की अभिवृद्धि भी की है।

(७)प्रश्नः वह कौन-सी ऐसी बात है जिसने निरंतर आपको लिखते रहने के लिए विवश किया है? क्या आप अपने अबतक के लेखन से संतुष्ट हैं?

उत्तरः तिवारी जी, सच कहूँ तो अभिव्यक्ति और विचारों के माध्यम से समाज व राजनीति को दिशा देने की चाहत ने मुझे लिखते रहने को विवश किया है। अभिव्यक्ति की तो इच्छा होती ही है, सो हिंदी और समाज की दशा देखकर दोनों के लिए मैंने नौकरी से स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति ली और लेखन तथा पत्रकारिता में लग गया। हिंदी के प्रति मेरे मन में प्रारंभ से ही सम्मान का भाव रहा है, क्योंकि मेरी समझ है कि किसी भी देश की

अस्मिता को बरकरार रखने के लिए वहाँ की भाषा का बहुत महत्त्व होता है। इस देश की राष्ट्रभाषा हिंदी ही संपर्क भाषा है जिसमें साहित्यिक लेखन मेरा स्थायी स्वभाव बन गया। साहित्य और पत्रकारिता के जरिए देश की प्रगतिशील सच्चाईयों को अभिव्यक्त करना ही मेरा मूल उद्येश्य है। लेखक और पत्रकार की भूमिका ने ही मुझे समाज और परिवार के साथ बाँध रखा है। इसी वजह से सांप्रदायिकता, जातिवाद, भ्रष्टाचार, वाचालता, क्षेत्रियता आदि पर लिखना मेरे उद्येश्य बन गए हैं। देश स्वावलंबी बने और राष्ट्रीय संपत्ति का वितरण हो इस तरह की प्रवृत्तियाँ लुप्त होती जा रही हैं। सामाजिक परिवर्तन गलत दिशा में हो रहा है। इसकी रक्षा ही लेखकों का दायित्व है जिसका निर्वहण मैं कर रहा हूँ। मेरे ख्याल से साहित्यिक एवं सांस्कृतिक रुचियों का विकास ज्यादा जरूरी है। औद्योगीकरण, बाजारवाद और अन्य बदलावों के बावजूद अपने यहाँ पुस्तकों की उपस्थिति रहेगी और इसके पाठक भी होंगे।

जहाँ तक अपने अबतक के लेखन से मुझे संतुष्ट होने की बात है, लेखक अपने लेखन से संतुष्ट नहीं होता। संस्कृताचार्य पं. आद्याचरण झा, पद्मभूषण डॉ. सत्यव्रत शास्त्री, डॉ. रामकरण शर्मा, डॉ. बालशौरि रेड्डी, डॉ. ब्रह्मचारी सुरेन्द्र कुमार, डॉ. शिववंश पाण्डेय, डॉ. एम. शेषण, प्रो. सत्येन्द्र चतुर्वेदी, डॉ. नरेन्द्र शर्मा कुसुम, डॉ. एन. चन्द्रशेखरन, डॉ. एन. एस. शर्मा जैसे उम्रदराज लेखकों की लेखनी निरंतर चल रही हैं। पं. आद्याचरण झा तो आज की तिथि में इक्यानवें की उम्र में भी कुछ न कुछ लिखते रहे। लेखक सोचता है कि वह जो लिखना चाहता था अब तक नहीं लिख पाया। इसकी पीड़ा उसे बराबर सताती रहती है। मेरे साथ भी यही स्थिति है कि अबतक के लेखन से संतोष का भाव नहीं है मुझे।

(८)प्रश्नः उदीयमान रचनाकारों के लिए आपके क्या संदेश हैं?

उत्तरः सच बात तो यह है कि संदेश से नवोदित रचनाकारों का भला नहीं होता। रचनाकार स्वयं अपने बल-बूते पर लिखता है और अपने परिश्रम से आगे बढ़ता है। ज़ितना जिंदादिल व संवेदनशील युवा रचनाकार होगा, व्यापक जन समुदाय से सरोकार रखेगा, भाषा और शिल्प को जितना माँजेगा उतना ही बेहतर वह कर पाएगा। लेखन उसकी अपनी नई और मौलिक चीज होती है भले ही वह व्यापक जन-समुदाय के लिए लिखी जाती हो।

(९)प्रश्न: पटना विश्वविद्यालय के अंतर्गत पटना कॉलेज के विद्यार्थी होने के नाते कम ही सही पर आपको आचार्य नलिन विलोचन शर्मा जैसे हिंदी के उद्‌भट विद्वान प्राध्यापक से पढ़ने का मौका मिला। उनके बारे में वे कौन-सी ऐसी बातें हैं जो आपके लिए अविस्मरणीय हैं। एक शिष्य और रचनाकार के रूप में आपने उनसे क्या ग्रहण किया?

उत्तर: डॉ. तिवारी जी, आपने सही कहा कि आचार्य डॉ. नलिन विलोचन शर्मा जी मेरे प्राध्यापक रहे हैं और उनकी आज भी जब कभी चर्चा चलती है, तो सबसे पहले उनका भव्य व्यक्तित्व और विशालकाय मेरे स्मृति-पटल पर आ जाता है, फिर उनके बोलने की शैली। सच मानिए, उनके बारे में सोचना एक तेजोदीप्त व्यक्तित्व को अपनी आँखों के सामने देखना है। उनका छात्र होना न सिर्फ मेरे लिए, बल्कि मेरे जैसे अनेक छात्रों के लिए गर्व की बात है। वे एक सर्जक और मौलिक चिंतक के साथ-साथ समर्थ समालोचक भी थे। आपको याद होगा अमर कथाशिल्पी फणीश्वर नाथ 'रेणु' के उपन्यास 'मैला आँचल' की प्रसिद्धि तब मिली जब पहली बार आचार्य डॉ. शर्मा ने 'मैला आँचल' पर अपनी प्रतिक्रिया जाहिर की। उनके पढ़ाने का ढंग भी अनूठा और औरों से भिन्न होता था तथा छात्रों पर स्थायी प्रभाव छोड़ता था। एक अद्‌भुत कल्पनाशीलता का अहसास जो केवल एक सर्जक में होती है।

एक शिष्य के रूप में मैंने जो कुछ उनसे ग्रहण किया वह यह कि मैं अपने दायित्व के साथ यथासंभव न्याय करूँ, जो आचार्य जी करते थे। एक रचनाकार के रूप में उनसे जो मैंने ग्रहण किया वह भी महत्वपूर्ण है। उनका सर्जनात्मक जीवन, एक विचारक के रूप में उनका जीवन, अपने विरोधियों से चुपचाप बिना कुछ कहे संघर्ष करते हुए अडिग रहने वाला उनका जीवन और इसके साथ-साथ संघर्षरत अपना काम करते हुए चलते जाने का उनके भीतर का एक गहरा अहसास इन सभी ने मेरे जीवन को प्रभावित किए और जिसकी वजह से मैं उसी रास्ते से गुजर रहा हूँ।

(१०)प्रश्न: कहा जाता है कि सरल भाषा में गंभीर विचारों की अभिव्यक्ति कठिन है। ऐसे बाल साहित्य का सृजन सरल भाषा में करना और उसमें गंभीर विचारों को अभिव्यक्त करना कुछ विरोधाभासी जैसा लगता है। आपका क्या ख्याल है?

उत्तर: आपका कहना सही है कि सरल भाषा में गंभीर विचारों को अभिव्यक्त करना कठिन कार्य है और बाल साहित्य में सरल भाषा का प्रयोग

करना आवश्यक। इसीलिए तो बाल साहित्य की रचना करना सबके बस की बात नहीं। बाल साहित्य का सृजन वही साहित्यकार कर सकता है जो अपनी विद्वता, अनुभव की गहनता, लेखक की दक्षता को बालमन की सहजता और सरलता में डूबो दे। वह रचना करते समय बालक बन जाए। बड़ी कठिन है यह साधना। बाल साहित्यकार को अपने बचपन में लौटना पड़ता है।

बाल साहित्य की समस्याओं में सबसे पहली समस्या लेखन की समस्या है। रचनाकारों को सोचना होगा कि वे क्या लिखें, कैसे लिखें। जिस प्रकार प्रत्येक प्रवाहमान धारा नदी नहीं होती, उसी प्रकार प्रत्येक बाल रचना बाल साहित्य की कोटि में नहीं आती। नदी के लिए आवश्यक है – स्वच्छ जल राशि, बाल साहित्य के लिए आवश्यक है-पारदर्शी बाल मन पारदर्शी भावनाओं की अभिव्यक्ति। बाल साहित्य का सृजन बच्चों के मनोविज्ञान को ध्यान में रखते हुए किया जाता है, ताकि उनकी रुचियों और उनकी आवश्यकताओं को दृष्टि में रखा जा सके। इसलिए बाल साहित्य की पुस्तकों का सचित्र होना आवश्यक है। यदि वे सचित्र नहीं होंगी, तो बच्चे उनके प्रति आकर्षित नहीं होंगे।

(११)प्रश्नः हिंदी बाल साहित्य को सुदृढ़ करने में बाल पत्र-पत्रिकाओं का कहाँ तक योगदान रहा है?

उत्तरः डॉ. बालशौरि जी, हिंदी बाल साहित्य की स्थिति को सुदृढ़ करने में प्रारंभिक काल से ही बाल पत्र-पत्रिकाओं का योगदान रहा है। पराग, नंदन, बाल भारती, बाल परंपरा, बाल सखा, बाल मेला, अच्छे भैया, राजा-भैया, मनमोहन, शिशु, बालक, चुन्नू-मुन्नू, दोस्त, कलरव तारा, बाललहर, बच्चों का देश, बाल वाटिका, चंदा मामा, गुड़िया, प्यारी बहना, लोट-पोट, मधुमुस्कान, नन्हें सम्राट, बाल भूमि, बाल मितान, बाल दर्शन, बाल बोध, बाल प्रहरी, समझ झरोखा, लल्लू जलधर, नया सूरज, नई धारा, नई पौध, और अनुराग आदि तक बाल पत्रिकाओं की एक अटूट शृंखला है जिन्होंने हिंदी बाल साहित्य के सृजन, संवर्द्धन तथा संरक्षण की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है और आज भी निभा रहे हैं।

बाल हिंदी साहित्य जगत के सुपरिचित हस्ताक्षर हरिकृष्ण देवसरे के संपादक्तव में प्रकाशित 'पराग' बाल पत्रिका ने बाल साहित्य लेखन का बाकायदा एक आंदोलन खड़ा किया और उसे सफलतापूर्वक स्थापित भी किया। अब बंद हो चुकी बाल पत्रिका पराग के संपादक श्री देवसरे ने बाल पत्रकारिता के क्षेत्र में कई अभिनव प्रयोग किए और बाल साहित्य को रहस्य,

रोमांच, चमत्कार और कल्पनालोक के घेरे से निकालकर यथार्थ के धरातल पर लाने का सराहनीय कार्य किया।

अपने समय की अति लोकप्रिय पत्रिकाओं में धर्मयुग तथा साप्ताहिक हिंदुस्तान ने भी बाल साहित्य को प्रमुखता से स्थान देकर महत्वपूर्ण कार्य किया। ये पत्रिकाएँ तो अब बंद हो चुकी हैं, लेकिन अभी भी कम से कम डेढ़ दर्जन बाल पत्रिकाएँ नियमित रूप से प्रकाशित हो रही हैं। यही नहीं आज हिंदी का कोई ऐसा दैनिक या साप्ताहिक पत्र नहीं है जिसमें बाल साहित्य को प्रमुखता से स्थान न मिलता हो। मैंने तो बिहार संस्कृत षिाक्षा बोर्ड, पटना से प्रकाशित संस्कृत एवं हिंदी की द्विभाषिक पत्रिका 'वाग्वन्दना' में 'बाल वाटिका' नाम से अलग स्तंभ ही सुरक्षित कर दिया है और मैं स्वयं उस स्तंभ के माध्यम से बच्चों के ज्ञान-वृद्धि के लिए नियमित रूप से लिख रहा हूँ। कई स्थापित पत्रिकाओं यथा भारत सरकार के प्रकाशन विभाग से प्रकाशित पत्रिका 'आजकल' ने तो समय-समय पर बाल साहित्य पर विशेषांक भी प्रकाशित किया है। ये सारी बातें स्वयंमेव हिंदी बाल साहित्य की समृद्धि और सामर्थ्य की परिचायक हैं।

(१२)प्रश्नः कहा जाता है हिंदी बाल साहित्य की तुलना में बांग्ला बाल साहित्य अधिक विकसित और समृद्ध है। इस बात से आप कहाँ तक सहमत हैं? और क्यों?

उत्तरः इसमें तनीक संदेह नहीं कि बांग्ला का बाल साहित्य हिंदी के बाल साहित्य के मुकाबले अधिक विकसित और समृद्ध हैं। इसकी वजह साफ है। बंगालियों के सामाजिक जीवन में झांकने पर हम पाते हैं कि पढ़ना बंगाली लोगों का नशा और जीवन की एक अनिवार्यता है। बांग्ला भाषी लोग अपनी भाषा और साहित्य के प्रति दीवाने होते हैं और वे पत्र-पत्रिका खरीदकर पढ़ते हैं। वहाँ बच्चा होश संभालते ही अपने परिवार से एक साहित्यिक संस्कार पाता है जिसका हिंदी भाषी क्षेत्रों के परिवारों में सर्वथा अभाव है। दरअसल, हिंदी भाषी क्षेत्रों के बच्चों में बाल साहित्य के माध्यम से साहित्यिक अभिरुचि नहीं विकसित की गई इसीलिए प्रौढ़ साहित्य का पाठक उत्तरोतर घटता चला गया। इसके ठीक विपरीत बंगाल में बाल साहित्य को भरपूर महत्व दिया जाता है। वहाँ बच्चों को जन्मदिन तथा अन्य मांगलिक अवसरों पर उपहारस्वरूप साहित्यिक पुस्तकें एवं बाल पत्र-पत्रिकाएँ देने की प्रथा है। इसी तरह सामाजिक संस्थाओं तथा विद्यालयों द्वारा आयोजित खेल-कूद, नाटक तथा अन्य साहित्यिक एवं सांस्कृतिक प्रतियोगिताओं में भी

बच्चों को पुरस्कारस्वरूप साहित्यिक पुस्तकें एवं पत्रिकाएँ देने का प्रचलन है। इसी प्रकार सामाजिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक आयोजनों में भी रचनाओं के पाठ की प्रथा है।

(१३)प्रश्न: सब कुछ सकारात्मक होने के बाद भी वे कौन से कारण हैं, जो हिंदी बाल साहित्य की मान्यता मिलने के मार्ग में बाधा बन रहे हैं?

उत्तर: सन् 1968 में ही बाल साहित्यकार हरिकृष्ण देवसरे ने हिंदी बाल साहित्य पर पहला शोध कार्य किया था। तब से लेकर अब तक उत्तर भारत के विभिन्न विश्वविद्यालयों से दो सौ से भी अधिक शोध कार्य बाल साहित्य पर हो चुके है और सैकड़ों शोधार्थी कार्यरत हैं। बाल साहित्य का विस्तृत इतिहास लिखने के साथ-साथ हिंदी के सुप्रसिद्ध बाल साहित्यकार प्रकाश मनु, हरिकृष्ण देवसरे, श्री प्रसाद सुरेन्द्र विक्रम आदि ने समीक्षा के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय कार्य किया है। नेशनल बुक ट्रस्ट, चिल्ड्रेन बुक ट्रस्ट और भारत सरकार के प्रकाशन विभाग सहित देश के सैकड़ों प्रकाशन संस्थान प्रतिवर्ष विपुल मात्र में बाल साहित्य का प्रकाशन कर रहे हैं। मसलन आज का हिंदी बाल साहित्य हर दृष्टि से समृद्ध, समर्थ, विकसित तथा समय सापेक्ष हैं, फिर भी हिंदी बाल साहित्य को मान्यता नहीं मिल पा रही है।

मेरे ख्याल से सबसे महत्वपूर्ण कारण यह है कि बाल साहित्य को अपने पाठकों तक सीधी पहुँच नहीं है। और तो और निम्न वर्ग हो या मध्यवर्ग अथवा सुविधा संपन्न उच्च वर्ग सबके बच्चे अपनी इच्छा से कोई भी पुस्तक या पत्रिका खरीद सकने की स्थिति में नहीं होते, बल्कि पूरी तरह अपने अभिभावक पर निर्भर रहते हैं। ऐसे लोग बच्चों के लिए चॉकलेट, आइसक्रीम, इलेक्ट्रॉनिक खिलौने तथा कॉमिक्स तो खरीद सकते हैं, लेकिन हिंदी की कोई अच्छी सी पुस्तक या बाल पत्रिका नहीं खरीद सकते जिसके परिणामस्वरूप बच्चे बाल साहित्य की पुस्तकों और पत्रिकाओं से वंचित रह जाते हैं।

(१४)प्रश्न: देश हो या समाज उसके अस्तित्व के लिए एक भाषा हुआ करती है, पर यदि किसी देश या समाज की अपनी भाषा का यह अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाए, तो आपके विचार से उसका अंजाम क्या होगा? आप यह भी बताने की कृपा करें कि भाषा की रक्षा के लिए साहित्य की क्या भूमिका होगी?

उत्तर: जी हाँ, देश हो या समाज, उसकी एक भाषा हुआ करती है

जिसमें उसकी संस्कृति निहित होती है, उसकी संस्कृति का अस्तित्व पसरा होता है। इसी संस्कृति के अस्तित्व में उसकी अपनी एक पहचान छिपी होती हैं जिस पर उसका स्वयं का भी अस्तित्व टिका होता है। किंतु यदि किसी देश या समाज की अपनी भाषा का यह अस्तित्व खतरे में पड़ जाए, तो यह निश्चित है कि वह समाज या देश पतन की ओर गिरने लगता है।

ऐसे वक्त साहित्य की भूमिका अहम हो जाती है, क्योंकि साहित्य के माध्यम से ही भाषा सुरक्षित रह सकती है। इसलिए साहित्य के अस्तित्व का संरक्षण बहुत जरूरी है और साहित्य संरक्षण तभी संभव हो सकता है, जब किसी देश या समाज की अपनी भाषा संरक्षित होगी। आप इस बात से अवगत होंगे कि हर भाषा की अपनी एक संस्कृति होती है। उस भाषा के लुप्त होने से उस क्षेत्र की संस्कृति भी गायब हो जाती है। अतएव संस्कृति संरक्षण के बगैर किसी देश की अस्मिता सुरक्षित नहीं रह सकती। इसलिए भाषा के अस्तित्व को बचाना होगा और इस भाषा को बचाने के लिए साहित्य के अस्तित्व की रक्षा करनी होगी।

(१५)प्रश्न: यों तो हिंदी साहित्य की निबंध विधा के माध्यम से आपके विचार अभिव्यक्त होते रहे हैं, पर काव्य विधा पर भी आपकी कलम कम नहीं चली है। इसमें भी हाइकुकार के रूप में आपकी एक अलग पहचान है। 'पतझर की सांझ', 'सुर नहीं सुरीले' और 'जागरण के स्वर' जैसी हाइकु एवं सेनेर्‌यू की कृतियाँ इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। हाइकु और सेनेर्‌यू कविताएँ लिखने की प्रेरणा आपको कैसे, कहाँ और किनसे मिली और क्यों इस विधा में आप अग्रसर हुए? मुझे विस्तार से बताएँ।

उत्तर: डॉ. तिवारी जी, सबसे पहले तो मैं आपको यह बताऊँ कि जिस तरह मानव, उसका स्वभाव, उसकी स्थिति तथा समस्याएँ रोज-ब-रोज बदलती रहती हैं, उसी प्रकार साहित्य में भी परिवर्तन आते रहते हैं। उसमें भी नए-नए विचार, नए विधान, नई विधाएँ तथा नई समस्याओं का समावेश होता रहता है। जब विज्ञान मानवीय बुद्धि के प्रसार में बद्धमूल जीवन को एक विशेष दिशा की ओर मोड़ रहा है, तब साहित्य इस सामूहिक प्रक्रिया से अलग कैसे रह सकता है?

विज्ञान में कंप्यूटर की तरह साहित्य के क्षेत्र में 'हाइकु' भी जापान की देन है। यह जापानी पद्य शैली की एक आक्षरिक छंद प्रणाली है। अक्षरों की गिनती की सहज काव्य विधा है 'हाइकु' पाँच-सात-पाँच वर्णो के क्रम

में त्रिपदी-सत्रहवर्णी 'हाइकु' एक ऐसी विधा है जिसमें कम से कम शब्दों में पाठकों के समक्ष अपने भाव को व्यक्त कर दिए जाएँ।

दरअसल, आज के इस आपाधापी के युग मैं आम आदमी खासकर निम्न एवं मध्य वर्गीय परिवार जीवन संघर्षो, जटिलताओं एवं अनेक समस्याओं के बीच साहित्य के अपने पठन-पाठन का वक्त रोटी, कपड़ा और मकान के निदान में लगाने को मजबूर है। इस भागमभाग की स्थिति में उसका ध्यान अब बड़ी-बड़ी कहानियाँ, उपन्यास यहाँ तक कि लंबी कविताओं की बजाय लघु कथाओं, मुक्तकों, दोहों तथा छोटी-छोटी कविताओं की ओर उन्मुख होना स्वाभाविक है। अतएव आधुनिक जीवन की तेजी से बदलती हुई परिस्थितियों में आज के समय का तकाजा है कि साहित्य में नए-नए युग के अनुकूल कम-से-कम शब्दों में अपने भावों को समाहित किया जाए जो एक दर्पण और दीपक का काम करे। इसके माध्यम से जीवनगत विचारों के सह-अस्तित्व से वर्तमान सभ्यता और संस्कृति को बचाया जा सकता है। 17वीं शताब्दी से लेकर आज तक हाइकु जापान के सांस्कृतिक जीवन का अभिन्न अंग तो बन ही गया है, आज हाइकु जापानी साहित्य की सीमाओं को लांघकर विश्व साहित्य की निधि बन चुका है और प्राय: सभी भारतीय भाषाओं में भी अन्य विधाओं के समानांतर कदमताल कर रहा है।

उड़ीसा के विद्या मंदिर गंथागार के संस्थापक तथा हाइकु की त्रैमासिक पत्रिका 'गुंजन' के संपादक डॉ. लक्ष्मण प्रसाद नायक और अहमदाबाद से प्रकाशित 'हाइकु भारती' के मानद संपादक डॉ. भगवत शरण अग्रवाल का सान्निध्य प्राप्त होने पर वस्तुत: मुझे इस विधा पर हमें अपनी कलम चलाने की प्रेरणा मिली। दिल्ली प्रवास के दौरान जवाहर लाल विश्वविद्यालय, जापानी भाषा विभाग के प्रो.(डॉ.) सत्यभूषण वर्मा से संपर्क होने पर उन्होंने मुझे हाइकु लिखने के लिए मेरा मनोबल बढ़ाया। सच कहा जाए, तो हाइकु विधा पर अपनी कलम चलाने को श्रेय हाइकु के इन्हीं महारथियों को जाता है। फिर क्या था, 'पतझर की सांझ' नाम्नी 'हाइकु' की प्रथम कृति की पांडुलिपि के साथ जे.एन.यू. परिसर स्थित डॉ. सत्यभूषण वर्मा के निवास पर मैं उपस्थित हुआ, तो न केवल उन्होंने अपनी प्रसन्नता जाहिर की, बल्कि उस कृति के लिए प्रोत्साहन के रूप में अपने भावोद्‌गार लिखकर मुझे अनुप्राणित किया। डॉ. वर्मा ने 'पतझर की सांझ' पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए लिखा-"सिद्धेश्वर जी के हाइकु मुझे पढ़ने को

मिले। इनके विषयों की विविधता और आज के समाज के विविध प्रश्नों को हाइकु की विधा में इन्होंने उतारा है। साहित्य, संस्कृति, शृंगार, राष्ट्र चेतना, पर्यावरण को जहाँ इन्होंने अपना विषय बनाया है, वहीं वेदना पर बड़े मार्मिक ढंग से अपने भावों को इन्होंने अभिव्यक्त किया है :-

व्यथित मन कैसे सुनाएँ आज गीत नयन	क्यों फेंक दिया दर्द के सागर में मुझे आपने	नहीं जलेंगे चिराग कोठियों के अनवरत

जहाँ वे केवल भाव अथवा प्रकृति-सौंदर्य को विषय के रूप में लेते हैं, वहाँ प्रकृति-चित्रों पर भी उन्होंने कुछ अच्छे हाइकु दिए हैं :-

मचल रही चाँदनी भी रात की सागर तले	गा रहे लोग लहरों के ताल में प्रकृति-राग	तपती धूप तरसती पानी को रेगिस्तान में

इनकी ओजपूर्ण भाषा में रचित हाइकु की यह काव्यकृति आधुनिक सामाजिक-साहित्यिक संदर्भो में भी सर्वथा प्रासंगिक एवं सार्थक है। हाइकु के प्रति सिद्धेश्वर जी की रुचि प्रशंसनीय है।

'पतझर की सांझ' हाइकु काव्य-कृति पर हिंदी साहित्य के सुपरिचित आलोचक प्रो. नंद किशोर नवल तथा सुप्रसिद्ध कथाकार एवं भारत के अपर उपनियंत्रक-महालेखा-परीक्षक श्री गिरीशचंद्र श्रीवास्तव ने भी क्रमश: अभिमत और भूमिका लिखकर मुझे प्रोत्साहित किया जिसके लिए उनका मैं आज भी कृतज्ञ हूँ।

'हाइकु' और 'सेन्र्‌यू' के संदर्भ में मैं स्पष्ट करना चाहूँगा कि भारतवर्ष में जो जापानी हाइकु रचनाकारों द्वारा अपनाया गया है उसे हाइकु के रूप में हाइकु तथा सेन्र्‌यू दो विधाओं के मिले-जुले स्वरूप को अभिव्यक्ति के रूप में ग्रहण किया गया है। दरअसल, हाइकु के दो रूप या भेद हैं- हाइकु और सेन्र्‌यू । जहाँ 'हाइकु' जीवन और प्रकृति के कार्य व्यापारों की भावात्मक अभिव्यक्ति की कविता है, वहीं 'सेन्र्‌यू' मनुष्य की दूर्बलताओं अथवा दुर्बल क्षणों पर व्यंग्य अथवा पैरोडी है। कहने का तात्पर्य यह है कि हाइकु में प्रकृति महत्वपूर्ण है और सेन्र्‌यू में मनुष्य। जिस प्रकार उर्दू में ग़ज़ल, हज़ल है, उसी प्रकार हाइकु का ही एक अन्य रूप है सेन्र्‌यू। सेन्र्‌यू भी तीन पंक्तियों की 5.7.5 वर्णक्रम की 17 वर्णी कविता है।

डॉ. भगवत शरण अग्रवाल ने हमारे सेनेर्‌यू काव्य संग्रह 'सूर नहीं सुरीले' की भूमिका में लिखा है कि भारत में हाइकु और सेनेर्‌यू का यह भेद केवल सिद्धांत रूप में स्वीकार किया गया, रचनाधर्मिता में न के बराबर। इसी न के बराबर में सेनेर्‌यू रूप में मैंने 'सुर नहीं सुरीले' और 'जागरण के स्वर' दो काव्य-संग्रह लिखे जिसका तहेदिल से साहित्य-जगत में स्वागत किया गया।

अंत में मैं कहना चाहूँगा कि इधर हाल के वर्षो में लघु कथा, क्षणिका जैसी लघु विधाओं के साथ-साथ हाइकु अथवा सेनेर्‌यू कविताओं की पठनीयता बढ़ी है और उसकी वजह है महानगरीय जीवन में समय का अभाव।

(१६)प्रश्नः आपकी दृष्टि में हिंदी को किस तरह से वैश्विक भाषा बनाया जा सकता है और संयुक्त राष्ट्रसंघ की भाषा सूची में हिंदी शामिल करने के लिए क्या-क्या करना होगा?

उत्तरः डॉ. रेड्डी जी, हिंदी हमारे देश की राष्ट्रभाषा है हालांकि इस आशय का कोई प्रावधान न तो हमारे भारतीय संविधान में है और न भारत सरकार के द्वारा कोई अधिनियम ही बनाया गया है। फिर भी हम विश्वास के साथ कह सकते हैं कि हिंदी ही वह भाषा है जो सब तरह से सक्षम है, समर्थ है और संपर्क भाषा के लायक है। हिंदी इस देश की अस्मिता की द्योतक है। विश्व में इसी के चलते हमारी पहचान है। यह समृद्ध संस्कृति की संवाहिका है। अधिसंख्य भारतीय जनता की अभिव्यक्ति का यह माध्यम है और भारत को राजभाषा, संपर्क भाषा, राष्ट्रभाषा से आगे बढ़ते हुए विश्व भाषा बनने की ओर अग्रसर है।

जहाँ तक हिंदी को वैश्विक भाषा बनाए जाने का सवाल है, यह प्रयास हो रहा है कि इसे सर्वप्रथम संयुक्त राष्ट्र संघ की मान्यता प्राप्त भाषाओं की सूची में शामिल किया जाए। विगत वर्ष 2007 के जुलाई माह में अमेरिका के न्यूयॉर्क स्थित संयुक्त राष्ट्र संघ के सभागार में आयोजित आठवें विश्व हिंदी सम्मेलन में बिहार की ओर से भारत का प्रतिनिधित्व करने के नाते मैं इस बात का साक्षी हूँ कि पहली बार संयुक्त राष्ट्र मुख्यालय में हिंदी की गूँज सुनाई पड़ी और संयुक्त राष्ट्र के महासचिव श्री बान की मून ने अपने भाषण का अधिकांश वाक्य हिंदी में बोलकर यह संकेत दिया कि हिंदी को वैश्विक अथवा अंतरराष्ट्रीय भाषा के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

जरूरत केवल इस बात की है कि भारत सरकार सभी समर्थ देशों से संपर्क स्थापित कर एक सघन अभियान चलाए और संयुक्त राष्ट्र संघ की बैठक में मान्यता दिलाने हेतु सभी प्रक्रिया को पूरा करे। इसके साथ ही भारत सरकार हिंदी को वैश्विक भाषा बनाने के लिए हिंदी साहित्य को विदेशी भाषाओं में अनुवाद कराए जाने का प्रयास करे। हालांकि इस दिशा में कदम उठाए गए हैं, लेकिन उसे और तेज किए जाने की जरूरत है।

(१७)प्रश्न: अब हम आपसे सृजन-प्रक्रिया के बारे में कुछ बात करना चाहते हैं कि आपका जो व्यक्तिगत अनुभव है वह सार्वजनिक बन जाए। यह कैसे संभव हो पाता है कि आप जिंदगी जीते हैं, आपका अनुभव होता है, एक आपका अवलोकन होता है और उसको आप कागज पर उतारते हैं। आप कृपया उस प्रक्रिया के बारे में बताएँ कि वह किस तरह से सार्वजनिक हो जाती है और सभी लोग उससे पहचान कर पाते हैं?

उत्तर: डॉ. शिववंश जी, आपका प्रश्न महत्वपूर्ण है। दरअसल जब कोई रचनाकार लिखने बैठता है, तो उसे उस अनुभव का चयन भी करना पड़ता है जो सार्वजनिक महत्व होने की संभावना रखता हो। मसलन प्राय: सभी लेखक सपने देखते हैं, प्रत्येक के सपने में कुछ न कुछ विचित्र बात होती है। जब वह अपने सपने को कागज पर उतारता है, तो उसका वह सपना दूसरे के लिए दिलचस्प हो जाता है, लेकिन समय और समाज के अपने व्यापक संदर्भ होते हैं, यदि उस संदर्भ में रखकर कोई लेखक अपने अनुभव को सामने रखता है, तो पढ़ने वाले को या सुनने वाले को ऐसा लगता है कि मानो उसी की कहानी कही जा रही है।

एक बार की घटना है कि जब मेरी छोटी बेटी अंजलि हमारी अबतक की प्रकाश्य पुस्तक 'हम और हमारा समाज' की पांडुलिपि को कंप्यूटर पर शब्द-संयोजन (कम्पोज) कर रही थी, तब उसकी पंक्तियों को पढ़कर उसने मुझसे पूछा, 'पिताजी, आपने 'बागवान' फिल्म देखी है? मैंने कहा, नहीं, मैं तो घर से बाहर जाकर फिल्म कभी नहीं देखता, दूरदर्शन पर भी कभी कभार ही फुर्सत के वक्त देख लिया करता हूँ और वह भी कोई सामाजिक फिल्म। फिर भी 'बागवान' तो मैंने देखी नहीं। फिर बेटी ने आश्चर्यव्यक्त करते हुए मुझसे कहा तब फिर आपने 'बागवान' की ही बातें लिखीं कैसे? इसके पहले कि मैं अपनी बेटी के प्रश्न का उत्तर देता मैंने उससे कहा कि एकबार मुझे बागवान फिल्म मुझे दूरदर्शन पर देखने दो तब

तुम्हें तुम्हारे प्रश्न का उत्तर दे सकूँगा। फिल्म देखने के बाद मैंने कहा, बेटी, 'बागवान' फिल्म में जो कहानी है वह घर-घर की कहानी है। मैं जो समाज में रोज-ब-रोज देख रहा हूँ उसी यथार्थ को मैंने कागज पर उतारा है।' इतना कहने के बाद उसकी जिज्ञासा का उत्तर मिल पाया। इसलिए मैं पुनः कहना चाहूँगा कि मैं अपने व्यक्तिगत अनुभव के सार्वजनिक संदर्भों में इस प्रकार रखता हूँ कि पढ़ने वालों को यह प्रतीत हो कि मानो यह उनके भी अनुभव हों। तब हमें महसूस होता है मानो हम भी उसी का एक हिस्सा हो गए हैं। वस्तुतः समय और समाज दोनों की जो परिकल्पनाएँ हैं उनमें प्रविष्ट होने के बाद लेखक उनका एक हिस्सा हो जाता है।

(१८)प्रश्नः आप जो कहते है और कहना चाहते हैं उसका कोई सरोकार भी है? पठनीयता और रोचकता किसी भी लेखन की पहली शर्त है, इस पर आप कुछ कहना चाहेंगे?

उत्तरः हाँ, मैं जो कहता हूँ और कहना चाहता हूँ उसका कोई सरोकार भी है और वह है सामाजिक सरोकार। देखिए, समाज जिस दौर से गुजर रहा है और उस पर पश्चिमी उपभोक्तावादी सभ्यता व संस्कृति का जिस तेजी से प्रभाव पड़ रहा है उससे न केवल उसमें कुप्रवृत्तियाँ और विसंगतियाँ बढ़ी हैं, बल्कि अपसंस्कृति का बोलबाला भी होता जा रहा है। ऐसी विषम परिस्थिति में एक साहित्यकार होने के नाते मेरा दायित्व बनता है कि उसे दिशा दूँ, ताकि उसकी दशा बदल सके। यहीं पर सामाजिक सरोकार आ खड़ा हो जाता है।

जहाँ तक पठनीयता और रोचकता का सवाल है मैं पहले भी कई बार कह चुका हूँ कि लेखन का सबसे पहला गुण है पठनीयता और यह तभी आएगी तब उसमें रोचकता हो। यदि वह रोचक ही नहीं है तो आप चाहे जितनी बड़ी बात कहने वाले हों उसे कोई सुनेगा ही नहीं और न कोई पढ़ेगा। तो फिर वह लेखन निरर्थक हो जाएगा।

(१९)प्रश्नः आपके लेखन की सबसे बड़ी विशेषता यह देखने में आती है कि आप जटिल से जटिल बात को भी बहुत ही सरल और सहज शब्दों में प्रस्तुत करते हैं। इतनी सहजता से सारी बातें कह देने का महत्वपूर्ण गुण आप में कैसे आया?

उत्तरः जटिल से जटिल बात को रखने के लिए एक तो निरंतर पढ़ना जरूरी होता है। हमें यह पता होना चाहिए कि दुनिया के किस-किस हिस्सों में और कौन-कौन से लोग क्यों कह गए जिनसे कि पाठकों को लुभाया जा

सकता है और अपनी चीज पढ़ने के लिए मजबूर किया जा सकता है। सौभाग्य से दुनिया छोटी होती जाने से सारी दुनिया का साहित्य हमें सीधे सुलभ है और नए-नए तरीके भी उपलब्ध हो रहे हैं। मेरे पास तकरीबन 25. 30 पत्र-पत्रिकाएँ और उतनी ही पुस्तकें प्रत्येक माह में इसलिए आ जाती हैं कि मैं 'विचार दृष्टि' और 'वाग्वन्दना' का संपादक हूँ। सबको पूरी तरह पढ़ तो नहीं पाता, पर एक बार सरसरी निगाह से उन्हें देख जरूर लेता हूँ और मेरे हिस्से की जो जरूरी बातें होती हैं उन्हें फिर अवश्य पढ़ता हूँ। इस प्रकार पढ़ते रहने और लिखते रहने का मेरा निरंतर अभ्यास है। निरंतर अभ्यास से ही सहजता आती है। यहीं वह कला है जिसे साधने की पुरजोर कोशिश मैं करता रहा हूँ।

(२०)प्रश्न: यों तो विचारधारा जैसी चीज को साहित्य और पत्रकारिता में आपने बहुत प्रश्रय दिया है और आपकी कविता, आपके निबंध, आपके संपादकीय और आपके चिंतन को लेकर यह बात मानी जाती है कि कहीं न कहीं आपका झुकाव समाजवादी विचारों की ओर रहा है। तो आप समाजवादी विचारधारा से अपने को कितना संपृक्त महसूस करते हैं?

उत्तर: डॉ. अमर जी, यदि किसी रचनाकार की विचारधारा जानना हो, तो उसकी रचना में तलाशिए और अगर आप उसके जीवन में तलाशते हैं, तो उसके रहन-सहन, खान-पान, बोली-बानी में जाँचिए। किसी दल का सदस्य बन जाने से किसी की विचारधारा पर कोई असर नहीं पड़ता। अब आपको अगर मेरी विचारधारा देखनी हो, तो मेरे लेखन में देखें, मेरे जीवन में देखें या मेरी रचनात्मक चीजों में देख सकते हैं। उसमें समाजवादी धारा मिल जाएगी, क्योंकि मेरी रचनाओं में, जो आम आदमी है, उससे मैं अपने का जुड़ा पाता हूँ। अगर आप ढूँढ़ने की कोशिश करें, तो कट्टर साम्यवादियों से भी ज्यादा 'साम्यवाद' आपको मेरी रचनाओं में मिल जाएगा। वैसे मैं किसी विचारधारा से ग्रस्त नहीं हूँ। वह मेरा सहज जीवन है और मैं यही मानता हूँ कि जो सहज जीवन में रच-बस जाए, वही आदमी की विचारधारा है।

(२१)प्रश्न: पुराने युग के महाकवियों की रचनाओं में जहाँ राष्ट्रीयता का भावबोध नजर आता था, वहीं समकालीन परिदृश्य में उनकी विरासत को संभालने वाला कुछ अपवाद को छोड़कर कोई वारिस नजर नहीं आता है। आखिर क्यों? इसके कौन-से कारण हैं? साहित्यकार होने के नाते आप इस पर क्या कहना चाहेंगे?

उत्तर: आपकी बात से हम पूर्णतः सहमत हैं। राष्ट्रीयता का भावबोध लिए लेख या कविता जहाँ हमें मैथिलीशरण गुप्त, माखन लाल चतुर्वेदी, सुभद्रा कुमारी चौहान, महाप्राण निराला, जयशंकर प्रसाद, रामधारी सिंह 'दिनकर', गोपाल सिंह 'नेपाली' और राही मासूम रजा जैसे महाकवियों के राष्ट्र प्रेम से ओत-प्रोत स्वरों से गौरवान्वित महसूस करता हूँ, वहीं समकालीन परिदृश्य में इनकी विरासत को संभालने वाला कोई वारिस नजर नही आता है। अगर कुछ को अपवाद के रूप में छोड़ दें, तो बाकी आज के रचनाकारों में देश के प्रति वह प्रेम, ओजस्विता नहीं दिखती जो उस युग में थी। आज के अधिकतर रचनाकार राजनैतिक कारणों से उपजे किसी न किसी 'वाद' या 'विमर्श' को लेकर चलते हैं। ये आज की समस्या का समाधान निकालने की बात नहीं करते, बल्कि उस समस्या को और बढ़ा-चढ़ाकर उजागर करते हैं।

मेरे विचार से यदि इस देश को अपना गौरव वापस दिलाना है, तो समकालीन वादों व विमर्शो को गौण करते हुए राष्ट्र प्रेम, व राष्ट्र विमर्श को हमारे रचनाकारों को अपनाना होगा, क्योंकि देश का विकास संस्कृति और सत्साहित्य पर निर्भर करता है।

(२२)प्रश्न: यूनिसेफ की एक रिपोर्ट में कहा गया था कि बच्चों की परवाह किसी को इसलिए नहीं है, क्योंकि वे वोट नहीं दे सकते। तो जब बच्चों की ही किसी को परवाह नहीं है, तो उनके लिए लिखे गए साहित्य की बात कौन करे? आप इस पर क्या कहना चाहेंगे?

उत्तर: बचपन मानव जीवन का वह आधार स्तंभ है जिस पर संपूर्ण जीवन का ढाँचा ही स्थिर है। जिस परिवेश में बचपन पलता है, जो कुछ वह देखता, परखता, पढ़ता और समझता है, सभी कुछ उसके नाजुक अस्तित्व को गहराई से प्रभावित करता चला जाता है। संचार क्रांति के इस युग में यानी टी.वी., इंटरनेट और मोबाइल आदि के रहते बच्चों के पास बाल साहित्य है या नहीं, यह प्रश्न सामने आता है और यदि है तो बच्चों के पास वक्त है या नहीं, यह भी आज सोचने की बात है। विद्यालीय बस्ते के बढ़ते हुए बोझ, कैरियर के लिए कोचिंग और ट्यूशन के बाद क्या बच्चों के पास इतना समय है कि वह अपने मनोरंजन या ज्ञानवर्धन के लिए बाल साहित्य की विभिन्न विधाओं में लिखी रचनाएँ पढ़कर लाभ उठा सकें?

बच्चे में हर पल नई-नई बातें सीखने और देखने की ललक होती है। वह बहुत जल्दी पुरानी चीजों से जब उब जाता है। बच्चों के सामने टेलीविजन और इंटरनेट पर दुनिया भर की सूचनाएँ उपलब्ध हैं। बाज़ार की

चकाचौंध हैं। ऐसे में बाल साहित्य के रचनाकारों, प्रकाशकों और बाल विशेषज्ञों को रास्ता ढूँढ़ना होगा। इस आधुनिकता का लाभ उठाकर उन्हें कोई न कोई ऐसा मार्ग तलाशना होगा जिससे बच्चों में बाल साहित्य के प्रति ललक कम न हों। ऐसे वक्त यूनिसेफ की रिपोर्ट कि बच्चों के लिए किसी की परवाह नहीं, क्योंकि वे वोट नहीं दे सकते, पर हमारा ध्यान जाना चाहिए। मसलन कि हम उसकी ओर ध्यान नहीं दे पा रहे हैं। आज भी हिंदी के बाल साहित्यकार इस मानसिकता से उबर नहीं पाए हैं कि बच्चों के लिए लिखना दोयम दर्जे का काम है। हालांकि अन्य भारतीय भाषाओं में ऐसी स्थितियाँ नहीं हैं। मराठी, गुजराती, बांग्ला आदि भाषाओं में प्राय: सभी श्रेष्ठ साहित्यकारों ने बच्चों के लिए खूब लिखा है। इसलिए हमें यह सोचना होगा कि बच्चों के लिए जो कुछ लिखा जा रहा है, उस पर गहन सोच-विचार की जरूरत है। देश का भविष्य आखिर उन्हीं बच्चों के हाथों में ही तो है। अत: हम बड़ों को बच्चों के निकट आना होगा। उनके मन को समझना होगा। इसलिए बाल साहित्य की महती आवश्यकता है।

(२३)प्रश्न: इक्कीसवीं सदी में साहित्य खासतौर पर भारतीय साहित्य के समक्ष कौन-सी नई चुनौतियाँ आज खड़ी हैं? इसका सामना करने के लिए हमें क्या करना होगा?

उत्तर: मेरी समझ में इक्कीसवीं सदी में भारतीय साहित्य के समक्ष जो चुनौतियाँ पहले से थीं उनमें बढ़ोत्तरी हुई है। समता, समानता और न्याय के सवाल जस के तस खड़े हैं। सामाजिक-आर्थिक न्याय के सवाल अभी अनसुलझे पड़े हैं। अशिक्षा और गरीबी जहाँ की तहाँ खड़ी है। साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद का स्थान आज भूमण्डलीकरण और बाजारवाद ने ले लिया है। बेरोजगारी और गैर-बराबरी के सवाल नेपथ्य में चले गए हैं। मुक्त बाजार की आर्थिक और सांस्कृतिक व्यवस्था में मनुष्य के मूल्य का अवमूल्यन हुआ है। हमारी भारतीय संस्कृति पर पश्चिमी उपभोक्तावादी अपसंस्कृति हावी है। भारतीय संविधान के तहत जन-सामान्य को जो अधिकार दिए गए हैं और उसके लिए जो परिवर्तन की प्रक्रिया अपनाई गई थी, वह अवरूद्ध हुई है और उसे कारपोरेट बाजार एवं पूँजीवादी व्यवस्था की कृपा के अधीन कर दिया गया है।

स्पर्धा के विधान की चुनौती का सामना करके साहित्य को मनुष्य के लिए नया विधान विकसित करना होगा। संवेदना की साझी विरासत को सहेजना होगा। इतिहास और अतीत के सवालों को बेहतर भविष्य के लिए

सुलझाना होगा। संस्कृतियों के संघर्ष की जगह संस्कृति के सह-अस्तित्व की अवधारणा को संतुष्ट करना होगा। भारतीय साहित्य को संवेदनहीनता की सबसे बड़ी चुनौती का सबसे पहले सामना करना होगा।

(२४)प्रश्न: कविता कवि की अत्यंत वैयक्तिक और अत्यंत सामाजिक क्रिया है। आप इससे कहाँ तक सहमत हैं?

उत्तर: निःशंक जी, मैं इस बात से पूर्णतः सहमत हूँ कि कविता कवि की अत्यंत वैयक्तिक और सामाजिक क्रिया है। कविता में कवि ही समाज और समाज ही कवि हो जाता है। जिस क्षण में अनंतररूपात्मक जगत कवि में सिमट जाता है और लय हो जाता है, वही कवि रचते हुए कवि के आत्मसंघर्ष का क्षण होता है। कवि समाज के यथार्थ से प्राप्त करता है और उन्हें नई अर्थवत्ता के साथ समाज को वापस भी कर देता है। कवि अपने अनुभव को नया, वास्तविक, जीवंत और प्रासंगिक बनाना चाहता है। कवि अर्थहीन को अर्थ देता है।

(२५)प्रश्न: राष्ट्रीय एकीकरण में अनुवाद साहित्य कहाँ तक अपनी भूमिका निभाता है? खासकर आज के व्यावसायिक युग में अनुवाद पूरे राष्ट्र को एकलय में बाँधें रखने में कितना महत्वपूर्ण साबित हुआ है?

उत्तर: जहाँ भाषिक विविधता होती है, वहाँ लोगों के बीच संवाद स्थापित करने का एकमात्र सशक्त साधन अनुवाद ही होता है। यही कारण है कि भारत पूर्व सोवियत संघ और स्विटजरलैंड जैसे कुछ भाषिक विविधतावाले देशों में अनुवाद की परंपरा अन्य देशों की अपेक्षा अधिक व्यापक है। अनुवाद साहित्य न सिर्फ दो भिन्न भाषा-भाषी लोगों के बीच संवाद का एक सशक्त माध्यम है, बल्कि यह सामाजिक-सांस्कृतिक एकीकरण में भी सहायक है।

उन्नीसवीं सदी, भारतीय इतिहास का वह कालखंड है जब समाज में मध्य वर्ग का उदय हुआ, राष्ट्रवाद का उदय हुआ। इस सदी के शुरुआती दिनों तक अनुवाद का उद्येश्य धार्मिक प्रचार-प्रसार तक ही सीमित था और यह कार्य ईसाई मिशनरियाँ ही अधिक किया करती थीं। जब भारतीय जनता ने अपनी आजादी के लिए अँग्रेजों के खिलाफ संघर्ष तेज किया, तो भारत का एक बड़ा बौद्धिक वर्ग अनुवाद के जरिए भारतीय जनता को एक सूत्र में पिरोने में जुट गया। गाँधी जी ने तो अनुवाद को राष्ट्रीय एकता का प्रमुख माध्यम माना था। गाँधी युग में हिंदी से अन्य भारतीय भाषाओं में और अन्य भारतीय भाषाओं से हिंदी में खूब अनुवाद हुए। इन अनुवादों से न सिर्फ

भारतीय साहित्य में, संवेदनाओं में प्रवृत्तियों का आदान-प्रदान बढ़ा, बल्कि एक भाषा-भाषी दूसरे भाषा-भाषी की सामाजिक-सांस्कृतिक विशेषताओं से परिचित हुआ और उन्हें अपनाया। इससे एक-दूसरे के बीच के दुराग्रह भी कफी हद तक मिटे।

कहने का तात्पर्य यह कि अनुवाद न सिर्फ दो भाषाओं को एक-दूसरे की संवेदनाओं और संस्कृतियों से परिचित कराता है, अपितु दो भिन्न भाषा-भाषी लोगों को एक दूसरे के निकट भी लाता है। अनुवाद साहित्य दो भिन्न भाषा-भाषी लोगों को एक-दूसरे की भाषा भले न सिखाता हो, किंतु उन्हें एक दूसरे की संस्कृति, परिवेश और संवेदना से परिचित अवश्य करा देता है। और जब हम किसी संस्कृति और परिवेश से परिचित हो जाते है, तो वहाँ की जीवनशैली से परिचित हो जाते है और फिर धीरे-धीरे उसका अंग बन जाते हैं।

इस प्रकार अनुवाद साहित्य लोगों को एक-दूसरे से जोड़ता हैं। लोग इसके माध्यम से भाषा-भेद भुलाकर एक भाषा की रचना को अपने परिवेश से जोड़ लेते हैं, क्योंकि एक रचना सिर्फ रचना नहीं होती, पूरा परिवेश होती है, जिसमें पाठक विचरण करता है। ऐसे में एक दूसरे को जानने-समझने के लिए अनुवाद साहित्य एक महत्वपूर्ण कड़ी साबित होता है। यह व्यक्ति को व्यक्ति से जोड़ने के साथ-साथ साहित्य को भी साहित्य से जोड़ता है। आज के व्यावसायिक युग में तो अनुवाद पूरे राष्ट्र को एक लय में बाँधे रखने में काफी महत्वपूर्ण साबित हुआ है। तमाम व्यवसायिक हमलों के बावजूद राष्ट्रीय, सांस्कृतिक-सामाजिक एकीकरण में अनुवाद विधा अपनी सक्रिय भूमिका निभा रही है।

(२६)प्रश्न: किसी भी बड़े कवि का बड़प्पन इस बात पर निर्भर करता है कि वह अपने आसपास से कितना परिचित है और उसके सामाजिक सरोकारों और मानवीय संवेदनाओं का धरातल कितना ठोस है। एक कवि की हैसियत से आप क्या कहना चाहेंगे?

उत्तर: किसी कवि के लिए उसके आस-पास से परिचित होना और उसके लिए चिंतनशील होना तो आवश्यक है ही, उसका जन संबंध कितना वास्तविक और बुनियादी है, उसके सामाजिक सरोकारों और मानवीय संवेदनाओं का धरातल कितना ठोस है, इस बात पर भी उसका बड़प्पन निर्भर करता है।

कवि को अपने वर्तमान परिवेश और समाज के प्रति अध्येता भी

होना जरूरी है। कवि को अपने समय के जीवित इतिहास को कविता में बदलने की क्षमता भी होनी चाहिए। जीवित इतिहास को जब कविता में बदल कर जीवंत किया जाता है, तो वाकई एक चुनौती सामने आती है जिसका सामना कवि को करना पड़ता है। यह सर्जक के विवेक पर निर्भर करता है कि वह उस समय तथ्यात्मक सौंदर्य को प्राथमिकता देता है या सृजनात्मक सौंदर्य को। मेरी समझ से कवि में अवरोधों से टक्कर, समय की चुनौतियों से जुझने की प्रवृत्ति तथा दानवी शक्ति के पराक्रम को भी समझने की समझ भी आवश्यक है।

(२७)प्रश्नः क्या रचनाकार के लिए वैचारिक प्रतिबद्धता का होना जरूरी हैं? यदि हाँ, तो क्यों?

उत्तरः यह कोई जरूरी नहीं कि रचनाकार वैचारिक रूप से प्रतिबद्ध हो, क्योंकि हर रचनाकार के पास अपना विचार होता है। वह अपने विचारों में जितना दृढ़ होगा, निश्चित रूप से रचना में उसका उतना ही प्रभाव भी होगा। केवल किसी विचार से प्रतिबद्ध होकर अच्छी रचना करना कठिन है। वैसे भी रचनाकार किसी खास विचार से प्रतिबद्ध हो या नहीं हो, उसकी रचना में तो विचार का खुलासा होता ही है।

एक अच्छा साहित्यकार चाहे उसकी लेखन विधा कोई भी हो, मूलतः रचनाकार ही होता है। वह सृजन के माध्यम से समाज को नई चीज देता है, नई दिशा देता है। सामाजिक संदर्भ में उसे 'खोज' की संज्ञा दी जा सकती है, वशर्ते रचनाकार का इतिहासबोध अच्छा हो तथा उसमें उत्कृष्ट स्तर की युग चेतना भी हो। ऐसी स्थिति में उसकी कृति उत्तम श्रेणी की होगी, ऐसा विश्वास किया जा सकता है। सच तो यह है कि साहित्यकार स्वयं एक लघु अथवा वृहद विचार-विश्व की रचना करता है। वह जो कुछ लिखता है, कहता है उसका बड़ा महत्व होता है। हाँ, इतना जरूर है कि विद्वता के कारण उनमें दंभ भावना अधिक होती है। जितनी जल्दी इस दांभिक मानसिकता से मुक्त होकर अधिकाधिक खोजबीन करके लेखन की ओर साहित्यकार प्रवृत होंगे उतना ही रचना जगत का स्वर बढ़ेगा।

(२८)प्रश्नः कहा जाता है कि जिस देश में अल्कोहल की बिक्री सबसे ज्यादा हो, आर्थिक रूप से उस देश का सबसे उन्नत देश माना जाएगा। क्या इस आधार पर यह कहना समीचीन होगा कि जिस देश में पुस्तक व्यवसाय ज्यादा उन्नत होगा, वही देश बौद्धिक रूप से ज्यादा उन्नत माना जाएगा?

उत्तर: सिंधु घाटी सभ्यता से लेकर आज तक की मानव सभ्यता के विकास के मूल में मानव मस्तिष्क के व्यायाम का ही ज्यादा योगदान है। बौद्धिक संपदा ने हीं मनुष्य को पशुवत् जीवनयापन से निकालकर सभ्य और सुसंस्कृत बनाया है। बौद्धिक समृद्धि ही किसी भी देश का सर्वाधिक समृद्ध करती है। आज अमेरिका, ब्रिटेन और जापान में पुस्तकें महंगी होने के बावजूद यदि कफी संख्या में खरीदी और पढ़ी जाती हैं, तो उसका मूल करण यह भी है कि वहाँ का नागरिक न केवल आर्थिक दृष्टि से, बल्कि बौद्धिक दृष्टि से भी प्रगतिगामी है।

वैसे सच कहा जाए, तो कोई भी विचारधारा मात्र विचार के आधार पर नहीं चल सकती जब तक कि वह आचार-व्यवहार और यथार्थ के अनुसार अपने आप में कुछ स्वत: प्रेरित परिवर्तन नहीं करती। विचारधारा के लिए सामाजिक यथार्थ की बलि देना संभव नहीं है, क्योंकि विचारधारा का मूल ध्येय केवल विचारधारा का ही निरपेक्ष पोषण करना नहीं है, वरन् मानव समाज का सकारात्मक विकास ही उसका लक्ष्य है।

(२९)प्रश्नः राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' यद्यपि पौरूष और वीर भावना के कवि कहे जाते हैं, किंतु उनके अस्तित्व का कण-कण गीतिनाट्य 'उर्वशी' में बसा हुआ है। क्या आप इस बात से सहमत हैं? यदि हाँ, तो उनके काव्य-नाटक 'उर्वशी' की प्रेम चेतना पर आप कुछ कहना चाहेंगे?

उत्तर: हाँ, मैं इस बात से पूर्णत: सहमत हूँ कि राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' पौरूष और वीर भावना के कवि होते हुए भी उनके अस्तित्व का कण-कण गीतिनाट्य 'उर्वशी' में बसा हुआ है। लगातार वीर रस की कविताएँ लिखते-लिखते 'दिनकर' जी ने प्रेम को अपना सहचर बनाया है। 'दिनचर' जी ने स्वयं कहा है कि लगातार वीरता और पौरूष की रचनाएँ लिखते थक गया हूँ। आत्मा आज भी रसवंती और उर्वशी में बसती है।

भारतीय रसवादी मनोवैज्ञानिक प्रेम को जीवन में सर्वाधिक व्यापक मानते हैं, क्योंकि भावना के समस्त आवेग इसमें समा जाते हैं। जीवन के संपूर्ण रागात्मक संबंध और पारलौकिक अनुराग भी इसमें समाविष्ट है। गूंगे के गुड़ की भाँति किसी शब्द की बाध्यता इसके लिए आवश्यक नहीं है। यह शब्दातीत निर्वचनीय अनुभूति मात्र है। प्रेम का स्थायीभाव पूर्ति और उसकी काव्यानुभूति शृंगार है। दिनकर की रचनाओं में काम-सुख की निराकार झंकृतियों को शब्दश: सुना जा सकता है। स्वयं दिनकर ने 'उर्वशी'

में घोषणा की है कि प्रेम की एक उदात्तीकृत की स्थिति वह है जो समाधि से मिलती-जुलती है। जिसका मन स्वभाव से ही उर्ध्वगामी उड्डयनशील है, उसे काम के स्पर्शमात्र से इस समाधि का बोध होता है। दिनकर ने उर्वशी में काम के समस्त सोपानों का सांगोपान वर्णन किया है। उर्वशी में दो नारी पात्र हैं। एक नारी राग भावना से संपृक्त, अप्सरा होकर भू-लोक का पान करने वाली पूरी तरह यौवन के रस में आकंठ डूबना चाहती है। दूसरी पतिव्रता औशीनरी अपनी विशुद्ध पतिव्रता के आवरण में लिपटी गृहस्थिनी नारी है। औशीनरी नारी के सृजन मूलक आदर्शवाद और भावावेग की प्रतिमूर्ति है। इसी गीतिनाट्य का नायक 'पुरूरवा', प्रेम भाव से उन्मुक्त संबंध रखता है। वह काममूलक जीव है। उसका आदान-प्रदान भी देह तक सीमित है। कामिनी के आग्रह की प्रतीक्षा किए बिना वह अपने आग्रहों को प्राथमिकता देता है। दिनकर जी ने नारी पुरुष के चरित्रों को पूरी ईमानदारी से प्रस्तुत किया है।

'उर्वशी' में प्रेम को दो भागों में विभक्त किया गया है- स्वकीया प्रेम, जिसका प्रतिनिधित्व औशीनरी और महर्षि च्यवन की पत्नी सुकन्या कर रही है तथा परकीया प्रेम जिसका केंद्र बिंदु प्रेयसी उर्वशी है। दिनकर जी की मान्यता है कि उर्वशी चक्षु, रसना ध्राण, त्वक्र तथा क्षोत्र की कामनाओं का प्रतीक है। उर्वशी के प्रथम अंक के अंतर्गत प्रणय की रूपरेखा अप्सराओं द्वारा प्रस्तुत की गई है जो इन पंक्तियाँ में द्रष्टव्य है:-

'लगता है यह जिसे उसे फिर नींद नहीं आती है,
दिवस रूदन में, रात आह भरने में कट जाती है।
मन खोया-खोया, आँखें भरी-भरी रहती हैं,
भींगी पुतली में कोई तस्वीर खड़ी रहती है।'

दिनकर जी ने प्रेम की व्यापकता का पर्यटन किया है, जिसमें संपूर्ण मानवीय रागों ने स्थान प्राप्त किया है। यह प्रेम लौकिक क्षेत्र में भावना का विस्तार करता है और अलौकिक क्षेत्र में चरम आनंद का लाभ पहुँचाता है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में से काम अथवा प्रेम को सर्वश्रेष्ठ घोषित करके दिनकर जी ने इसके अमरत्व को सहमति प्रदान की है।

(३०)प्रश्न: आजकल जो पुरस्कार दिए जा रहे हैं उसके बारे में आपका क्या ख्याल हैं?

उत्तर: भाई सुरेश जी, आजकल जो पुरस्कार दिए जा रहे हैं उसमें इस बात से कोई मतलब नहीं है कि पुरस्कृत व्यक्ति का साहित्य, समाज या

पत्रकारिता में कितना योगदान है। पुरस्कारों के पीछे पैरवी और पहुँच भी बहुत कुछ काम करता है। कहा तो यहाँ तक जाता है कि पुरस्कार राशि में से यदि पचास प्रतिशत पुरस्कार प्रदान करने वाले मठाधीशों को देने के लिए आप तैयार हैं, तो आप को पुरस्कार देने पर वे विचार कर सकते हैं।

पुरस्कारों के पीछे दौड़ने की मुझे न तो कभी मंशा रही और न ही मैंने इसे कभी प्रतिष्ठा से जोड़ा। इधर का प्रचलन तो ऐसा चल गया है कि छूटभैए लेखक पुरस्कारों के पीछे अधिक दौड़ लगाकर पुरस्कार और सम्मान पा रहे हैं।

अमेरिकन बाईग्रॉफिल इंस्टिच्यूट के पुरस्कार और सम्मान जो नवाजे जाते हैं वे भी इस खबर को समाचार पत्रों में छपवाकर गौरवान्वित महसूस करते हैं, जबकि सच्चाई यह है कि कम-से-कम दस बार तरह-तरह के सम्मानों से नवाजें जाने पर मुझे आमंत्रण मिला, पर कभी भी डॉलर भेजकर वह पुरस्कार व सम्मान पाना मैंने मुनासिब नहीं समझा। जो स्वत: मिल जाए वही सम्मान है ऐसा मैं मानता हूँ।

(३१)प्रश्नः साहित्य को खेमों में बाँटना कहाँ तक उचित है? क्या इससे गुटबाजी और परस्पर कलह नहीं बढ़ती?

उत्तरः साहित्य को खेमों में बाँटने को उचित नहीं कहा जा सकता, मगर यह भी सही है कि साहित्य में समान सोच के लोगों द्वारा एक खास तरह का साहित्य लिखे जाने की पुरानी परंपरा रही है। इस तरह के साहित्यिक समूह हिंदी अथवा भारतीय साहित्य में ही नहीं, विदेशी साहित्य में भी सक्रिय रहे हैं और उन्होंने साहित्य की विभिन्न विधाओं के लिए महत्वपूर्ण काम किए हैं। हिंदी साहित्य में इस तरह के समूह छायावादी, प्रगतिवादी, मार्क्सवादी के रूप में जाने जाते हैं। इसी प्रकार विभिन्न विधाओं में नई कविता के लोग या फिर नई अथवा प्रगतिशील कहानीकारों का अलग खेमा रहा है। इसकी गतिविधियों का महत्व रहा है।

परंतु हिंदी साहित्य में एक दु:खद स्थिति यह रही है कि विभिन्न खेमों की नकारात्मक प्रवृत्ति देखी गई है। सभी खेमे के लोग अपने को ही श्रेष्ठ और सही मानते हैं और बाकी लोग जो लिख रहे हैं वे महत्वहीन और गलत हैं। इसी सोच ने साहित्य को बहुत कुछ नुकसान पहुँचाया है। जहाँ तक गुटबाजी का सवाल है इसे भी इंकार नहीं किया जा सकता। दरअसल, जिनकी लेखकीय क्षमता कम हो जाती है या पद, पैसे और पुरस्कार की ओर जिनकी दृष्टि चली जाती है वे लोग भटटकर खलीफागिरी करने लग जाते

हैं और अपने को स्थापित करने के उद्येश्य से अलग गुट बना लेते हैं। कुछ नए-नए लेखक ऐसे लोगों की तारीफ करके उनके 'इगो' को बढ़ावा देते हैं। अगर उनके हाथ में पत्रिका हो, तो कुछ उसमें छपने के लिए उनका आगा-पीछा करने लगते हैं। इस तरह की प्रवृत्ति से मानवीय होते हुए भी साहित्य को हानि होती है।

(३२)प्रश्नः क्या आप इस बात से सहमत हैं कि संस्कृत ने संस्कृति दी है और संस्कृति ने दिया है एक राष्ट्र?

उत्तरः हाँ, डॉ. ब्रह्मचारी जी, मैं आपकी इस बात से पूर्णतः सहमत हूँ कि संस्कृत ने संस्कृति दी है और संस्कृति ने दिया है एक राष्ट्र। हम भारत के लोग संस्कृत में ही संस्कृत हुए और सांस्कृतिक हुए, सामूहिक हुए। एक से अनेक और अनेक से एक हुए, क्योंकि दुनिया का प्रथम भाषा-अनुशासन संस्कृत में आया। पाणिनि की अष्टाध्यायी और उस पर पतंजलि का महाभाष्य भाषा शास्त्र की अमूल्य निधियाँ हैं। भारत का मन संस्कृत साहित्य के तमाम स्रोतों से बना है, अँग्रजों से नहीं, अँग्रेजी सभ्यता और संस्कारों से तो बिल्कुल नहीं। संस्कृत में सामाजिक विकास के प्रत्येक चरण को यथातथ्य जगह मिली।

संस्कृत संपूर्ण समृद्ध भाषा है जिसमें रचे गए ग्रंथ विश्व ज्ञान-विज्ञान की आधारशिला है। आखिर तभी तो जर्मन होने के बावजूद सुप्रसिद्ध बहुप्रतिष्ठित विद्वान मैक्समूलर ने ऋग्वेद को महत्वपूर्ण माना और संस्कृत और वैदिक साहित्य की महत्ता बताई। विदेशी विद्वानों के कथनों से अपनी राय बनाने वालों के लिए मैक्समूलर या विलियम जोंस के नाम काफी हैं।

जिस प्रकार मार्क्सवादी चिंतक डॉ. रामविलास शर्मा ने लिखा है कि विश्व सभ्यता और संस्कृति का अध्ययन ऋग्वेद के बिना असंभव है उसी प्रकार जर्मन विद्वान मैक्समूलर ने कहा था, संस्कृत पढ़ना भारत को समझने के लिए ही नहीं, बल्कि विश्व इतिहास, भाषा और संस्कृति को समझने के लिए भी जरूरी है। संस्कृत के असाधारण विद्वान मैक्समूलर ने ऋग्वेद का अनुवाद किया था। संस्कृत ही भारतीय संस्कृति और प्राक् विज्ञान का अभिव्यक्ति-उपकरण है। इसी प्रकार योग भारत का प्राचीन विज्ञान है। संस्कृत में उगा, पला, महका, खिला अभिनय कला पर भरत मुनि ने संस्कृत में नाट्य शास्त्र बनाया। दुनिया को अर्थशास्त्र ग्रंथ कौटिल्य ने संस्कृत में दिया। भरतमुनि का नाट्यशास्त्र कला और अभिनय का अमूल्य ग्रंथ है। आयुर्विज्ञान भी संस्कृत में प्रकट हुआ। मैक्समूलर ने ही प्राचीन संस्कृत

साहित्य का इतिहास 'हिस्ट्री ऑफ एनसिएंट संस्कृत लिटरेचर' नाम्नी पुस्तक लिखी। संस्कृत शब्द का अर्थ है-शुद्ध किया हुआ, परिमार्जित, अनुशासित। संस्कृति संस्कृत का ही विस्तार है। संस्कृत ने अपनी भाषा निधि के बूते ही एक ऐतिहासिक संस्कृति और सभ्यता का निर्माण किया है।

(३३)प्रश्न: विविध सर्जनात्मक कलाओं में रंगमंच को आप किस विधा के रूप में मानते हैं और क्यों? मौजूदा दौर में रंगमंच किन-किन समस्याओं से आक्रांत है?

उत्तर: विविध सर्जनात्मक कलाओं में रंगमंच आज सर्वाधिक जनतांत्रिक विधा है। यह विविध कलाओं का समुच्चय है। अनेक कलारूपों का साहचर्य और उनसे आदान-प्रदान उसे साहसिक स्वरूप प्रदान करते हैं, अधिक ग्राह्य और सार्वजनिक बनाते हैं। इस तरह यह सर्वाधिक सामाजिक और जनतांत्रिक कलारूप है जो अपने साथ साहचर्य करने वाले अन्य सभी कलारूपों और कलाकर्मियों को कमोवेश जनतांत्रिक और सामाजिक बनाता है।

रंगमंच बने-बनाए रास्ते पर न चलकर नित नए मार्ग सिरजता है, प्रयोग को प्रोत्साहित करता है और नित नया रचने को प्रोत्साहित करता है। एक ही नाटक की हर नई प्रस्तुति समय, स्थान और प्रस्तोता के साथ बदलती जाती है। समय सापेक्षता इसका महत्वपूर्ण गुण है। नाटक चाहे जो हो उसकी प्रस्तुति या मंचन अनिवार्यत: समय सापेक्ष होगा। वह हर बार नया आस्वाद रचता है।

इन तमाम खूबियों के बावजूद खासतौर पर हिंदी क्षेत्र का रंगमंच लंबे समय से विभिन्न समस्याओं से आक्रांत है। हिंदी साहित्य को खरीदकर पढ़ने वाले पाठक नहीं मिलते, रंगमंच की ओर से दर्शक उदासीन हैं। इसी प्रकार अखिल भारतीय स्तर पर, गाँवों-कस्बों के स्तर पर, प्रशिक्षण और बुनियादी सुविधाओं का अभाव इसके ऊर्ध्वगामी विकास को बाधित करता है। नगरों-महानगरों में स्थित सभागार इतने महंगे हो चुके हैं कि बगैर अनुदान लिए मंचन करने की इच्छा रखने वाले नाट्यकर्मियों के लिए उनका किराया चुकाना संभव नहीं रह गया है। फलत: हिंदी रंगमंच एक किस्म के ठहराव का शिकार नजर आता है। इस प्रकार रंगमंच का समूचा राष्ट्रीय परिदृश्य मूलभूत समस्याओं से बेतरह घिरा हुआ है और एक सामान्य रंगकर्मी के लिए नाटक कर पाना लगभग असंभव बना दिया गया है। राजाश्रय पर उसकी निर्भरता लगातार बढ़ती जा रही है और रसिकों का नितांत अभाव सामने आया है। इस रंगमंच को जो दर्शक आज मिल रहे हैं, उनके लिए

रंगमंच एक मन बहलाव की चीज भर है, कोई आंतरिक जरूरत नहीं।

(३४)प्रश्न: सोशल मीडिया का हिंदी को बढ़ावा देने में कितना योगदान है ?

उत्तर: डॉ. अरुण भगत जी, देखा जाए तो सोशल मीडिया का न केवल हिंदी साहित्य में, बल्कि समाज के हर क्षेत्र में योगदान है, लेकिन विडंबना यह है कि सोशल मीडिया का इस्तेमाल सही ढंग से नहीं हो पा रहा है। केवल अभिव्यक्ति की आजादी के नाम पर लोग जो मन में आया पोस्ट कर देते हैं। यह ठीक नहीं है। हाँ, इतना जरूर है कि इससे संवादहीनता टूट रही है और संवाद को बढ़ावा मिल रहा है। मगर इसके साथ ही यदि इस संवाद का इस्तेमाल जनकल्याण के रूप में किया जाता है, तो उससे भाषा, साहित्य और समाज आदि सब कुछ समृद्ध हो सकेंगे।

जबसे प्रौद्योगिकी की दुनिया आमलोगों के बीच आसानी से पहुँच गई है, तब से हमारी जीवनशैली हर पल बदलने लगी है। अब अकेला इंसान भी अपनी भावनाएँ खुद ही व्यक्त करता है और खुद ही देखकर खुश भी होता है। हर तरह की सोशल नेटवर्किंग साइट्स पर लोग न जाने कितनी चीजों को पोस्ट करते रहते हैं। यह एक फैशन-सा बन गया है कि फेसबुक, ट्विटर, वाट्सएप जैसी दूसरी सोशल नेटवर्किंग साइट्स पर लोग रोजाना नई तस्वीर और स्टेटस बदलते हैं। आलम यह है कि लोग हर मिनट-मिनट की अपनी गतिविधि को अपलोड करते रहते हैं जिससे निश्चित रूप से हिंदी को बढ़ावा देने में योगदान कहा जाएगा।

(३५)प्रश्न: आपने हिंदी साहित्य की कविता विधा में काफी कलम चलाई है। क्या आप इस बात से सहमत हैं कि एक कवि के भीतर अपनी परंपरा का होना आवश्यक है? आप खुद को परंपरा से किस हदतक बँधा या मुक्त महसूस कर पाते हैं?

उत्तर: हिंदी साहित्य की कविता विधा में खासतौर पर जापान से आयातित कविता की हाइकु और सेन्र्यू विधा में मैंने अपनी कलम चलाई है जिसके परिणामस्वरूप सामान्य काव्य-संग्रह में 'यह सच है' और हाइकु एवं सेन्र्यू काव्य-संग्रह की अबतक छह पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं और चार प्रकाशनाधीन हैं।

जहाँ तक कवि के भीतर अपनी परंपरा की आवश्यकता का सवाल है, मैं कहना चाहूँगा कि निश्चित रूप से परंपरा हमें एक सामूहिक पहचान देती है और हम उसकी पुनर्व्याख्या भी करते रहते हैं, पर परंपरा से बंधे रहना

बिल्कुल अलग बात है। उस माने में मैं अपने को परंपरा से बँधे न रहकर मुक्त रहना पसंद करता हूँ।

(३६)प्रश्नः वैज्ञानिक चेतना और दार्शनिक अनुभूति से लबालब तथा दुनिया का प्राचीनतम विवेक, दर्शन और काव्य रस से भरे हुए वेदों में आप राष्ट्रीयता की भावना कहाँ-कहाँ पाते हैं ?

उत्तरः इस देश के वैदिक ऋषियों द्वारा प्रणीत ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद और इन्हीं चार वेदों के वर्णन को आख्यायित अनेक उननिषदों को हमारी अति प्राचीन चिंतनधारा का कोष कहा जाता है। इन वेदों के आविर्भाव के साथ ही संस्कृत वाड्.मय का श्रीगणेश हो जाता है। भारत की समग्र दार्शनिक विचारधारा का मूल उद्‌गम वेद और उपनिषद हैं और दर्शन का नैतिक मूल्य संस्कृत वाड्.मय की देन है। संसार का समस्त ज्ञान-विज्ञान संस्कृत मानवीय मूल्यों से समृद्ध और आनंद से परिपूर्ण है। देशवासियों में राष्ट्रीय चेतना का संचार करने वाली भारतभूमि की तमाम उपादेय विशेषताओं का इन चार वेदों में वर्णन मिलता है। वेदों में राष्ट्र की कामना और परिकल्पना को भी दिखाया गया है।

समादरणीय डॉ. ब्रह्मचारी सुरेन्द्र कुमार जी, आप तो खुद संस्कृत के विद्वान हैं, जहाँ तक वेदों में राष्ट्रीयता की भावना उजागर होने का आपका सवाल है सर्वप्रथम आपको मैं यह बता दूँ कि हमारे देश के वेदों में जन्मभूमि भारत को मातृभूमि कहा गया है, क्योंकि वैदिक ऋषि इस तथ्य से अवगत थे कि प्रत्येक पुत्र अपनी भारत की रक्षा अवश्य करता हैं। वह अपनी माता को विपन्नावस्था में कभी भी नहीं देखना चाहता।

इसलिए वैदिक ऋषियों ने भारतीयों में मातृभूमि को मातृभूमि मानने की आस्था जगाई है, ताकि सभी भारतीय अपनी भारतभूमि को अपनी माता समझे और उसे अपनी माँ की भाँति ही कभी भी विपन्नावस्था में नहीं होने दें। कहना नहीं होगा कि वैदिक ऋषियों ने हम भारतीयों के हृदय में अपनी मातृभूमि के प्रति मातृभाव भरने की कोशिश की है, ताकि इस देश के सभी वर्ग के लोग परस्पर बन्धुत्व के बंधन से बंधकर संगठित रह सकें और मिलजुलकर अपनी माता के समान ही भारतमाता की रक्षा करने में लगे रह सकें। हम कह सकते हैं कि वेदों मे भारतभूमि की अनेक आकर्षक विशेषताओं पर एक ओर जहाँ प्रकाश डाला गया है, वहीं दूसरी ओर इसे सुख, ऐश्वर्य, कल्याण, आनंद एवं धन-धान्य की प्रदायिनी बताया गया है। इसके वनों, पर्वतों, नदियों, झरनों, झीलों समुद्रों आदि की रम्यता और

उपयोगिता को भी उजागर किया गया है।

दरअसल, स्वतंत्रता-संग्राम के दिनों में देशवासियों का ध्यान सामाजिक-आर्थिक मूल्यों की ओर सामान्यत: नहीं जा सका था, वे केवल उननिवेशवाद और ब्रिटिश साम्राज्यवाद की समाप्ति पर ही अपना ध्यान केंद्रित किए हुए थे। उन्हें यह नहीं पता था कि सत्ता के परिवर्तन मात्र से ही सामाजिक संरचना में परिवर्तन संभव नहीं हो सकेगा। इसी को ध्यान में रखते हुए हमारे वैदिक ऋषियों ने वेदों में यह संदेश दिया है कि अपने राष्ट्र की अखंडता की रक्षा हेतु इस देश के लोगों में परस्पर एकता, संगठन और समानता की भावना भी आवश्यक है, क्योंकि ऊँच-नीच और छुआछूत की भावना से राष्ट्र का पतन अवश्यमभावी है। इसलिए राष्ट्रीय एकता और इसकी अखंडता को अक्षुण्ण बनाए रखने हेतु वेदों में ईश वन्दना के माध्यम से सभी नागरिक जनों में एकता लाने और उसे बनाए रखने की जोरदार अपील की गई। यही नहीं वेदों में राष्ट्रहित के लिए विविध भाषा और धर्म विवाद को भूलकर भी उसे नहीं पनपाने का उपदेश दिया गया है, क्योंकि भाषा और धर्म व्यक्तिनिष्ठ होते हैं, पर राष्ट्र तो समष्टिनिष्ठ है। अतएव समष्टि के हित के लिए व्यक्ति के हित की उपेक्षा करना उचित है। हमारे यहाँ धर्म में कामना की गई है-

'सर्वे भवन्तु सुखिन: सर्वेसन्तु निरामया:।
सर्वे भ्रद्राणि पश्यंतु मा सर्वेसन्तु निरामया:!

इसी प्रकार वसुधैव कुटुबंकम की भावना से उत्सर्जित हमारे धर्म में सबको मित्र दृष्टि से देखने की बात की गई है -

'मित्र स्याह चक्षुषा सर्वाषिाभूतानि समीक्षा।'

हमारे प्राचीन धर्मग्रंथ ऋग्वेद में मातृभूमि की सेवा और स्वराज पाने की कामना की अपेक्षा की गई है। आज प्रजातांत्रिक भारत के जनमानस में रमने वाला स्वराज शब्द भी हमारे वेदों का ही अवदान है। इस स्वराज की रक्षा के लिए वेद में कहा गया है कि अपने राष्ट्र की रक्षा करने के लिए राष्ट्र की सैन्यशक्ति का सदैव संवर्धन करते रहना चाहिए।

राष्ट्रीय भावना का सविस्तार उल्लेख करते हुए अथर्ववेद में राष्ट्रीय भाव की रक्षा के लिए कहा गया है-

मद्रमिच्छन्त ऋषय: स्वर्विदस्तपोदी आमुष निषदरगे।
तनो राष्ट्रं बलमोजश्मच जातं तदस्य देवा उपंसनमन्तु।।

वेदों में कृषि प्रधान इस देश का शाश्वत कल्याण की चाह की गई

है जिसके परिणामस्वरूप भारत में घी-दूध की नदियों के बहने की सरस और स्वस्थ उद्भावना हो सकी है। इसीलिए भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता और समृद्धि की प्रतीक गाय का परिमन, पोषण और संरक्षण की बात वेदों में की गई है। यह समस्त भारतभूमि सुजला और शस्यश्यामला हो जाए, इसके लिए सभी भारतवासियों को प्रयत्न करने का प्रोत्साहन वेदों में दिया गया है, ताकि देश में अन्न संपत्ति का अभाव न हो सके।

वेदों में राष्ट्र के रिपुओं का सदैव दमन करते रहने की वैदिक शिक्षा की आवश्यकता पर बल दिया गया है। राष्ट्ररिपु के साथ शठंशाठ्यं समाचरेत यानी जैसे को तैसा की वेद विहित नीति को कार्यान्वित करने की प्रेरणा दी गई है। कुल मिलाकर देखा जाए तो मैं कहना चाहूँगा कि हमारा संपूर्ण राष्ट्र सुखी हो, समृद्ध हो, यशस्वी हो, शांत हो, निरोग हो, चिरायु हो, स्वाभिमानी हो, सुशिक्षित हो और सम्पूर्ण विश्व का शुभचिंतक हो, इसके लिए वेदों में अनेक स्थलों पर आकांक्षाएँ प्रकट की गई हैं और इन सभी आकांक्षाओं में राष्ट्रीयता की भावना परिलक्षित होती है।

(३७)प्रश्न: क्या आप भी मानते हैं कि बिहार की भूमि कथाकारों और कथा साहित्य के लिए अत्यंत उर्वरा रही है? बिहार की लोक कथाओं के बारे में आप क्या कुछ कहना चाहेंगे?

उत्तर: हाँ, मैं भी मानता हूँ कि बिहार की भूमि कथाकारों और कथा साहित्य के लिए अत्यंत उर्वरा रही है। हर देश और राज्य की अपनी लोककथाएँ होती हैं, जिन्हें सदियों से लोग सुनते आ रहे हैं। दरअसल, जब मनुष्य है, तो कहानी है, क्योंकि अभिव्यक्ति उसकी आदिम भूख है और कहानी उसकी एक सशक्त विधा। पंचतंत्र, जातक कथाएँ, अलिफ लैला की कहानियों की लोकप्रियता भी इसे ही सिद्ध करती है। आज 21 वीं सदी की हिंदी कहानी के पीछे भी कहानियों का एक लंबा इतिहास है, जो शाश्वत मानव मूल्यों के साथ अपने समय, परिस्थितियों और सोच को साथ लिए चलती रही हैं। आजादी के आसपास का समय लें तो प्रेमचंद की कालजयी कहानियाँ थीं, फिर फणीश्वर नाथ रेणु की लोककथाएँ आईं और फिर तो एक से एक कथाकारों की कहानियाँ आने लगीं।

जहाँ तक बिहार की भूमि के कथाकारों और कथा साहित्य का सवाल है, नि:संदेह यह भूमि अत्यंत उर्वरा रही है, क्योंकि आजादी के पूर्व से और बाद में भी लेखकों का एक बड़ा वर्ग कथा-लेखन कार्य में जुटा रहा है। सभी का नाम गिनाना तो कठिन है, फिर भी शरत्चंद, महाश्वेता देवी,

कल्याणी कबीर, पद्मा मिश्रा जैसी कथा विभूतियों ने बिहार को अपनी कहानियों की भूमि बनाया था। उनकी कथाओं के विषय और संदर्भ भी बिहार से जुड़े रहे हैं। इन सभी की कहानियों में वह आग है जो हमें सुलगा देती है, सोचने पर विवश कर देती है।

हिंदी के प्रथम कथाकार संदल मिश्र से लेकर आचार्य शिवपूजन सहाय, राजा राधिका रमण प्रसाद सिंह, रामवृक्ष बेनीपुरी, फणीश्वर नाथ रेणु, नागार्जुन, फ्रुल्लचंद्र ओझा 'मुक्त', गोवर्धन प्रसाद सदय और मधुकर सिंह जैसे कथाकारों की एक बड़ी लंबी परंपरा है। यहाँ तक कि कथा-कर्म के आकर्षण से बिहार के सुख्यात कविगण भी इससे अछूते नहीं रहे। राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर', आचार्य जानकी वल्लभ शास्त्री जैसे कवियों ने भी कहानियाँ लिखीं और कथा साहित्य को नई ऊर्जा व दिशा देते हुए उसे समृद्ध किया। कथा साहित्य में रामधारी सिंह दिवाकर, हृषीकेश सुलभ, डॉ. उषा किरण खान, डॉ. सतीश राज पुष्करणा, डॉ. शिव नारायण, भगवती प्रसाद द्विवेदी जैसे कथाकारों की कहानियाँ निरंतर जारी हैं और वे हार्दिकता से पढ़ी जा रही हैं।

जहाँ तक बिहार की लोक कथाओं पर कुछ कहने का सवाल है, लोक कथाएँ वे कथाएँ हैं, जो सदियों से मौखिक रूप में किसी समाज की बोली में प्रचलित होती हैं। बिहार की लोक कथाओं में मिथिला, भोजपुर, मगध, अंगिका, बज्जिका तथा आदिवासी इलाकों के जनजीवन, वहाँ के लोगों की भावनाएँ, सुख-दुख, आस्था तथा सामाजिक संबंध आदि उजागर होते हैं। बिहार की लोककथाएँ सदैव से ही हमारे जीवन में एक विशेष आकर्षण का केंद्र रही हैं। इनमें देवी-देवताओं, राक्षसों, पशु-पक्षियों, राजा-रानियों के प्रेम के किस्से, जादू-टोने सभी की कथाएँ रहती हैं, जो बचपन में हम दादी-नानी के मुख से सुन स्वप्न लोक में पहुँच जाते हैं। बिहार की लोक कथाओं में यहाँ की संस्कृति, जीवन-शैली तथा पशु-पक्षियों की बोलियों का भी परिचय देती है।

(३८)प्रश्न: हाड़-मांस के पुतले तो सभी हैं और कालक्रम में मृत्यु सभी को व्यापती है, तो राजा के मरने और साहित्यकार के जीवित रह जाने की बात क्यों की जाती है?

उत्तर: आपके इस प्रश्न को सुलझाने में संस्कृत की यह उक्ति मदद कर सकती है 'स्वदेशे पूज्यते राजा, विद्वान सर्वत्र पूज्यते।' किसी राजा की न्यायप्रियता या शौर्य को आधार मानकर गढ़ी गयी कहानियों के बूते वह

अपने राज में पूजा जा सकता है इसलिए कि ये कहानियाँ दूर देशों में भी फैले और वहाँ के लोगों में भी उनके प्रति श्रद्धा-भाव जगे। तो भी यश और प्रताप की कहानियों का एक दिन क्षय तय है, क्योंकि इनके नायक मिट्टी से जुड़े लोग नहीं होते। सच कहा जाए तो अपनी मिट्टी, अपने लोग और अपनेपन के ताने-बाने के बीच पसरे उनके सुख-दुख, भय-साहस, हार-जीत, प्रेम और घृणा के अनुभवों को कहानी और नीतिबोध बनाने का काम तो शब्द साधना करने वाले रचनाकार और साहित्यकार ही करते आए हैं। जनजीवन उनकी रचनाओं में अपने इतिहास के अक्स, वर्तमान की झलक और भविष्य की आहटें पढ़ता-सुनता है और इसी वजह से ऐसी रचनाओं और उनके रचनाकार को दिल में बसा लेता है और उसका साहित्य अपने युग के नीति बोध को राह दिखाने वाली एक मशाल की तरह होता है। इसीलिए रचनाकार और साहित्यकार के जीवित रह जाने की बात की जाती है। अपनी रचनाओं के जरिए ही साहित्यकार या रचनाकार सदैव जीवित रहता है। आखिर तभी तो कविगुरु रवीन्द्रनाथ टैगोर, प्रेमचंद, शेक्सपीयर, मैक्सिम गोर्की, डिकेन्स, भीष्म साहनी, अज्ञेय, शमशेर, राजा राधिका रमण प्र. सिंह, रामविलास शर्मा, रेणु, रामावतार शर्मा, डॉ. महीप सिंह, महाश्वेता देवी, सईद जाफरी, कैफी आजमी, डॉ. बालशौरि रेड्डी, निदा फाजली, जयशंकर प्रसाद, खुशवंत सिंह, डॉ. पी. दयाल, माखन लाल चतुर्वेदी जैसे रचनाकार अपने साहित्य के माध्यम से आज भी जिंदा हैं।

(३९)प्रश्न: किसी भी कविता की ताकत क्या होती है?

उत्तर: आपका यह प्रश्न ऐसा है जिसका उत्तर हर व्यक्ति के लिए अलग-अलग होगा, लेकिन इन सभी उत्तरों में 'कविता की समकालीनता' एक ऐसा मुद्दा है, जिसकी कोई भी अनदेखी नहीं कर सकता है। समकालीनता से आशय है कि वर्तमान में सामाजिक स्तर पर मौजूद वैचारिक विमर्श से कविता का तादात्म्य कितना है। इसके बाद ही कविता की साहित्यिक गुणवत्ता से लेकर दूसरे प्रश्नों पर विचार करने की संभावना सामने आती है।

आज हमारी दुनिया के अधिकतर देशों में लोकतांत्रिक व्यवस्था है और लोकतंत्र का मूल आधार है 'समानता'। फ्रांसीसी क्रांति के तकरीबन ढाई सदी बाद स्थिति यह है कि वैश्विक स्तर पर नागरिक समुदाय में सबसे बड़ी बेचैनी 'समानता' और 'न्याय' को लेकर ही है। भारत भी इस बेचैनी से अछूता नहीं है। सैद्धांतिक तौर पर बहुलतावादी समाज होने के बावजूद

हमारे सामाजिक पर्यावरण में विषमता समाज के लगभग हर एक संस्तर पर मौजूद है। इसलिए समय का तकाजा है कि हर कवि अपने जेहन में विषमता की बेचैनी को सामने रखकर कविता करे, क्योंकि यही कविता की ताकत है।

(४०)प्रश्नः २८ जुलाई, २०१६ को अपने जीवन के ९० वसंत देख चुके हिंदी आलोचना के भीष्म पितामह डॉ. नामवर सिंह के जीवन से हमें क्या सीख लेनी चाहिए?

उत्तरः आपने ठीक कहा कि हिंदी आलोचना के भीष्म पितामह कहे जाने वाले डॉ. नामवर सिंह ने 28 जुलाई, 2016 को अपनी उम्र के नब्बे वर्ष पूरे कर लिए और अभी भी सक्रिय एवं स्वस्थ-प्रसन्न हैं। निःसंदेह हिंदी के यह प्रख्यात आलोचक एक मात्र ऐसे आलोचक रहे जो अपने गंभीर लेखन और व्याख्यानों से लगातार चर्चा में बने रहे। किसी भी पुस्तक पर इनके द्वारा कही गई बातचीत तथा टिप्पणियों से साहित्यिक परिदृश्य में जैसे भूचाल आ जाती है। यही कारण है कि केवल इनके समर्थक ही नहीं, बल्कि विरोधी भी इनकी अनुशंसा की दो पंक्तियों के लिए लालायित रहते हैं।

हिंदी साहित्य के डॉ. नामवर सिंह जैसे नामी-गिरामी आलोचक, जिसने अपनी उम्र के नब्बे वर्ष गुजार लिए हों, उनके जीवन से सीख लेने का जहाँ तक सवाल है इनके गुरुदेव हजारी प्रसाद द्विवेदी के कथन को हमेशा याद रखने की जरूरत है। गुरुदेव का कथन है- 'किसी से न डरना, गुरु से भी नहीं, मंत्र से भी नहीं, वेद से भी नहीं और लोक से भी नहीं।' एक तो हमें यह सीख लेनी है कि किसी से भी डरना नहीं चाहिए। दूसरी सीख यह कि एक प्राथमिक विद्यालय के शिक्षक के सुपुत्र डॉ. नामवर सिंह अपने परिश्रम और अध्ययन-अध्यापन के बल पर हिंदी साहित्य के विश्वविख्यात आलोचक हो सकते हैं, तो हम सभी को परिश्रम करने से घबड़ाना नहीं चाहिए।

उल्लेखनीय है कि 28 जुलाई, 1926 को बनारस जिले के जीमनपुर गाँव में जन्में डॉ. नामवर सिंह ने काशी हिंदू विश्वविद्यालय से एम. ए., पी.एच.डी. करने के बाद कई विश्वविद्यालयों में अध्यापन का कार्य किया, तत्पश्चात् इस देश के सर्वश्रेष्ठ जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली के भारतीय भाषा केंद्र में हिंदी के प्राध्यापक रहे और फिर महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय विश्वविद्यालय वर्धा (नागपुर) के कुलाधिपति पद को इन्होंने सुशोभित किया। 'आलोचना' नामक त्रैमासिक पत्रिका के प्रधान संपादक पद पर रहकर इन्होंने आलोचना के क्षेत्र में भूचाल ला दिया।

डॉ. नामवर सिंह के मन में कोई महत्वाकांक्षा नहीं थी और न कोई बड़े पद पर जाने की इच्छा। हाँ, चुकि इनके पिताजी शिक्षक थे, तो इन्होंने बचपन में ही तय कर लिया था कि उन्हें अध्यापन करना है। अध्यापक बनना ही उनकी इच्छा थी। पैदल चलने की इनकी आदत छात्र जीवन से ही रही है। इसलिए आज भी वे प्रतिदिन चालीस मिनट पैदल चलते हैं। खान-पान में भी संयम बरतते हैं। शुद्ध शाकाहारी एवं मुक्त आहार और विहार। सतुआ और उसके बाद मूँग की दाल की खिचड़ी उनका सबसे प्रिय भोजन है। सब्जी में तोरी और लौकी इन्हें ज्यादा पसंद है। फल में लंगड़ा आम तथा मिठाई में रसगुल्ला खाना इन्हें पसंद है। बनारसी मगही पान से इन्हें शौक है। नि:स्वार्थ भाव के इनके प्राय: सभी मित्र हैं। इनकी सभी आदतों से हम सबों को सीख लेनी की जरूरत है।

(४१)प्रश्न: पत्र-पत्रिकाओं के पढ़ने से मुझे ऐसा लगता है कि आपकी अभिरुचि पुस्तकें लिखने में तो है ही, आलेख लिखना भी आप ज्यादा पसंद करते हैं। आखिर इसकी क्या वजह है?

उत्तर: हाँ, भाई सुरेश जी, पुस्तकें लिखने में तो मेरी अभिरुचि है ही, आलेख लिखना भी मैं पसंद करता हूँ। आलेख एक ऐसी विधा है जिसमें हम खुलकर अपने समय, समाज और राजनीति जैसे विषयों पर लिख और बोल सकते हैं। दूसरी बात यह है कि हमारे लिखे आलेख शीघ्र ही लाखों लोगों तक पत्र-पत्रिकाओं के जरिए पहुँच जाते हैं। फिर कभी-कभी आकाशवाणी के पटना तथा दिल्ली केंद्रों से प्रसारित वार्ताओं के माध्यम से भी हमारे विचार पाठकों-श्रोताओं तक पहुँच जाते हैं। वैसे भी समसामयिक सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विषयों पर लिखने का खूब प्रचलन है। इसलिए मेरी दिलचस्पी भी इन्हीं सब विषयों पर अपनी कलम चलाने में ज्यादा रहती है और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि हमारे लिखे आलेखों से ही पाठकों को हमारी लेखकीय ईमानदारी का संकेत मिलता है। वैसे भी रचना में ईमानदारी का होना उसके मौलिक होने की पहली शर्त है।

(४२)प्रश्न: क्या कलाकारों, चित्रकारों और साहित्यकारों को सरहद में बाँधने का कोई औचित्य आप महसूस करते हैं? क्या राज ठाकरे ने फिर अनर्गल राग नहीं अलापा है?

उत्तर: सुरेश जी, कलाकारों, चित्रकारों और साहित्यकारों को किसी सरहद में बाँधने का कोई औचित्य मैं नहीं महसूस करता हूँ, क्योंकि भारत एक लोकतांत्रिक और धर्मनिरपेक्ष देश है और यहाँ के संविधान नें देश के

हर नागरिक को कहीं भी रोजी-रोटी के लिए कमाने-खाने की इजाजत दे रखी है। संविधान के अनुसार देश के लोगों को अपनी धार्मिक मान्यताओं, रीति-रिवाजों और त्योहारों को मानने का अधिकार प्रदान किया गया है। इसके साथ ही देश के किसी भी राज्य का निवासी बेहतर रोजगार, जीविकोपार्जन या सुविधाओं के लिए किसी भी दूसरे राज्यों में जाने को स्वतंत्र है। ऐसे में महाराष्ट्र नवनिर्माण सेना के चर्चित खासतौर पर अपने बयान के लिए चर्चित नेता राज ठाकरे ने एक बार फिर अनर्गल राग अलापा है। इस बार उन्होंने पाकिस्तानी कलाकारों और अभिनेताओं को भारत छोड़ने का अल्टीमेटम इसलिए दिया है कि वे हमारे यहाँ से पैसे कमाकर पाकिस्तान सरकार को टैक्स देते हैं। इस आरोप का कोई औचित्य या आधार नहीं है। तब तो वैसे देश हमारे नागरिकों को भी अपने यहाँ से बाहर कर सकते हैं, मगर ऐसा होता नहीं, क्योंकि इससे मौलिक अधिकारों का हनन होता है। दरअसल, राज ठाकरे ने अपना आपा खो दिया है इसलिए उनके द्वारा किया जा रहा अशोभनीय काम मूर्खतापूर्ण संज्ञा में ही आता है।

(४३)प्रश्नः क्या आप ऐसा महसूस करते हैं कि मौजूदा दौर का संकट पहले से ज्यादा विकट और गहरा हो गया है? इसकी क्या वजहें हैं? लेखक की हैसियत से आप क्या जिम्मेदारी सोचते हैं?

उत्तरः हाँ, मैं भी यह महसूस करता हूँ कि मौजूदा दौर का संकट पहले से ज्यादा विकट और गहरा हो गया है, क्योंकि एक ओर जहाँ सामाजिक मूल्यों में गिरावट आयी है, वहीं दूसरी ओर संवेदनाओं का क्षरण भी तेजी से हुआ है। यह सब बेहद उदास करने वाला है।

यों तो लेखक के सामने संकट और चुनौतियाँ हमेशा से ही रही हैं, लेकिन आज का लेखक बाजार के दबाव, कॉरपोरेट जगत के बढ़ते प्रभाव, नव पूँजीवादी व्यवस्था की मार और उपभोक्तावादी मानसिकता के फैलाव जैसी चुनौतियों से जूझ रहा है और उसके सामने अब अपने वजूद को बचाने का संघर्ष भी एक बड़ी चुनौती है। ये सारी मुसीबतें नव उपनिवेशवादी व्यवस्था की देन है। लेखक के लिए तो ऐसे हालात पैदा किए जा रहे हैं कि आने वाले दिनों में लेखक की बातें सुनने और उसकी पुस्तकों को पढ़ने वाला भी शायद ही मिलेगा।

इसी प्रकार किसान, मजदूर, छात्र, बेरोजगार युवकों और गरीब और उपेक्षित आदमी गुस्से से भरा चुपचाप खड़ा है और खुद को वह ठगा हुआ और बेबस महसूस कर रहा है, क्योंकि उसकी समस्याएँ बेसुमार हैं और

समाधान नहीं के बराबर।

ऐसी विकट स्थिति में जहाँ तक लेखक होने के नाते हमारी जिम्मेदारी का सवाल है मैं समझता हूँ कि अपने साहित्य को पाठकों तक पहुँचाने के उपायों पर विचार करने की जरूरत है और यह काम इतना आसान नहीं है, क्योंकि आज के पाठक साहित्य से क्या अपेक्षा करते हैं और कैसा साहित्य वह पढ़ना चाहते हैं इसे जानना जरूरी है। इसके लिए संवाद, विचार-विमर्श और साहित्यिक-सांस्कृतिक बहसों को तेज करने की जरूरत है, लेकिन इसके साथ ही इन बहसों में पाठकों की भागीदारी पर भी हमें सोचना होगा और उन्हें अपने साथ लाने की कोशिश बड़े पैमाने पर तेज करनी होगी, क्योंकि साहित्य-संस्कृति को अक्षुण्ण बनाए रखने की जिम्मेदारी सिर्फ लेखकों-कलाकारों की ही नहीं, बल्कि उनकी भी है, जो साहित्य-संस्कृति से थोड़ा-सा भी लगाव रखते हैं। लोकभाषा के वैसे उपेक्षित लेखकों-कलाकारों को भी साथ जोड़ना होगा।

इसके अतिरिक्त, लेखक की हैसियत से हमारी जिम्मेदारी यह भी है कि बंद कमरों से निकलकर साहित्यिक-सांस्कृतिक बहसों को चौक-चौराहों पर लाने की जिम्मेदारी भी हम पर है। हमने महसूस किया है कि सुबह-शाम में टहलने के वक्त जो हमारे साथ हो जाते हैं, वे हमसे विभिन्न विषयों पर हमारे विचारों की हमसे अपेक्षा करते हैं। इसलिए हमें लामबंद होना ही होगा। ऐसा नहीं करने से हमारा बजूद ही खतरे में पड़ जाएगा।

हमारे देश व समाज पर गहराता संकट यह भी है कि जिस गाँव ने गुलामी में भी भारतीयता को बचाये रखने की प्रेरणा और ताकत दी वही गाँव आज तरक्की के बावजूद गर्त में जा रहा है, क्योंकि वहाँ भी अब लोग अपना स्वत्व, अपनी निजता, अपना अपनापन खोते जा रहे हैं। इस संदर्भ में महान विद्वान मैक्समूलर ने लार्ड मैकाले के नाम जो चिट्ठी लिखी थी उसकी कुछ बातें आपसे कहना चाहूँगा। मैक्समूलर अपनी चिट्ठी में मैकाले को लिखते हैं कि 'यह जो भारत है, उसकी असली ताकत उसकी संस्कृति है, भारतीयता है, उनका निजीपन है, स्वत्व के प्रति आग्रह है। अगर इसे खत्म नहीं करोगे, तो लंबे समय तक राज नहीं कर पाओगे '।

सुरेश जी अब आप इसी से समझिए कि मैक्समूलर कितनी गहराई से चीजों को समझकर क्या लिख रहा था मैकाले को और फिर मैकाले ने, क्यों कोशिश की थी भारतीयता को खत्म करने की, लेकिन गुलाम भारत में किसी ने भी भारतीयता को खत्म नहीं किया, अब हम अपने से अपना

स्वत्व, अपनी निजता खोते जा रहे हैं, तो सबसे बड़ा संकट यही है। आजादी के सत्तर साल बाद भी हम देशवासियों में भारतीयता और राष्ट्रीयता की भावना को लुप्त होते देख रहे हैं और देशभक्ति की भावना का लगातार ह्रास होते जाना सबसे बड़ा संकट है।

आखिर यह किसकी जिम्मेदारी है? कौन इसकी हिफाजत करेगा? यह देश गलत हाथों में न चला जाय इसलिए यह हम सभी देशवासियों की जिम्मेदारी बनती है कि इसकी हिफाजत हम सब करें। ऐसे वक्त मुझे याद आ रही हैं कवि केदारनाथ सिंह की कविता की ये पंक्तियाँ जिसकी ओर आपका ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ–

"मैं पूरी ताकत के साथ शब्दों को फेंकना चाहता हूँ
आदमी की ओर,
ये जानते हुए भी आदमी का कुछ नहीं होगा,
मैं सड़क पर सुनना चाहता हूँ वह धमाका
जो शब्द और आदमी की टक्कर से पैदा होता है।"

(४४)प्रश्नः लेखक होने के नाते क्या आप भी मानते हैं कि सुप्रसिद्ध नाटककार विलियम शेक्सपीयर द्वारा लिखित 'हेनरी छठे' शृंखला के तीन नाटकों के सह लेखक क्रिस्टोफर मार्शो थे?

उत्तर: इसके पहले कि मैं आपके मूल प्रश्न का उत्तर दूँ आपको यह बताना उचित समझता हूँ कि ब्रितानी अकादमिक जगत निष्ठा और वैज्ञानिकता से शोध में लगा रहता है जिसका एक प्रमाण यह है कि पिछले दिनों ब्रितानी अकादमिक जगत और नाट्यप्रेमियों ने लंबे शोध और अध्ययन के बाद यह निष्कर्ष निकाला कि विलियम शेक्सपीयर द्वारा लिखित 'हेनरी छठे'शृंखला के तीन नाटकों के सह लेखक क्रिस्टोफर मार्शो थे। विश्वविख्यात नाटककार शेक्सपीयर द्वारा लिखे नाटकों के बारे में वैसे भी बरसों से यह कयास अक्सर लगाए जाते रहे हैं और बहस चलती है कि उनके वास्तविक लेखक कोई और थे। शेक्सपीयर की जिंदगी और लेखन एक विशाल उद्योग की तरह है और उनको लेकर अनुमानों का सिलसिला जारी है। इसलिए अब जब ब्रितानी अकादमिक जगत और नाट्यप्रेमियों ने लंबे शोध और अध्ययन के बाद यह निष्कर्ष निकाला है कि शेक्सपीयर द्वारा लिखित 'हेनरी छठे' शृंखला के तीन नाटकों के सहलेखक क्रिस्टोफर मार्शो थे, तो मुझे मानने में क्यों इतराज होगा।

वैसे भी 1564 से 1593 तक के काल तक यदि सीमित रखी

जाए, तो क्रिस्टोफर मार्शो शेक्सपीयर के समकालीन थे और एक कवि और नाटककार के रूप में समादृत हैं। कई तो यह भी मानते हैं कि वे 'हैमलेट' के भी लेखक हैं। मार्शो का जीवन और साहित्य, दोनों कई रोचक तथ्यों और रहस्यों के आवरण में रहे हैं, वे ब्रितानी साहित्य समाज में पिछले चार सौ साल से भी अधिक समय में एक दंतकथा की तरह रहे और आगे भी रहेंगे। मार्शो सिर्फ 29 साल जिए, क्योंकि 1993 में उनकी हत्या कर दी गई फिर भी उनकी लेखकीय और काव्यात्मक प्रतिभा निर्विवाद रही है, और उनके जीवन पर आधारित भी कई नाटक और उपन्यास लिखे गए हैं।

(४५)प्रश्न: साहित्य के नोबल पुरस्कार से सम्मानित अमेरिकी गीतकार और अपने समय के लोकप्रिय गायक बॉब डिलन को आप किस रूप में आँकते हैं?

उत्तर: साहित्य के नोबल पुरस्कार से सम्मानित अमेरिकी गीतकार और अपने समय के लोकप्रिय गायक वास्तव में एक व्यक्ति है, जो दुनिया को बदलने के लिए बिल्कुल तैयार हैं। लगातार वे देखते रहते हैं कि ऐसा क्या है, जिसे उलटा जा सके। वे लगातार कहते रहते हैं कि क्या होना चाहिए। वे ऐसी पीढ़ी की आवाज हैं, जिसे वाकई यह भरोसा था कि काव्य में सब कुछ बदलने की ताकत है राजनीति, इतिहास, साहित्य, जिंदगी, आपकी और मेरी अंतरात्मा।

बॉब डिलन तो अनिवार्य रूप से विरोध की आवाज हैं। उन्होंने जो भी गीत गाया, उनमें हमारे वक्त की सच्चाइयों पर संवाल उठाए। उन वादों पर सवाल उठाए, जो कभी पूरे नहीं किए गए, उनके गीतों की ताकत इसमें है कि वे किसी चीज को मानकर नहीं चलते प्रेम, सत्य, राजनीति, अमेरिका के पवित्र युद्ध। वे आपको खड़े होकर इन सब पर सवाल उठाने के लिए प्रेरित करते हैं। खुद तो सवाल उठाते ही हैं वे उम्मीद के चरम गुरिल्ला योद्धा हैं।

बॉब डिलन जैसे कवि हमें सिखाते हैं कि जो शब्द हम आज लिखते हैं वे आगे आने वाले इतिहास को नए कल की ओर ले जाने वाले शब्दों के रूप में देखे जाएँगे और यह कि जो गीत में न्याय की गुहार लगाते हैं, उनकी गूँज सदियों तक सुनाई देती है। सत्य, शांति, न्याय के लिए मानव की खोज में एक समयातीत गुणवत्ता है, ठीक वैसी ही उम्मीद में होती है। सारे महान कवियों के बारे में ही सच है- उम्मीद और भावावेश का अनंत सौंदर्य। यही वजह है कि महानतम कवि इतनी ऊँची आवाज में पूर्वग्रह और अन्याय के खिलाफ बोलते हैं। यह विरोध वास्तव में परिवर्तन लाए या न

लाए, लेकिन निश्चित ही वह एक पीढ़ी को अपनी भूमिका के प्रति जागरूक बनाती है, जैसा कि दुनिया के इतने सारे हिस्सों में हुआ है। कवि और गीतकार उस बदलाव के गीत गाते हैं, जिसके लिए हमें लड़ना होगा–

'आह, पत्तियाँ गिरने लगी हैं,
और सागर विभाजित होने लगे हैं,
और उसका विरोध करने वाले कई लोग थे,
और उसे ये शब्द कहे गए,
जिन्होंने उसका दिल खोल दिया
यदि तुम अच्छी खबर नहीं ला सकते,
तो फिर खबर ही मत लाओ।'

डिलन अपनी कविता चुनौतियों का आह्वान करने वालों, अज्ञात कवियों, प्रेमियों, हताश चरित्रों, उदास 'आँखोंवाले चिंतकों' और इन्द्रधनुष पर सवार देवदूतों को समर्पित करते हैं।

(४६)प्रश्न: क्या आपको ऐसा नहीं लगता है कि हिंदी राज्यों में भाषा, साहित्य और संस्कृति का परिदृश्य बदल रहा है? पूर्वोत्तर राज्यों से क्या हिंदी राज्यों को सीख नहीं लेनी चाहिए?

उत्तर: हाँ, मुझे ऐसा लगता है कि हिंदी राज्यों में भाषा, साहित्य और संस्कृति का परिदृश्य बदल रहा है, हिंदी प्रदेश के अधिकतर विश्वविद्यालयों की स्थिति इस मायने मे बहुत अच्छी नहीं है। हिंदी के प्राध्यापकों की भाषा, साहित्य और संस्कृति से बहुत कम अनुराग है। भूमंडलीकरण के दौर में भाषा, साहित्य और संस्कृति को लेकर न वे संवादरत हैं और न चिंतित। निष्क्रिय माहौल समाप्त नहीं हो रहा है। सच तो यह है कि पूर्वोत्तर राज्यों में जो सांस्कृतिक, जातीय चेतना आज भी कायम है, उससे हिंदी भाषियों को सीख लेनी चाहिए। पूर्वोत्तर राज्यों के तीन-चार जिलों में बोली जाने वाली भाषाओं पर जैसा गंभीर अध्ययन वहाँ हो रहा है, वह प्रेरणादायी है। भौगोलिक, भाषाई, सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक दृष्टियों से पूर्वोत्तर राज्य देश के अन्य राज्यों की तुलना में कहीं अधिक भिन्न और विशिष्ट हैं। सांस्कृतिक दृष्टि से भारत के अन्य राज्यों से भिन्न असम, मेघालय, अरुणाचल प्रदेश, नागालैंड, मणिपुर, त्रिपुरा और मिजोरम को पहली बार त्रिपुरा के एक पत्रकार ज्योति प्रकाश सैकिया ने 'सेवन सिस्टर्स' कहा था और अब सिक्किम को इस सात बहनों का भाई कहा जाता है।

पिछले दिनों 18 एवं 19 नवंबर, 2016 को महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय

हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा एवं पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग के हिंदी विभाग द्वारा 'पूर्वोत्तर भारत की भाषा, साहित्य और संस्कृति के बदलते परिदृश्य' विषय पर आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी का महत्व उन राष्ट्रीय संगोष्ठियों की तुलना में कहीं अधिक भिन्न और विशिष्ट कही जाएगी जो केवल कवि, लेखक, विधा विशेष और साहित्य केंद्रित होती हैं। एक साथ भाषा, साहित्य और संस्कृति पर सुचिंतित विचार अब कम ही होते हैं। वैविध्य का सौंदर्य पूर्वोत्तर में आज भी मौजूद है।

(४७)प्रश्न: क्या साहित्यिक विमर्श पर मंथन करने का दावा करने वाले साहित्यिक समारोह के आयोजक जानबूझकर विवादित प्रतिभागियों का चयन करने लगे हैं? गंभीर साहित्यिक विमर्श भी क्या मनोरंजन का मंच बनने की जुगत में लग गया है?

उत्तर: इधर हाल के वर्षो में देश के जिन शहरों में गंभीर साहित्यिक चर्चा या सामाजिक विषयों पर विचार-मंथन के लिए साहित्यिक समारोह संपन्न हुए हैं और उनमें खासतौर पर विवादास्पद राजनेताओं एवं अभिनेताओं को प्रतिभागी के रूप में आमंत्रित किया गया उसे देखते हुए तो ऐसा लगता है कि समारोह के आयोजक जान-बूझकर साहित्यिक मंच को मनोरंजन का मंच बनने की जुगत में लग गए हैं, क्योंकि सुदूर तमिलनाडु से लेकर दिल्ली तक और पश्चिम में मुंबई और अहमदाबाद एवं जयपुर तक के साहित्यिक समारोहों में विवादित राजनेताओं ने किसी लिटरेचर फेस्टिवल के मंच की मर्यादा के अनुरूप अपने उद्‌गार नहीं व्यक्त किए, बल्कि सच तो यह है कि उनकी अभिव्यक्तियों से कई तरह के सवाल उठ खड़े हुए।

इन दिनों दिल्ली के जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय छात्र संघ के पूर्व अध्यक्ष कन्हैया कुमार जिनकी न तो कोई साहित्यिक पृष्ठभूमि रही है और ना ही साहित्य से कोई वास्ता। कन्हैया कुमार के साहित्यिक योगदान से साहित्य जगत अबतक अनजान है फिर भी पिछले दिनों कसौली में संपन्न खुशवंत सिंह लिटरेचर फेस्टिवल में इन्हें एक सत्र में वक्ता के रूप में आमंत्रित किया गया था। इन्होंने उस सत्र में वही राष्ट्रवाद की अवधारणा को खिचड़ी बताकर विवाद खड़ा करने का प्रयास किया और अपनी अनभिज्ञता का परिचय दिया। कन्हैया के भाषण के बीच में ही श्रोताओं ने उनकी हुटिंग कर उनसे माँग की कि सेना को बलात्कारी कहने के अपने बयान पर माफी माँगे।

इसी प्रकार मुंबई के एक साहित्यिक समारोह में आमंत्रित पूर्व वित्त

मंत्रे पी. चिदंबरम ने अयोध्या में मस्जिद के विवादग्रस्त ढाँचे को गिराए जाने को लेकर उस वक्त के प्रधानमंत्री पी.वी. नरसिंह राव को कठघरे में खड़ा कर दिया। पल्लवी, अब तुम ही बताओ कि साहित्यिक विमर्श में ऐसे विवादास्पद मुद्दे को उठाने का क्या मतलब?

वर्ष 2016 में ही जयपुर में आयोजित लिटरेचर फेस्टिवल के आखिरी दिन अभिव्यक्ति की आजादीवाले सत्र में अभिनेता अनुपम खेर, सलिल त्रिपाठी, मधु त्रहान तथा कपिल मिश्रा जैसे गैर साहित्यिक लोगों को आमंत्रित किया गया था जिसमें कपिल मिश्रा द्वारा प्रधानमंत्री को लेकर की गयी आपत्तिजनक टिप्पणी पर श्रोताओं ने जबर्दस्त प्रतिवाद किया। कपिल मिश्रा और अनुपम खेर के बीच तो काफी देर तक तू-तू मैं-मैं होती रही जो किसी साहित्यिक विमर्श की मर्यादा के अनुरूप नहीं थी। और तो और जयपुर के साहित्यिक समारोह में समाजशास्त्री आशीष नंदी ने कह दिया था कि अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़े वर्ग के लोग भ्रष्टाचार में ज्यादा लिप्त पाए गए हैं। इस पर 'आप' के नेता आशुतोष ने कड़ी आपत्ति की। न्यूज चैनल इस मसले पर बहस करने निकल पड़े और बाद में यह मामला सर्वोच्च न्यायालय तक पहुँच गया था।

दरअसल, साहित्यिक विमर्श के दौरान बहसों से निकलने वाले विवादों और नियोजित विवादों के बीच का अंतर जिस तरह खत्म होता जा रहा है उससे विमर्श पीछे छूटता जा रहा है। जानबूझकर विवादों को निमंत्रित करने या फिर विवादित चेहरों को बुलाने की प्रवृत्ति साहित्यिक आयोजनों को भले ही चर्चा में ला सकती है, मगर साहित्यिक विमर्श व संवाद को आगे बढ़ाने का काम नहीं कर सकती। इससे तो यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि साहित्यिक समारोह के आयोजक की मंशा साहित्यिक विमर्श में न होकर उसे मनोरंजन का मंच बनाने में रह गयी है। दरअसल, इन दिनों साहित्य और खासतौर पर हिंदी साहित्य को तमाशबीनों और मेले-ठेले की संस्कृति ने घेर लिया है। पहले साहित्य में उत्सव गौण हुआ करते थे, मगर अब वही उत्सव प्रधान हो गए हैं। साहित्य में तमाशखोरी, मजमेबाजी को साहित्य कर्म समझना ठीक नहीं होगा। यह प्रवत्ति पूँजीवाद के गहरे असर का लक्षण है।

(४८)प्रश्न: हिंदी साहित्य के सृजन में कविता भी आपकी एक महत्वपूर्ण विधा रही है। विगत कई दशकों में जो कविताएँ लिखी गई हैं उनमें कौन से स्वर उभर कर सामने आए हैं और किस परिवेश और परिस्थितियों का प्रयोग आपको देखने को मिलता है?

उत्तर: भाई मनोज, आपने सही कहा कि हिंदी साहित्य के सृजन में निबंध, संस्मरण, आत्मकथा, यात्रा-वृतांत के साथ-साथ कविता विधा में भी मेरी अभिरुचि रही है, मगर कविता विधा में विशेष तौर पर जापान से आयातित हाइकु एवं सेन्र्यू में अबतक मेरी आधा दर्जन पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

जहाँ तक विगत कई दशकों में लिखी गई कविताओं के स्वर और परिवेश एवं परिस्थितियों के प्रयोग का सवाल है मेरे ख्याल से उनमें समकालीन परिवेश और परिस्थितियों का सुंदर प्रयोग देखने को मिलता है। यहीं नहीं वे आधुनिक विचारों और मन:स्थितियों का भी सुंदर प्रतिनिधित्व करती हैं। इसके अतिरिक्त समय-समय पर होने वाले पर्व, त्योहार के अवसर पर उत्सव का श्रृंगार एवं दैनिक जीवन का आचरण दिखाई देता है। अधिकांश कविताओं का स्वर मंगल कामनाओं के पारंपरिक स्वरूप जैसा है तो भी आधुनिक युग की सच्चाई दिखाने वाली प्रवृत्तियाँ स्पष्ट नजर आती हैं। वर्तमान समय में कवि लगातार बुराइयों से जूझ रहा है और संघर्ष करते दिखाई दे रहा है।

(४९)प्रश्न: साहित्य और कला सृजन में स्त्री पुरुष का भेद मिट जाता है और उस बिंदु पर दलित और सवर्ण का भी कोई मतलब नहीं होता। इस पर आप क्या कहना चाहेंगे?

उत्तर: साहित्य और कला सृजन में निश्चय ही एक चरम बिंदु है, जहाँ कला के तराजू पर सबको एक साथ तौलना और हल्का या भारी, छोटा या बड़ा सिद्ध होना होता है, लेकिन भारत की स्त्री का जीवन-संघर्ष पुरुष की तुलना में दोगुना से भी अधिक होता है। उसे एक नहीं, कई तरह के सेंसरशिप से गुजरना होता है, क्योंकि भारत की स्त्री अपने को दूसरों की नजरों से ही देखती है तो कभी परिवार, कभी पति और कभी बच्चों का चेहरा सामने आ जाता है। आत्माभिव्यक्ति के लिए मान-मूल्यों का बोझ सिर पर लादे वह कभी स्वतंत्र अभिव्यक्ति नहीं कर पाती। ये बातें स्त्री पर अघोषित प्रतिबंधों की तरह होती है। दोहरे मानदंडों के रूढ़ संस्कार भारतीय स्त्री को भीतर ही भीतर तोड़ देते हैं।

बेटी पाराशर, जहाँ तक साहित्य और कला सृजन में स्त्री और पुरुष के भेद का सवाल है साहित्य में भारतीय स्त्री का संघर्ष समता के संघर्ष के अलावा उसके मनुष्य माने जाने का संघर्ष भी है। मीरा और महादेवी वर्मा की तरह इस संघर्ष में विजयी स्त्री ही लेखन और कला की उन ऊँचाइयों

का स्पर्श कर पाती हैं, जहाँ लिंग, धर्म, देश और जाति के नाम पर कोई छूट, कोई आरक्षण नहीं है।

जहाँ तक दलित और सवर्ण होने मात्र से साहित्य या कला सृजन का सवाल है, मैं इन दोनों की वजह से कोई छूट देने का विरोधी हूँ। इस तरह का कोई विभाजन अवैज्ञानिक और विरोधी काम है, लेकिन साहित्य में भी आज स्त्री और दलित साहित्य सृजन के रूप में नया विभाजन कर फिर उसी तरह की गलती की जा रही है। हर वर्ग का अपना विशिष्ट अनुभव हो सकता है। शोषण कर कुरूप यथार्थ कोई दलित चित्रित करेगा, तो निश्चय ही साहित्य के सरोकार बहुआयामी और व्यापक होंगे, किंतु मूल्याँकन की कसौटी पर कृति को रियायत केवल इसलिए नहीं मिल सकती कि उसे किसी दलित या स्त्री ने लिखा है।

(५०)प्रश्नः क्या आपको ऐसा लगता है कि आज के बच्चों की नजर में साहित्य एक पिछड़ी हुई चीज बनकर रह गया है? यदि हाँ, तो क्यों और कैसे?

उत्तरः हाँ, डॉ. गोपाल जी, मुझे भी ऐसा लगता है कि आज के बच्चों की नजर में साहित्य एक पिछड़ी हुई चीज बनकर रह गया है जिसके लिए आज का परिवेश जिम्मेदार है, बच्चे खुद नहीं, क्योंकि अब वो समय नहीं रहा जिसमें अभिभावक ज्यादा से ज्यादा समय अपने बच्चों को दें, उन्हें कहानियाँ सुनाएँ, साहित्य की बातें करें और उनकों साहित्य के प्रति जिज्ञासु बनाएँ।

दरअसल, अब तक हम साहित्य को मनोरंजन के साधन से अधिक और कुछ नहीं समझ पाए जबकि हकीकत यह है कि साहित्य का लक्ष्य और उसका प्रभाव उससे कहीं ज्यादा है जितना आमतौर पर समझा देखा और जाना जाता है। साहित्य से समझ विस्तार पाती है और बचपन में सहजता बोध अंकुरित होता है जैसा कि हमें बचपन में बाल साहित्य चंदा मामा, नंदन, चंपक, बालहंस का जिक्र आते ही मानो बचपन फिर से जी उठता है। उस दौर में साहित्य पढ़ना गर्व का विषय और आनंद की अनुभूति था, मगर युग बदलने और सोच में भी बदलाव आने के बाद इस दौर में मनोरंजन के इतने साधन हो गए कि आज बच्चों के लिए साहित्य भारी भरकम शब्द बनकर रह गया। बच्चों की नजर में साहित्य आज एक पिछड़ी हुई चीज बनकर रह गया है।

आजकल पति-पत्नी दोनों ही कामकाजी हैं। घर-बाहर की जिम्मेदारी

में वे इतने उलझे हैं कि बच्चों के लिए उनके पास समय ही नहीं है। ऐसे में बच्चों में भावनात्मक और नैतिक सुख न देते हुए केवल भौतिक सुख-सुविधा और उपहार देकर अपने कर्तव्य की इतिश्री कर रहें हैं जिससे बच्चों का भौतिक विकास तो हुआ, मगर उनका बचपन नैतिक विकास की राह से अनजान ही रहा, क्योंकि वह तो साहित्य से मिल सकता था, लेकिन साहित्य की जगह तकनीक ने ले ली।

(५१)प्रश्नः क्या आप भी इस बात से सहमत हैं कि व्यंग्य अब फूहड़ता का पर्याय है?

उत्तरः भाई, बाँके बिहारी जी, मैं भी आपकी इस बात से सहमत हूँ कि व्यंग्य लेखकों के द्वारा लिखा या कवि सम्मेलनों में पढ़ा जा रहा व्यंग्य फूहड़ता का पर्याय बनता जा रहा है, क्योंकि व्यंग्य के नाम पर अधिकतर जो भी लिखा या कवि सम्मेलनों में सुनाया जा रहा है, वह व्यंग्य है ही नहीं। टिप्पणी करना, सिर्फ हँसाना, शब्दों की जगलरी या कटाक्ष करना कभी व्यंग्य हो ही नहीं सकता है। आज देखने में ऐसा आ रहा है कि बहुत से लेखकों ने व्यंग्य विधा को अत्यंत छिछला बना दिया है। सर्वाधिक नुकसान कवि सम्मेलन पहुँचा रहे हैं, जहाँ व्यंग्य के नाम पर दोअर्थी भाषा और लतीफेबाजी का जमकर प्रयोग किया जाता है।

हालांकि यह भी सच है कि अच्छे व्यंग्य लेखकों की कमी नहीं है। श्रेष्ठ व्यंग्य लेखकों की संख्या भी बढ़ रही है। हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, रवीन्द्र नाथ त्यागी, प्रेमजनमेजय और श्रीलाल शुक्ल के अतिरिक्त ज्ञान चतुर्वेदी, सुभाष चंदा, गिरीश पंकज, पंकज प्रसून, अतुल चतुर्वेदी आदि ऐसे और लोग भी हैं जो अच्छा व्यंग्य लिख रहे हैं और जिन्हें पढ़ने या सुनने में मजा आता है, क्योंकि उनसे एक अच्छी खासी मानसिक खुराक भी मिलती है और उनके व्यंग्य लेखन से साहित्य भी समृद्ध होता है।

(५२)प्रश्नः प्राचीन साहित्य में राष्ट्रीयता की भावना पर आप क्या कुछ कहना चाहेंगे?

उत्तरः डॉ. गोपाल जी, जब भी साहित्य में राष्ट्रीयता की भावना की बात उठती है, तो मुझे महाराष्ट्र के छत्रपति शिवाजी की याद आ जाती है, जिन्होंने राष्ट्रीयता के आधार पर खुल्लमखुल्ला हिंदवी साम्राज्य की घोषणा की थी। शिवाजी को सर्वाधिक प्रेरणा तत्कालीन कवि संत रामदास से मिली, क्योंकि रामदास जी ही ऐसे संत थे जिन्होंने इस तथ्य को स्वीकारा कि वैराग्य धारण करके समाज और राष्ट्र की सेवा नहीं हो सकती। दरअसल संत

रामदास ने दूर-दूर तक भ्रमण किया और हिंदवी साम्राज्य के रूप में हिंदवी राष्ट्रीयता को चारों ओर फैलाया जिनके कार्य से शिवाजी बहुत प्रभावित हुए। सच कहा जाए तो पिछले कुछ वर्षो से भारतीय राष्ट्रीयता जो जमीन के भीतर चली गई थी उसे महाराष्ट्र की धरती पर पुनः प्रस्थापित करने का भगीरथी कार्य संत रामदास ने किया। यही कारण है कि स्वराज्य की स्थापना के साथ-साथ महाराष्ट्र की जनता में स्वाभिमान, देशभक्ति, शौर्य तथा पराक्रम की जो भावना भर दी थी उससे प्रेरित होकर अनेक मराठा सरदारों ने न केवल शिवाजी के स्वराज्य की रक्षा की, बल्कि उसे आगे बढ़ाया और फैलाया।

राष्ट्रीयता के वाहकों में स्पष्ट रूप से दिखला देने वाली दो धाराओं में से प्रथम थी आध्यात्मिक संस्कृति जिसके कवियों में श्रीधर, महीपती, मोरोपंत, अमृतराय, निरंजन माधव आदि थे, तो दूसरी समसामयिक राजनीतिक परिस्थितियों से प्रभावित धारा के कवियों में रामजोशी, अनंतफंदी लहरी मुकुंदर, होनाजीबाल, प्रभाकर, सगनभाउ और परशराम थे। इसी प्रकार मंडाले जेल में लोकमान्य तिलक ने 'गीता रहस्य' लिखकर राष्ट्रीयता को जो नया आयाम दिया उसे भारतीय साहित्य कभी भूल नहीं सकता। मराठी साहित्य की प्रायः सभी विधाएँ राष्ट्रीयता के लिए समर्पित रहीं। साहित्य में राष्ट्रीयता की भावना को खोजना है तो मराठा साहित्य को पढ़ना और पढ़ाना होगा।

इसी प्रकार राष्ट्रभाषा हिंदी के साहित्य में राष्ट्रीयता की भावना को देखना है तो उर्दू साहित्य पर एक नजर डालना इसलिए जरूरी होगा, क्योंकि हिंदी बोली को अरबी में लिपिबद्ध करके जिस साहित्य का निर्माण किया वह भी राष्ट्रीयता की मूल धारा से अलग नहीं था। स्वदेशी भावना को विदेशियों के सम्मुख अमीर खुसरो ने जिस तरह से प्रस्तुत किया यह भाषा की दुनिया में एक नया आविष्कार था। ब्रज, अवधी, मालवी, भोजपुरी और मेवाड़ी के शब्दों को फारसी जैसी भाषा से मिलाकर ग़ज़ल और गीत अमीर खुसरो ने लिखे। अमीर खुसरो ने तो भारतीयता और राष्ट्रीयता का परिचय भारत के बाहर प्रस्तुत किया और उस ईरान तक पहुँचाया जो आर्यवृत्त का कभी हिस्सा था। आजादी की लड़ाई में सारे देश ने योगदान दिया, लेकिन निर्णायक सफलता इस धरती के विशाल पर ज़ो उत्तर और पश्चिम स्थित है, वह सबसे अधिक उठापटक का केंद्र रहा। इसलिए यह क्षेत्र राष्ट्रीयता का धड़कता दिल बन गया। गंगा-यमुना की संस्कृति वाले इस देश-प्रदेश में भारतीय संस्कृति ने इतनी गहरी छाप छोड़ी है कि डॉक्टर ईकबाल जैसे अलगाववादी कवि को भी यह स्वीकार करना पड़ा कि

'यूनानों मिश्रों रोमा सब मिट गए जहां से
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी।'

सातवीं शताब्दी में हर्षवर्धन के निधन के पश्चात् कोई व्यक्ति नहीं रहा जो देश को एकसूत्र में बाँधे रखता। यह तो कहिए कि चाणक्य जैसा व्यक्ति ने न केवल आक्रांताओं से लड़ने के लिए लोगों को संगठित किया, बल्कि भारतीय अर्थव्यवस्था से लेकर राजनीति के सूक्ष्म गुर तक सिखलाए। चाणक्य ने जो चिंतन किया वह सब भारतीयता और राष्ट्रीयता के लिए ही किया। इसी प्रकार पृथ्वीराज और राणा प्रताप ने विदेशियों से जो युद्ध किया उनमें भारतीय हुंकार के दर्शन होते हैं। चंद्रबरदाई और भूषण की वाणी को राष्ट्रीयता से अलग नहीं किया जा सकता, क्योंकि वह संघर्ष राष्ट्रीयता के लिए ही था। अकबर के दरबार में बैठे कवि पृथ्वीराज को जब मालूम हुआ कि राणा प्रताप अकबर के सामने समर्पण करने जा रहे हैं तब उसने राणा को एक पत्र लिखा जिसने राणा प्रताप का इरादा बदल दिया। अकबर दरबार के एक अन्य कवि दुर्साजी राणा प्रताप की प्रशंसा में 'विरूद्ध वहतरी' लिखी जिसमें स्वंतत्रता सेनानी और आत्म बलिदानी देशभक्त के रूप में राणा प्रताप की स्तुति पर कवि ने पाठकों के हृदय में वीरता, देशभक्ति और राष्ट्रीयता के भाव संचारित करने का प्रयास किया है। केष्ठाव ने अपनी 'रत्न बावनी' में राजकुमार रत्नसिंह के बलिदान का जिस ढंग से गौरव किया है वह किसी राष्ट्रनायक की याद दिलाने के लिए पर्याप्त है। भूषण ने शिवाजी और छत्रसाल को भारत की राष्ट्रीयता का प्रतीक बतलाया है।

नानक और कबीर जिस एकता के लिए समाज को प्रेरित कर रहे थे, उनकी फूट और व्यक्ति में आए दुर्गुण को दूर करने का जो आध्यात्मिक और सामाजिक आंदोलन चला रहे थे वह भी सामाजिक और राष्ट्रीयता की भावना को जगाने के लिए ही तो था। राष्ट्रीयता एक आध्यात्मिक और मनोवैज्ञानिक भावना है। किसी प्रदेश विशेष के निवासियों की यह भावना और विश्वास है कि वे एक हैं और अपना विश्वास उज्ज्वल करने के लिए उनका दृढ़ संकल्प है। इसका नाम ही राष्ट्रीयता है जो साहित्य रूपी सरिता से निकलकर मानवता के मैदान को सींचती हुई अनंत में विलीन हो जाती है।

(५३)प्रश्न: क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि राजनीतिक कुत्सित वातावरण के शुद्धीकरण के लिए साहित्यकारों को खुलकर पूरी रजानीति में भाग लेना चाहिए?

उत्तर: हाँ, निशानाथ अवस्थी 'नि:शंक' जी, मुझे तो ऐसा लगता है

कि राजनीतिक कुत्सित वातावरण के शुद्धीकरण के लिए साहित्यकारों को खुलकर पूरी राजनीति में भाग लेना चाहिए, क्योंकि यह समय का तकाजा है कि लोकतंत्र की रक्षा के लिए तंत्र को सुदृढ़ किया जाए और इस उत्तरदायित्व को साहित्यिक सज्जन ही निभा सकते हैं। मुझे लगता है कि वह राष्ट्र कभी अपनी स्वतंत्रता को सुरक्षित नहीं रख सकता जहाँ साहित्यिक सज्जनता के सुगठित व्यक्ति और समाज राजनीतिक परिमार्जन के पक्षपाती न हों। इस उपेक्षा ने ही आज यह स्थिति उत्पन्न कर दी है कि राजनीति अराजकता से ग्रस्त हो गई है। मेरा ख्याल है कि राजनीति से व्यक्तिगत स्वार्थ पूरा कर राजनीति से बाहर रहने का ढोंग करने वाले साहित्यिक सज्जन नहीं हैं। मैं इस तरह के व्यक्ति को कायर, समझौतावादी और अवसरवादी कहता हूँ। ऐसे ही लोगों की वजह से भ्रष्टाचार बढ़े हैं और इस प्रकार की भावनाहीन परिस्थितियों में राजनीतिक संकट भी उपस्थित हुए हैं। राष्ट्र की स्वतंत्रता से प्रेम करने वाले और उसमें भक्ति रखने वाले साहित्यिक सज्जन राजनीति से भयभीत नहीं होते। इस सच्चाई से मुँह नहीं मोड़ा जा सकता कि भौतिक लाभ और निजी स्वार्थ की पूर्ति तो की जा सकती है, मगर राजनीति के नवीनीकरण की ओर ध्यान किसी का भी नहीं है। इस कठिन कार्य को साहित्यिक सज्जनता ही कर सकती है। शायद इसी भावना से प्रेरित होकर कवि रंग ने कहा था–

'तरकस के तीर नहीं बदले, संधान बदलकर क्या होगा?'

इसलिए जो लोग अपने का साहित्यक सज्जन मानते हैं उन्हें मौजूदा दौर की भारतीय राजनीति की अराजकता के मद्देनजर अपनी–अपनी अंतरात्मा पर हाथ रखकर उसकी आवाज सुननी चाहिए और उसी के अनुसार राजनीति की दशा को सुधारने का प्रयास करना चाहिए।

बापू कहते थे, 'मेरी अंतरात्मा की आवाज मुझसे कहती है, तुम्हें सारी दुनिया के विरोध में खड़ा होना है, भले ही तुम अकेले पड़ जाओ। दुनिया तुम्हे आग्नेय दृष्टि से देखे, मगर तुम्हें उनसे आँख मिलाकर खड़े रहना है। भय मत करो। अपनी अंतरात्मा की आवाज पर भरोसा करो।' आखिर तभी तो गाँधी ने एक बड़ा काम किया, उपनिवेशवाद का सामना करने के लिए साधारण लोगों के दिलों से भय मिटाया, भारतीय अंतरात्मा की चुप्पी तोड़ी। फिर हम साहित्यकार, जो अपने को साहित्यिक सज्जन समझते है, गाँधी के कथन को आत्मसात कर क्यों नहीं राजनीति की अराजकता को दूर करने की कोशिश कर सकते हैं? यह लोकतंत्र के हक में होगा।

(५४)प्रश्नः क्या आप साहित्य को कला का उत्कृष्ट रूप मानते हैं?

उत्तरः हाँ, 'निःशंक' जी, मैं साहित्य को कला का उत्कृष्ट रूप मानता हूँ, क्योंकि साहित्य उपदेश नहीं है, परंतु प्रेरक तो है और प्रेरक सदा सही मार्ग की ओर प्रेरित करता है। सत्य का प्रेरक तत्त्व सही मार्ग को पहचानता है। इसलिए साहित्य के द्वारा सही मार्ग की पहचान हो सकती है और सही मार्ग की पहचान ही राष्ट्र को आदर्श बनाती है।

मेरा मानना है कि मनुष्य सदा से खराब जमाने को अच्छा बनाने की कोशिश करता रहा है। यह कोशिश अथवा प्रयत्न ही साधना बनकर कला के रूप में अभिव्यक्त हुए। साहित्य ललित कला का क्षेत्र है। मैं कला को केवल काव्य तक सीमित नहीं रखना चाहता। इसलिए मैं साहित्य को कला का उत्कृष्ट रूप मानता हूँ। वैसे भी साहित्य के अध्येता डॉ. नरेन्द्र शर्मा 'कुसुम' के शब्दों में कहूँ तो कला और कलाकार के बीच एक अविछिन्न संबंध होता है। कलाकार की समस्त सृजनशीलता का निकष कला की प्रभविष्णुता के रूप में परिलक्षित होता है। एक अर्थ में कलाकार के चेतन, अवचेतन एवं अचेतन मन की भाव भूमियों को अपने में समेटती हुई कला को रचनात्मक सौन्दर्य के माध्यम से न केवल वैयक्तिक आनन्द का स्रोत बनती है, अपितु वह सार्वभौमिकता एवं सार्वजनिकता का स्पर्श करती हुई अपनी सार्थकता सिद्ध करती है। कला, कलाकार की जीवन यात्रा की प्रतिध्वनि बनकर जब कलाकार को अभिव्यक्त करती है तो वह अधिक महत्ता प्राप्त करती है।

(५५)प्रश्नः सोशल मीडिया में साहित्यकारों की एक लंबी पौध उगी है। क्या आप इसे साहित्य संसार का प्लेटफॉर्म मानते हैं?

उत्तरः आदरणीय डॉ. रामनिवास जी, आपने ठीक ही कहा कि सोशल मीडिया में साहित्यकारों की एक लंबी पौध उगी है। विज्ञान के इस माध्यम से एक ओर जहाँ मनुष्यों के बीच की हजारों मीलों की दूरी को सेकेंडों तक सीमित करके इसने मानवीय मेल-जोल के नए आयाम खोले हैं और लेखकों की एक लंबी पौध उगी है, वहीं दूसरी ओर दुनिया भर के ज्ञान के सूचनात्मक आयाम को सिर्फ एक क्लिक पर मानव सेवा में हाजिर कर दिया है। इसी प्रकार कम्प्यूटर और इंटरनेट सेवा के आने के बाद जहाँ नई संभावनाओं का जन्म हुआ है, वहीं संस्कृति उद्योग से जुड़ने की वजह से इसने जिस आभासी दुनिया का निर्माण किया है उसके बहुविध खतरे भी सामने आए हैं।

सोशल मीडिया एक ऐसी विशालकाय यंत्रचलित चक्कीनुमा है, जो उत्कृष्ट और निकृष्ट सब कुछ एक साथ उगल रही है। सबको खुली छूट है, सब सुलभ है। निश्चित रूप से युवा लोगों को एक बहुत बड़ा मंच मिला है ओर संपादकों की मनमानी से मुक्ति भी मिली है तथा कभी-कभी बहुत अच्छी रचनाएँ भी दिख जाती हैं, पर इससे कालजयी साहित्य की रचना तो नहीं हो सकती है। अँधाधुंध मिलने वाली लाइकनुमा प्रशस्तियाँ लेखक को भरमाने का भी काम करती हैं, जो बड़े-बड़ों को डिगा देती हैं।

इस दृष्टि से देखा जाए तो सोशल मीडिया को साहित्य जगत का एक प्लेटफॉर्म तो मैं मानता हूँ, मगर उसके बहुविध खतरे भी सामने हैं। इस तरह पूँजीवाद की मरणशील संस्कृति ने सभ्यता के सम्मुख एक नया संकट भी उपस्थित किया है। लूट के बर्बर व्यावसायिक सौदों ने एक बड़ी आबादी से न केवल उसकी जीविका छीनी है, बल्कि उसे मानवीय सारतत्व से वंचित किया है। दूसरी ओर उसे आत्मिक संपदा से रिक्त, आत्ममोहग्रस्त, आत्मकेंद्रित और समाज विमुख बनाया है। ऐसे में इंटरनेट का इस्तेमाल करने वाली आबादी का एक बड़ा हिस्सा इस आभासी दुनिया के मोहपाश में एकाकीपन और अलगाव की वजह से बँधता जा रहा है जिसके दुष्परिणामस्वरूप आज कई लोगों में यह एक मानसिक बीमारी का रूप ले चुका है। इंटरनेट पर यह निर्भरता लत या इंटरनेट एडिक्शन डिसऑर्डर के रूप में सामने आ रही है। यह आज विश्व स्तर पर सोचने, विचारने और बहस का मुद्दा बन चुका है।

(५६)प्रश्नः बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के अध्यक्ष के दायित्व से मुक्त होने के बाद लेखन के क्षेत्र में आप कौन सा काम कर रहे हैं?

उत्तरः डॉ. रामनिवास जी, आप तो इस बात से अवगत हैं कि बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के जब से अध्यक्ष का दायित्व हमने संभाला, बोर्ड की गाड़ी को पटरी पर लाने के लिए मुझे अथक परिश्रम करना पड़ा। आप तो स्वयं हिसार के एक महाविद्यालय में स्नातकोत्तर हिंदी विभाग के विभागाध्यक्ष रह चुके हैं इस लिहाज से अध्यापन के अतिरिक्त परीक्षाओं का आयोजन और उत्तर पुस्तिकाओं के मूल्याँकन से लेकर परीक्षाफल देने तक प्राध्यापकों तथा प्रशासकों को कितना व्यस्त रहना पड़ता है। बोर्ड के अध्यक्ष के नाते मुझे भी तीन साल तक काफी व्यस्त रहना पड़ा और फिर बोर्ड की ओर से प्रकाशित 'वाग्वंदना' पत्रिका के संपादक की हैसियत से समय पर उसे निकालना मेरा दायित्व था। इन सभी कार्यो की व्यस्तता के चलते हमारा लेखन कार्य प्रायः ठप्प हो गया था। सच कहिए तो बोर्ड छोड़ने का यह भी

एक प्रमुख कारण रहा है।

15 सितम्बर, 2011 से बोर्ड के अध्यक्ष पद से मुक्त होने के बाद से साहित्य-सृजन में मैं अबाध गति से लगा हूँ जिसका परिणाम अब आने लगा है। अभी-अभी विगत 14 मई, 2017 को 'कवि और कविता' तथा 'बुजुर्गों की जिंदगी' नामक हमारी दो पुस्तकों का लोकार्पण हुआ। इसी प्रकार पहली बार साहित्य की साक्षात्कार विधा पर हमारी पाँच पुस्तकों की तैयार पांडुलिपियों का शब्द-संयोजन चल रहा है। साहित्य, समाज, राजनीति, संस्कृति, विचार, नैतिकता और धार्मिक एवं अध्यात्मिक प्रश्नों के अतिरिक्त न्यायिक एवं आर्थिक विषयों से सन्दर्भित प्रश्नोंत्तर की संगृहीत पुस्तकों में 'हिंदी के जीवंत हस्ताक्षर' का संपादन जहाँ पटना विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर हिंदी विभागाध्यक्ष के पद पर रहे विद्वान प्रो.(डॉ.) बलराम तिवारी ने किया है, वहीं 'इंसानियत की धुँआती आँखें', 'राष्ट्रीय राजनीति', 'वैश्विक कूटनीति' तथा 'उम्मीद जताते न्यायिक एवं आर्थिक फैसले' का संपादन सहित अन्य कार्य स्वयं मैंने ही किया है। इसके अतिरिक्त मौजूदा दौर की भारतीय राजनीति पर 'आम आदमी की आवाज' तथा 'हमें अलविदा ना कहें' संस्मरणात्मक निबंध संग्रह की पांडुलिपियों का भी शब्द-संयोजन चल रहा है। आपकी प्रेरणा और प्रोत्साहन पाकर ही इन पुस्तकों के सृजन का काम मैंने किया है। आभारी हूँ आपका।

(५७)प्रश्न: बड़े भाई सिद्धेश्वर जी, क्या कारण है कि साहित्य जगत में महिला व्यंग्यकारों की संख्या बहुत कम है?

उत्तर: भाई बाँके बिहारी जी, आप तो खुद एक व्यंग्य रचनाकार हैं, इसलिए संभवत: मेरे इस विचार से आप सहमत होंगे कि आमतौर पर महिलाएँ स्वभाव से कोमल, भावुक और संवेदनशील होती हैं जबकि व्यंग्य का मूल तीव्र आक्रोश होता है। यह विरूपताओं और विसंगतियों की गहरी समझ की माँग करती है और उन पर चोट करने वाले शिल्प की भी, जो संवेदना की सीधी अभिव्यक्ति से कोसों दूर है। व्यंग्य में दिखाई पड़ने वाली सहजता और मासूमियत व्यंजना की शक्ति से नि:सृत हैं, जबकि विगत दशकों की स्त्रियाँ अधिकांशत: अमिधा में संवदेनाओं को अभिव्यक्ति देती रही हैं।

बाँके जी, वैसे भी देखा जाए, तो समाज में महिलाओं को इतनी मुखरता की छूट कहाँ रही है? जहाँ महिलाओं के लिए सिर उठाकर चलना या जोर से हँसना-बोलना तक मना हो, वहाँ हँसाने या प्रहार करने वाला

शिल्प कैसे चल सकता था? इसलिए शायद स्त्रियों को व्यंग्य विधा से परहेज रहा होगा, मगर अब तो समय के साथ काफी बदलाव आया है और इन दिनों एक दर्जन से अधिक युवा स्त्री व्यंग्यकार अपनी जगह बनाने की कोशिश कर रही है।

(५८)प्रश्न: क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि लब्ध प्रतिष्ठित व्यंग्यकार श्रीलाल शुक्ल 'राग दरबारी' जैसा कालजयी उपन्यास लिखकर हिंदी साहित्य में कुछ वैसा ही युगांतर उपस्थित किया, जैसा फणीश्वरनाथ रेणु ने 'मैला आँचल' से किया था?

उत्तर: बाँके जी, आपने ठीक कहा, मुझे भी ऐसा लगता है कि लब्ध प्रतिष्ठित व्यंग्यकार श्रीलाल शुक्ल 'राग दरबारी' जैसा कालजयी उपन्यास लिखकर हिंदी साहित्य में कुछ वैसा ही युगांतर उपस्थित किया, जैसा फणीश्वर नाथ रेणु ने 'मैला आँचल' से किया था। वस्तुत: श्रीलाल शुक्ल ने व्यंग्य को ऐसी औपन्यासिक व्यापकता प्रदान की, जो प्रतिमान बन गया। भारतीय जनजीवन के अंतर्विरोधों और दोहरेपन पर ऐसा कटाक्ष अन्यत्र दुर्लभ है। भाई बाँके जी, मैं आपको बताऊँ कि श्रीलाल शुक्ल की विशेषता सिर्फ राग दरबारी में ही नहीं, बल्कि उनके विपुल सृजन में भी पूरी त्वरा के साथ दिखाई पड़ती है। अमरकथा शिल्पी फणीश्वरनाथ रेणु ने भी अपनी कलम और क्रांति दोनों के माध्यम से प्रेरणा पाकर सामाजिक यथार्थ से सीधे साक्षात्कार किया और बड़ी ईमानदारी से उसका चित्रण कर आदर्श समाज के निर्माण की संकल्पना की। रेणु भी श्रीलाल शुक्ल की तरह समाज और समाज के विरोधाभासों एवं अंतर्द्वंद्वों की खुलकर चर्चा करते थे। 1954 में प्रकाशित रेणु की रचना 'मैला आँचल' में आँचलिकता की झलक के साथ-साथ उस अंचल के तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक सभी पक्षों का सफल चित्रण दिखता है। साथ ही इस उपन्यास में अंचल विशेष की प्राचीन मान्यताओं की सहज धारा के बीच आधुनिक विचार की ज्वारभाटा का भी चित्रण हुआ है जो आँचलिकता की भी एक शर्त है। रेणु के अनुभव की दुनिया बहुवर्णी और बहुआयामी के साथ ही धूल, शूल और फूल से भरी हुई है जिसके प्रारंभ में ही सुमित्रानंदन पंत की 'भारत माता ग्रामवासिनी' की कविता की दो पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं-

"खेतों में फैला है श्यामल
लू भरा मैला सा आँचल।"

उपर्युक्त पंक्तियाँ और विचार यह साबित करता है कि व्यंग्यकार श्रीलाल शुक्ल ने 'राग दरबारी' उपन्यास लिखकर हिंदी साहित्य में कुछ वैसा ही युगांतर उपस्थित किया, जैसा फणीश्वर नाथ रेणु ने 'मैला आँचल' से किया था।

(५९)प्रश्नः क्या आप ऐसा महसूस करते हैं कि किसी लेखक या रचनाकार में जिस स्तर का नैतिक विवेक और मनुष्यता को बचाने की जैसी ललक दिखनी चाहिए, सुप्रसिद्ध लेखिका कृष्णा सोबती उसकी जीती-जागती मिसाल है? आखिर कैसे? साहित्य में उनके उल्लेखनीय योगदान के मद्देनजर ५३वाँ ज्ञानपीठ पुरस्कार से जो उन्हें नवाजा गया उस पर आपकी क्या प्रतिक्रिया है?

उत्तरः भाई उमेश्वर जी, मैं भी ऐसा महसूस करता हूँ कि लेखक या रचनाकार में जिस स्तर का नैतिक विवेक और मनुष्यता को बचाने की जैसी ललक दिखनी चाहिए, सुप्रसिद्ध लेखिका कृष्णा सोबती उसकी जीती-जागती मिसाल हैं, क्योंकि वह हर दौर में अपने समय, समाज और सामाजिक ताने-बाने को बचाने के प्रति सचेत बुद्धिजीवी के रूप में तो सामने आती ही रही हैं, सांप्रदायिकता के मुद्दे और समाज को तोड़ने वाले किसी भी अन्य मुद्दे या मनुष्यता को बचाने जैसे विचार भी मुखर हैं।

आपको मैं बताऊँ कि जिस दौर में स्त्री अस्तिमा या उसकी निजता और उसके आंतरिक सौंदर्य संघर्ष को लेकर खुलकर सोचना भी संभव न था, उस दौर में भी कृष्णा सोबती जी लगातार अलग मुहावरे में अपनी बात कहती दिखाई देती हैं। उम्र के 92वें पड़ाव पर भी समाज में नष्ट हो रही या समाज को नष्ट कर रही हर जरूरी चीज पर वह जिस स्पष्ट और मुखर दृष्टिकोण के साथ हस्तक्षेप करती हैं, वह अन्यत्र दुर्लभ है। अपनी पूरी रचनाशीलता और व्यक्तित्व में भी वह जिस दबंग स्त्री अस्मिता की उपस्थिति के साथ आती है, वह उन्हें किसी एक खाँचे में फिट किए जाने की इजाजत नहीं देता। मुझे तो ऐसा लगता है कि हिंदी कथा साहित्य में कम-से-कम स्त्री चेतना का कोई विमर्श कृष्णा सोबती की चर्चा के बिना न कभी पूरा हुआ है, न कभी आगे पूरा होगा।

कृष्णा सोबती जी को साहित्य में उनके उल्लेखनीय योगदान के मद्देनजर 53वाँ ज्ञानपीठ पुरस्कार से जो नवाजा गया, यह सम्मान तो उन्हें बहुत पहले मिल जाना चाहिए था। वैसे सच कहा जाए तो जिन कृष्णा सोबती को 92 वर्ष की उम्र में भी उनकी विचार और रचनात्मक सक्रियता देख

वयोवृद्ध कहने में भी मुझे संकोच हो रहा है, उन्हीं कृष्णा सोबती को साहित्य के क्षेत्र का सर्वोच्च सम्मान 'ज्ञानपीठ पुरस्कार' से नवाजे जाने पर मुझे ऐसा लगा कि यह केवल उनका नहीं, समूचे हिंदी साहित्य का सम्मान है। देर से दिया गया यह सम्मान किसी लेखक के संपूर्ण योगदान पर दिया जाने वाला अनूठा सम्मान है।

भाई उमेश्वर जी, जहाँ तक मैं समझता हूँ कि कृष्णा सोबती अपनी विशिष्ट लेखन शैली के लिए जितना जानी जाती हैं, उससे कही ज्यादा अपने नैतिक विवेक के लिए भी जानी जाती हैं, जिसका परिचय उनके शुरुआती कृतियों यथा 'मित्रों मरजानी', 'दिलो दानिश', 'ऐ लड़की', 'जिंदगीनामा', 'समय-सरगम' या 'सूरजमुखी अँधेरे के' से लेकर बाद की उनकी कृतियों से ही नहीं, समय-समय पर सामाजिक सरोकारों के रूप में आए उनके हस्तक्षेप के रूप में भी देखा जा सकता है।

(६०) प्रश्नः कविता विधा में आपकी भी कलम चली है। कवि मुक्तिबोध की जन्मशती मनाई जा रही है। सौ साल पूर्व जन्मे कवि मुक्तिबोध की कीर्ति क्या समय बीतने के साथ और भी निखरती दिख रही है? यदि हाँ, तो क्यों?

उत्तरः हाँ, निःशंक जी, साहित्य की कविता विधा खासतौर पर हाइकु एवं सेन्र्यू काव्य में मेरी खास दिलचस्पी रही है जिसके परिणामस्वरूप अबतक हाइकु एवं सेन्र्यू में आधा दर्जन काव्य संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। हमारे पचहत्तर साल पूरे होने के उपलक्ष्य में विगत 14 मई, 2017 को पटना के ए.जी. कॉलोनी स्थित 'संस्कृति' निवास की संस्कृति वाटिका के प्रांगण में राष्ट्रीय विचार मंच, बिहार की ओर से आयोजित अमृत महोत्सव के शुभ अवसर पर उपस्थित हिंदी साहित्य के मूर्धन्य रचनाकारों ने हमारे द्वारा विरचित 'कवि और कविता' एवं 'बुजुर्गो की जिंदगी' नाम्नी दो हाइकु काव्य संग्रह का लोकार्पण हुआ।

जहाँ तक मुक्तिबोध की कीर्ति के निखरने का सवाल है आज से सौ साल पहले जन्मे कवि मुक्तिबोध की कीर्ति समय बीतने के साथ निश्चित रूप से निखरती जा रही है। मुझे तो ऐसा लगता है कि आज मुक्तिबोध की छवि लब्ध-प्रतिष्ठ कवि इलियट, नेरूदा, मायकोव्स्की और नाजिम हिकमत जैसी आधुनिक कविता की अंतरराष्ट्रीय हस्तियों जैसे दीप्तिमान लगती हैं।

मुक्तिबोध की कविता में आजाद भारत के राजनीतिक और

सांस्कृतिक संकट की सबसे गहरी पहचान मिलती है। मुक्तिबोध की सबसे प्रसिद्ध कविता 15-20 पन्नों में फैली है। इस नाटकीय लंबी कविता का एक दृश्य हिंदी कविता का सबसे चर्चित दृश्य है। इस दृश्य में काव्य नायक को रात के अँधेरे में दूर से करीब आता हुआ पिशाचों का एक जुलूस दिखाई पड़ता है। इस जुलूस में सैनिकों के पथराए और झुलसे हुए चेहरे भी हैं। इनके चेहरों का आधा भाग सिंदूरी गेरूआ और आधा कोलतारी भैरव रंग का है। लेकिन खास बात यह है कि इस जुलूस में शहर के सारे परिचित चेहरे मौजूद हैं जिसमें मंत्री, उद्योगपति, पत्रकार के साथ कवि, लेखक और आलोचक भी शामिल हैं। शहर का कुख्यात हत्यारा डोमाजी उस्ताद भी इसी भीड़ में शरीक है। कवि कहता है कि तमाम सफेदपोश चेहरे, जो दिन के वक्त अपने दफ्तरों में बैठे साजिशें रचते होते हैं, वही रात के अँधेरे में अपनी असली शक्ल में इस जुलूस में शामिल हो जाते हैं। इस लंबी कविता से ऐसा प्रतीत होता है कि कवि मुक्तिबोध लोकतंत्र पर मंडराते खतरों को महसूस कर रहे थे। आज वही अपवित्र गठबंधन लोकतंत्र को दमनतंत्र में बदल रहा है।

(६१)प्रश्नः आपकी नजर में हिंदी की शब्द-संपदा को बढ़ाने में सबसे ज्यादा योगदान किस पत्रकार या साहित्यकार ने दिया?

उत्तरः मेरी नजर में हिंदी की शब्द संपदा को बढ़ाने में सबसे ज्यादा योगदान पत्रकार-संपादक बाबूराव विष्णु पराड़कर ने दिया। आपको याद होगा या आपने पढ़ा होगा कि भारतीय संविधान की अँग्रेजी में रचना के बाद 'प्रेसिडेंट ऑफ इंडिया' के लिए हिंदी शब्द की जब खोज शुरू हुई तो पूरे देश, सरकार और संविधान विशेषज्ञों की निगाह 'बनारस के बूढ़े संपादक' बाबूराव विष्णु पराड़कर पर टिक गई। अँग्रेजी शब्द 'प्रेसिडेंट ऑफ इंडिया' के लिए हिंदी में 'राष्ट्रपति' शब्द देकर पराड़कर ने इस अवरोध की गांठ को खोला। इसके पहले तक यह शब्द काँग्रेस के राष्ट्रीय अध्यक्ष के लिए प्रयोग होता था। पराड़कर ने इस शब्द को एक नया संदर्भ और एक नई ऊँचाई दे दी।

सच कहा जाए तो बाबूराव विष्णु पराड़कर मिशनरी पत्रकारिता के शीर्ष मानदंड थे। पराड़कर जी ऐसे पहले पत्रकार-संपादक थे, जो अखिल भारतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन के 27वं सम्मेलन के सभापति चुने गए। तब पुरुषोत्तम दास टंडन ने कहा था-यह बात हमारे लिए कितने गर्व की बात है कि आज एक ऐसे पत्रकार को सभापति बना रहे हैं, जिनकी मातृभाषा मराठी है। पराड़कर जी हिंदी के बहुत बड़े मर्मज्ञ थे। अनन्य शब्द साधक विष्णु पराड़कर जी का भाषा के शब्दों को लेकर जो योगदान है वह विशेष

रूप से उल्लेखनीय है, क्योंकि उन्होंने न केवल बांग्ला और मराठी शब्दों को हिंदी में चलाया, बल्कि अँग्रेजी के भी बहुत से शब्दों को लेकर हिंदी के शब्द भंडार को बढ़ाया। शोधकर्ताओं के मुताबिक, विष्णु पराड़कर ने लगभग 200 शब्दों की विपुल संपदा हिंदी को दान की। उन्होंने 'मेसर्स' के लिए 'सर्वश्री', 'मिस या मिसेज' दोनों के लिए एक ही स्त्री बोधक शब्द 'सुश्री', 'इन्फ्लेक्शन' के लिए 'मुद्रा स्फीति', 'कम्युनिज्म' के लिए 'साम्यवाद' जैसे शब्द दिए, जो आज हिंदी के मूल आधार बन चुके हैं। उन्होंने वायुमंडल, अंतरराष्ट्रीय, कार्रवाई, लोकतंत्र, वाह्ययंत्र, चालू आदि शब्द हिंदी के भंडार को दिए, वे आज इतने प्रचलित हैं कि यह सोचना भी मुश्किल है कि कभी हिंदी को इन शब्दों के बिना भी अपना काम चलाना पड़ता होगा।

इसी प्रकार पराड़कर जी नगरी लिपि में सुधार के प्रति भी आग्रही थे। स्वरों की मात्राओं, संयुक्ताक्षरों, अर्द्धाक्षरों तथा ट, ठ आदि टेढ़े अक्षरों के अर्द्धाक्षरों, स्पर्श वर्णाक्षरों के संबंध में भाषा-योग संबंधी मानक स्थापित किए। साथ ही उन्होंने अखबारों और पत्रिकाओं की भाषा को मर्यादित भी किया। वह रोमन लिपि की तुलना में नागरी की श्रेष्ठता और उपयोगिता के पक्षधर थे।

(६२)प्रश्नः अंकों से अक्षर तक के अपने सफर के बारे में आप मुझे कुछ बतलाए?

उत्तर: अंकों से अक्षर तक की यात्रा के दौरान मैंने महसूस किया है कि यदि व्यक्ति का संकल्प और इच्छाशक्ति मजबूत हो, तो उसे किसी भी कार्य में सफलता मिल सकती है। चाहे मैं अंकों की दुनिया में रहा हूँ या फिर अक्षरों से खेल रहा हूँ हमारे विचारों में सदैव सादा जीवन उच्च विचार की प्रेरणा ही है जिसके परिणामस्वरूप मुझे मानसिक शांति रही है। इसी की वजह से मुझमें साहस, शौर्य, धैर्य, सहनशीलता, उत्साह, संतोष, सद्भाव, आत्मविश्वास आदि सही प्रवृत्तियाँ सदैव विद्यमान रही हैं।

(६३)प्रश्नः आप बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के अध्यक्ष के अतिरिक्त हिंदी के प्रतिष्ठित लेखक एवं सशक्त पत्रकार हैं। एक विद्यार्थी के रूप में श्रम एवं समाज कल्याण विषय में आपने स्नातकोत्तर किया। बाद में अंकों की दुनिया में आपने पदार्पण किया। आपकी कृतियों में सामाजिक आयाम आया। फिर अक्षरों से आप खेलने लगे। क्या अंकों का अक्षरों के साथ कोई संबंध है?

उत्तर: प्रत्यक्षत: वैसे अंकों का अक्षरों से आपसी संबंध नहीं है, किंतु मैं अंकों में रहते हुए भी अक्षरों से खेलता था। हमारे ऑडिट रिपोर्टस

हों या टिप्पणियाँ उनमें साहित्यिक पूट जरूर होते थे, क्योंकि मुझे अक्षरों से गहरा लगाव रहा है। जीवन के गहरे संघर्षों से अंतर्लीन कर देने वाली नैसर्गिक भाषा भी मैंने अर्जित कर ली है जो मेरी सबसे बड़ी ताकत है। मैं अक्षरों को गढ़ता नहीं उन्हें बनने देता हूँ और हमने अक्षरों और मनुष्यता के बीच गाढ़े आत्मीय रिश्ते स्थापित किए हैं। यही कारण कि हमारी सामाजिक चेतना या चेतना का स्वर हमारे सृजन में बार-बार सुनाई पड़ता है। वे अक्षर ही सृजन की आत्मा हैं जिसमें हमारी संवेदना भी ढलती है और जीवन का आख्यान बनती है। समकालीन समाज और वैश्विक परिदृश्य में जो कुछ घटित हो रहा है उससे मेरी लेखनी अछूती नहीं है। इन मुद्दों पर बेबाकी से मैं अपनी बात कहता रहा हूँ और सहजता से अपनी सृजन यात्रा अनवरत जारी रखना चाहता हूँ।

(६४)प्रश्न: आज से तकरीबन चार वर्ष पूर्व बिहार राष्ट्रभाषा परिषद के निदेशक प्रो. रामबुझावन सिंह ने आपके जीवन पर एक पुस्तक लिखी थी। उस पुस्तक में किन बातों की चर्चा है?

उत्तर: हाँ, प्रो. रामबुझावन बाबू ने मेरे जीवन पर आधारित 'सिद्धेश्वर: व्यक्तित्व और विचार' नाम्नी पुस्तक लिखी है जिसमें खास बात यह है कि मेरे द्वारा रचित प्राय: सभी पुस्तकों की चर्चा करते हुए मेरे विचार तथा हमारे व्यक्तित्व के विविध आयामों को सामने लाने की सफल कोशिश की गई है। यह किताब प्रोफेसर साहब के संस्मरणों से अपनी प्रामाणिकता का बखान करती है। पुस्तक का सबसे पहला आकर्षण उसकी पठनीयता है। पाठक एक बार इसे पढ़ने को प्रवृत्त हो जाए तो बीच में कही विराम नहीं लेना चाहता। पुस्तक के पन्ने पलटने से अबतक की सारी स्मृतियाँ मेरे मानस-पटल पर उतर जाती हैं। इस पुस्तक से देश, समाज व राष्ट्र के प्रति मेरी चिंतनशीलता का पता चलता है और साहित्य के प्रति मेरा समर्पित भाव भी सामने आता है। प्रभाश जोशी की भूमिका और आलोक मेहता की शुभाशंसा से इस पुस्तक की रौनकता बढ़ गई है।

(६५)प्रश्न: आपने अपनी रचनाओं, व्याख्यानों अथवा अभिव्यक्तियों में शब्दों के प्रयोग में बड़ी सावधानी बरती है। आखिर क्यों?

उत्तर: शब्दों का सही व उचित प्रयोग किसी को भी आदरणीय बनाता है। वे आपका वजन बढ़ा देते हैं। अगर पक्षी बातें करते तो शायद वे उड़ नहीं पाते। अनाप-शनाप बोलने से धीरे-धीरे मन में दरार पड़ जाती है और वह दरार नफरत पैदा कर समाज को बाँट देती है। समाज ऐसा खराब

होता है कि इसका खामियाजा सदियों भुगतती है। यदि आज के राजनीतिज्ञ संयत भाषा का प्रयोग करें और शब्दों के प्रयोग में सावधानी बरतें तो आए दिन जो अप्रिय स्थितियाँ पैदा होती हैं, उससे बचा जा सकता है और आने वाली पीढ़ियों के लिए राजनीति में आने का द्वार भी खोलेगा।

(६६)प्रश्न: क्या आप इस बात से सहमत हैं कि आजादी के बाद के वर्षो में देश के मुर्धन्य साहित्यकारों के नाम पर निर्मित स्मारकों को हम सहेज कर नहीं रख पाए?

उत्तर: हाँ, भाई राकेश प्रियदर्शी जी, यह सही है कि आजादी के बाद देश में निर्मित मूर्धन्य साहित्यकारों के स्मारकों को हम सहेज कर नहीं रख पाए। और तो और अनेक साहित्य मनीषियों के घर उजड़ गए, परंतु हम उनकी सुरक्षा तक नहीं कर पाए। जहाँ तक मुझे जानकारी है अँग्रेजी साहित्य के महान नाटककार शेक्सपीयर तथा जर्मनी के महाकवि गेटे के जन्म स्थल पर बने उनके भव्य स्मारक पर्यटकों के लिए दर्शनीय हैं, मगर हिंदी के अमर कथा शिल्पी फणीश्वरनाथ रेणु, हिंदी के उपन्यास सम्राट प्रेमचंद, हिंदी साहित्य के सुप्रसिद्ध आलोचक रामचंद्र शुक्ल तथा भारतीय इतिहास, साहित्य, ज्योतिष एवं विभिन्न धर्मो के गहन अध्येता तथा महानचिंतक हजारी प्रसाद द्विवेदी के घरों पर कोई स्मृति चिह्न शेष नहीं हैं और जिनके स्मारक हैं भी, तो उनकी स्थिति बहुत बुरी है। प. बंगाल के मेदनीपुर स्थित बनर्जी गली में जन्में उ.प्र. के आजमगढ़ निवासी महाकवि सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' को बनर्जी गली के लोग भी नहीं जानते कि यहाँ हिंदी का एक महान साहित्यकार पैदा हुआ था। इसे विडंबना नहीं तो और क्या कहा जाएगा। सरकार तथा साहित्यिक संगठनों से यह अपेक्षा की जाती है कि साहित्य की इस अनमोल धरोहर-स्मारकों के संरक्षण के लिए अग्रसर हों।

(६७)प्रश्न: पत्र-लेखन परंपरा आज क्यों लुप्त होती जा रही है?

उत्तर: भाई उमेश जी, सूचना क्रांति, या यूँ कहा जाए कि मोबाइल क्रांति का यह असर है कि लोगों की खत लिखने की आदत खत्म-सी हो गई है। लोग मोबाइल पर ही अपने प्रियजनों की पल-पल की खैरियत ले लेते हैं या अपनी खैरियत से अवगत करा देते हैं। हालांकि यह भी सच है कि मोबाइल में खतवाली वह कलात्मकता, वह नजाकत व नफासत, वह साहित्यिक स्वाद भला कहाँ। एक जमाना था, किसी के घर जब पत्र आते थे, तो पड़ोसियों के घर में भी उसकी चर्चा हो जाती थी, अमुक व्यक्ति का बेटा कितना ख्याल रखता है घरवालों का, हर हफ्ते चिट्ठी भेजता है।'

नई-नवेली दुल्हन अपने पति को पत्र लिखकर कोसती थीं, आप तो पत्र ही नहीं लिखते, देखिए फलां का पुत्र अपनी पत्नी का कितना ख्याल रखता है, हर हफ्ते खत लिखकर खैरियत लेता रहता है।'

आज वह परंपरा बस अतीत की याद भर बन कर रह गई है। जब उस अतीत की याद आती है, तो दिल में एक अजीब बेचैनी-सी होती है। इसलिए पत्र-लेखन की परंपरा को पुनर्जीवित किए जाने की जरूरत है।

(६८)प्रश्न: आखिर सवा अरब की आबादी और लगभग आठ सौ भाषाओंवाले देश भारत को क्यों नहीं साहित्य का नोबल पुरस्कार मिल पा रहा है? समृद्ध साहित्यिक परंपराओं के बावजूद क्यों छूट जाते हैं भारतीय लेखक इस दौड़ में?

उत्तर: भाई डॉ. शाहिद जमील जी, मुझे भी आश्चर्य होता है कि सवा अरब की आबादी और लगभग आठ सौ भाषाओंवाले देश भारत के रवीन्द्रनाथ टैगोर को साहित्य का पहला और इकलौता नोबल पुरस्कार मिले सौ साल से भी ज्यादा अरसा बीत गया, समृद्ध साहित्यिक परंपराओं के बावजूद किसी भी दूसरे भारतीय लेखक को यह नोबल पुरस्कार नहीं मिलना मुझे भी अखरता है। क्या भारत में ऐसा कुछ नहीं लिखा जा रहा है जो दुनिया को अपनी ओर खींच पाए? या फिर भारत में जो कुछ लिखा जा रहा है वह दुनिया तक नहीं पहुँच पा रहा है?

इस साल यानी 2017 में साहित्य का नोबल पुरस्कार जापानी मूल के अँग्रेज लेखक काजियों इशीगुरो को मिला है और अबतक सबसे ज्यादा साहित्य का नोबल पुरस्कार जीतने वाले देशो की सूची में 15 पुरस्कारों के साथ फ्रांस सबसे ऊपर नजर आता है। इसके बाद 10-10 साहित्य का नोबल पुरस्कारों के साथ ब्रिटेन और अमेरिका दूसरे पायदान पर है। इसी प्रकार जर्मनी और स्वीडन के लेखकों को आठ-आठ बार और इटली एवं स्पेन के लेखकों को छह-छह बार साहित्य के इस सबसे प्रतिष्ठित पुरस्कार के लिए चयन किया गया है। पोलिश भाषा के चार लेखकों को साहित्य का यह नोबल पुरस्कार मिल चुका है जबकि इस भाषा को बोलने वालों की तादाद मात्र साढ़े पाँच करोड़ के आसपास है।

दरअसल, चर्चा में वही साहित्य आता है जिसे पाठक पसंद करते हैं और फिर उसे दुनिया तक पहुँचाने की जरूरत महसूस होती है। वहीं, भारत में हिंदी बोलने वालों की तादाद 55 करोड़ से ज्यादा है। दस सबसे ज्यादा बोली जाने वाली भारतीय भाषाओं में उड़िया दसवें पायदान पर आती है

जिसे तीन करोड़ से ज्यादा लोग बोलते हैं। यह भाषायी विविधता सांस्कृतिक विविधता की कोख से जन्मी है। इस लिहाज से देखा जाए तो साहित्य सृजन के लिए भारत में भरपूर उर्वरक जमीन नजर आती है, लेकिन उसमें पैदा होने वाले साहित्य की खुशबू दुनिया तक नहीं पहुँच रही है।

एक भाषा के लोगों तक दूसरी भाषा के साहित्य को पहुँचाने के लिए अनुवाद की अकेली कड़ी है जिसके सहारे आप दुनिया तक भी पहुँच सकते हैं। मुझे लगता है कि फिलहाल भारत में यह कड़ी उतनी मजबूत नहीं दिखती, जितनी होनी चाहिए। डॉ. शाहिद साहब, आपको मैं बता दूँ कि रवीन्द्रनाथ टैगोर की जिस कृति 'गीतांजलि' ने उन्हें साहित्य का नोबल पुरस्कार दिलाया, वह भी दुनिया तक अनुवाद के जरिए ही पहुँची थी। दुनिया को अपनी ओर खींचने वाली अनुवाद की इसी डोर को और मजबूत करने की आवश्यकता है।

◆◆◆

अध्यायः तीन
शैक्षिक प्रश्नोत्तर

(१)प्रश्नः पश्चिम की आधुनिक.अँग्रेजी शिक्षा प्रणाली ने स्वतंत्रता से पहले और स्वतंत्रता के बाद कौन-कौन सी समस्याएँ पैदा की हैं?

उत्तरः कुमार शैलेन्द्र जी, पश्चिम की आधुनिक अँग्रेजी शिक्षा प्रणाली ने स्वतंत्रता से पहले और स्वतंत्रता के बाद, सबसे विनाशकारी समस्या यह पैदा की कि उसने नवशिक्षितों के मन में, अपनी मिट्टी और अपने लोगों के प्रति दुराव उत्पन्न कर दिया। वह बड़ी ही बेशर्मी से उन्हीं लोगों से घृणा करने लगा, जो दरअसल, उसके अपने थे। नयी शिक्षा और नए ज्ञान ने उसे विनम्र, समझदार, सामाजिक, संवेदनशील, मानवीय और देश-प्रेमी बनाने की बजाय आमतौर पर उदण्ड, स्वार्थी, असामाजिक, संवेदनहीन, अमानवीय और देशद्रोही बनाने का काम किया। यह एक सच्चाई है कि इस संकट को आज हम स्वयं अपने घरों में पाल रहे हैं, अपने स्कूल, कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में पोषण कर बड़ा कर रहे हैं। हमारे गाँव के बच्चे पढ़-लिखकर जब लायक बन जाते हैं तो अपनी लियाकत का उपयोग गाँव में नहीं कर शहर में करते हैं और जो पहले से शहर में हैं, वह पढ़-लिखकर विदेश निकल भागने की जुगत भिड़ाते रहते हैं। हमारा बच्चा न गाँधी-राजेन्द्र-अम्बेडकर बनना चाहता है और न भगत सिंह, चंद्रशेखर आजाद।

(२)प्रश्नः उच्च शिक्षण संस्थाओं की गुणवत्ता श्रेष्ठ शिक्षा नियुक्ति, उनका पठन-पाठन, शोधकार्य व शिक्षक-छात्र के उचित अनुपात पर निर्भर करती है, मगर मानव संसाधन मंत्रालय से संबद्ध संसदीय समिति ने उच्च शिक्षा से जुड़ी एक रिपोर्ट में शोध और उच्च शिक्षा की स्थिति पर गंभीर चिंता व्यक्त की है। आखिर क्यों?

उत्तरः मानव संसदीय मंत्रालय की संसदीय समिति द्वारा उच्च शिक्षा की स्थिति पर की गई चिंता इसलिए है कि उच्च शिक्षा की कुछ कुछेक संस्थाओं को छोड़कर अधिकांश संस्थाएँ छात्रों के प्रवेश, परीक्षा और डिग्री बाँटने तक ही सीमित होकर रह गई है। देश में आज 700 विश्वविद्यालय और इनसे जुड़े तकरीबन 36 हजार महाविद्यालय कार्यरत हैं। इनमें से लगभग 3 करोड़ से भी अधिक छात्र-छात्राओं का नामांकन है, मगर आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि देश के आई.आई.टी., आई.आई.एम, एन.आई.आई.टी, आई.आई.एस.सी जैसे प्रतिष्ठित संस्थान औसतन 35 फीसद

फैकल्टी की कमी से जूझ रहे हैं। इन सभी संस्थाओं में 36 फीसद शिक्षकों के पद रिक्त हैं। इससे भी बदतर हालत है राज्य विश्वविद्यालयों की। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के मानकों के अनुसार स्नातकोत्तर स्तर पर 12 छात्रों पर एक शिक्षक तथा स्नातक स्तर पर 15 छात्रों पर एक शिक्षक निर्धारित है, मगर आँकड़े बताते हैं कि वर्तमान में यह अनुपात 23 छात्रें पर एक शिक्षक है। आखिर तभी तो दुनिया के शीर्ष 200 विश्वविद्यालयों की सूची में भारत का कहीं नाम नहीं है। आज दुनिया के विकसित देश जहाँ उच्च शिक्षा पर अपने कुल बजट का नौ से दस प्रतिशत तक खर्च कर रहे हैं, वहीं भारत में एक प्रतिशत से भी कम उच्च शिक्षा पर खर्च किया जा रहा है।

पिछले दो दशकों में देश में शिक्षा का जैसा व्यवसायीकरण हुआ है उसने तमाम उद्योगपतियों को रातों-रात शिक्षाविदों में रूपांतरित कर दिया। फलतः उच्च शिक्षा का काफी बड़ा हिस्सा पूँजीगत उद्योग में बदलता चला गया और मुनाफा इस कारोबार का हिस्सा बनकर उभरा। कुछेक उच्च संस्थानों को छोड़ दें, तो बाकी संस्थानों की छवि लगातार धूमिल ही हो रही है। वहाँ पढ़ाई-लिखाई की बात तो दूर ये संस्थान राजनीति के बहुत बड़े अड्डे बन गए हैं।

(३)प्रश्नः क्या आपको ऐसा लगता है कि बिहार विद्यालय परीक्षा समिति की इंटरमेडियट परीक्षा के २०१७ के परीक्षाफल से माध्यमिक शिक्षा का असली चेहरा उजागर हो गया है? आखिर क्यों?

उत्तरः सत्येन्द्र जी, आप तो आज की तिथि में एक नामी-गिरामी उच्च विद्यालय के प्रधानाचार्य के पद पर कार्यरत हैं इस लिहाज से आप शिक्षा व्यवस्था से पूर्णतः परिचित हैं। जहाँ तक आपके प्रश्न के उत्तर का सवाल है, मुझे ऐसा लगता है कि बिहार विद्यालय परीक्षा समिति की इंटरमेडियट परीक्षा के 2017 के परीक्षाफल से माध्यमिक शिक्षा का असली चेहरा उजागर हो गया है, क्योंकि यों तो इस देश के प्रायः सभी राज्यों की माध्यमिक शिक्षा संतोषप्रद नहीं है, पर तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाए, तो पिछले वर्ष 2016 के मेरिट घोटाले के शर्मनाक अनुभव के बावजूद बिहार राज्य के विद्यालय-महाविद्यालयों के प्रबंधन और शिक्षकों ने कोई सबक नहीं लिया। आखिर तभी तो बिहार बोर्ड की इंटरमेडियट परीक्षा में विज्ञान और कला संकाय का परीक्षाफल बेहद खराब रहने से बड़ी संख्या में परीक्षार्थियों, अभिभावकों और शिक्षकों को मायूस होना पड़ा, कारण कि विद्यार्थियों में

पढ़ाई-लिखाई नहीं हुई जिसके परिणामस्वरूप विज्ञान वर्ग में जहाँ 70 फीसद परीक्षार्थी असफल हो गए, वहीं कला वर्ग में 60 फीसद से अधिक विद्यार्थी अनुत्तीर्ण हो गए। दूसरी बात यह कि इस साल बिहार बोर्ड ने परीक्षा में मकल पर सचमुच सख्ती की जिसके चलते सिर्फ मेधावी परीक्षार्थी ही उतीर्ण हो सके।

सच कहा जाय तो मेरिट घोटाले में देशव्यापी बदनामी होने के बाद बिहार विद्यालय परीक्षा समिति की आँखें खुलनी चाहिए थीं। यह तो कहिए कि बोर्ड के वर्तमान अध्यक्ष आनंद किशोर और उनके सहयोगीदल साधुवाद के पात्र हैं जिन्होंने हर संभव उपाय करके परीक्षा को पवित्र बनाने की कोशिश की। उनके प्रयास का ही सुफल है कि इस बार नकल माफिया और नकलची परीक्षार्थियों की दाल नहीं गल पाई जिसके चलते भले ही खराब परीक्षाफल के भुक्तभोगी बेशक दुखी होंगे, मगर राज्य की शिक्षा और परीक्षा प्रणाली में शुचिता के पक्षधर लोगों को इस बात से खुशी हुई होगी कि सुधार की दिशा में पहला कदम बढ़ा दिया गया है।

दरअसल, जब परीक्षा में कड़ाई होती है, तो बिहार की बदनामी का रिकार्ड टूटता है और बच्चा राय, लालकेश्वर और रूबी राय जैसे पात्र सामने आते हैं और जब कड़ाई होती है, तो 65 फीसद बच्चे असफल हो जाते हैं। दोनों ही स्थिंतियाँ पूरी शिक्षा व्यवस्था को कठघरे में खड़ी करती हैं और पूरा शिक्षातंत्र असफल होता है।

(४)प्रश्नः क्या आपको ऐसा लगता है कि आज की शिक्षा में मूल्यों का जिक्र नहीं है और नैतिकता निम्नतम स्तर पर है?

उत्तरः निश्चित रूप से आज की शिक्षा में मूल्यों का जिक्र नहीं है और नैतिकता में मूल्यों का जिक्र नहीं है और नैतिकता निम्नतम स्तर पर है। इस देश में साक्षरता तो बढ़ी है, पर मूल्य नहीं। आज देश में 612 विश्वविद्यालय, 33000 से अधिक महाविद्यालय और 3500 इंजीनियरिंग कॉलेज हैं जहाँ से 12 लाख इंजीनियर तथा 32 लाख टेक्निकल डिप्लोमा और डिग्रीधारी निकल रहे हैं।

दुनिया भर में मूल्यों पर जोर दिया जा रहा है। आस्ट्रेलियाई सरकार ने जहाँ स्कूलों में वैल्यू एजुकेशन के लिए अलग से निधि का प्रावधान किया है, वहीं जापान में नैतिक मूल्यों को बढ़ावा देने के लिए और नैतिक शिक्षा के लिए अलग से शिक्षक भर्ती किए गए हैं और इंग्लैंड के छात्रों में मूल्यों को बढ़ावा देने के लिए सोशल एंड इमोशनल आस्पेक्ट ऑफ लर्निंग पर जोर

दिया जाता है। इसी प्रकार थाईलैंड में मानव मूल्यों का पाठ पढ़ाने के लिए स्कूलों में महात्मा बुद्ध के उपदेशों को आधार बनाया गया है।

भारत में 1968 और 1986 में गठित क्रमशः पहली और दूसरी राष्ट्रीय शिक्षा नीति में वैश्विक शिक्षा से तालमेल के साथ ही संस्कृत व अन्य भाषाओं को महत्व देने, अनुसूचित वर्गों को शिक्षा में बढ़ावा देने, ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा की बढ़ोतरी पर जोर दिया गया और शिक्षाविद् यशपाल कमिटी की रिपोर्ट पर हायर एजुकेशन बिल 2011 में शिक्षा में रिसर्च पर जोर देने की पहल की गयी, मगर मूल्यों एवं नैतिकता् का कहीं जिक्र तक नहीं किया गया जबकि महात्मा गाँधी ने भी नैतिकता के बारे में कहा है कि सच्ची शिक्षा आपके अंदर की खूबसूरती को बाहर लाने का नाम है और मानवता का पाठ जीवन में सबसे महत्वपूर्ण होता है।

भाई 'मधुबनी' जी, शिक्षा एक ऐसा पैमाना है जिससे कहीं हुए विकास को समझा जा सकता है। शिक्षा, जहाँ जागरूकता लाती है, वहीं मानव संसाधन को भी विकसित करती है। जबतक देश में शिक्षा की हालत ठीक नहीं होगी और मूल्यों एवं नैतिकता को बढ़ावा नहीं दिया जाएगा इनोवेशन को भी बढ़ावा नहीं मिलेगा तथा छात्रों में संस्कार और संस्कृति भी नहीं आ सकेगी।

प्राचीन काल में जीवन की वास्तविकताओं से विद्यार्थी को परिचित कराना शिक्षा का उद्येश्य था। प्राकृतिक वातावरण में रहकर विद्यार्थी अनुशासन और संयम का जहाँ पालन करते थे, वहीं गुरु अपने शिष्यों को नैतिकता, शालीनता और शिष्टाचार का पाठ पढ़ाते थे, लेकिन आज छात्र-छात्राओं को जिस प्रकार की शिक्षा दी जा रही है, उससे उनके अंदर देश प्रेम और राष्ट्रीयता का संस्कार नहीं पनप रहा है। शिक्षा प्राप्त करने का मकसद केवल पैसा कमाने का माध्यम बनता जा रहा है जिसका नतीजा है कि इस देश के युवा वर्ग अपनी संस्कृति व सभ्यता को भूलते जा रहे हैं और उनके जीवन से ईमानदारी, अनुशासन, दया, नम्रता, अहिंसा व धैर्य एवं सहिष्णुता खत्म होती जा रही है।

दरअसल, शिक्षा एक तिजारत हो गई है। नौकरशाह, राजनेता उस तिजारत के हिस्सेदार बन गए हैं जिसके परिणामस्वरूप बौद्धिक शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक, नैतिकता का विकास जो शिक्षा का मूल उद्येश्य है, युवाओं में नैतिकता का अभाव दिख रहा है। चाणक्य ने कहा था, ईश्वर चित्र में नहीं चरित्र में बसता है और आज का मनुष्य चरित्र पर दाग लगाने से

बाज नहीं आता है तथा अपनी मर्यादा को भूल जाता है। इसलिए आज जरूरत इस बात की है कि स्कूलों व घरों में नैतिक शिक्षा पर बल दिया जाए, ताकि बच्चों में चरित्र निर्माण हो और वे अनुशासित बनें।

(५)प्रश्नः क्या किसी शैक्षिक संस्थान को खास विचारधारा के रंग में रंगा जाना उचित है? यदि नहीं तो क्यों?

उत्तरः किसी भी शैक्षिक संस्थान को खास विचारधारा के रंग में रंगा जाना कतई उचित नहीं है, क्योंकि भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में दोगली राजनीति के प्रचलन के चलते यहाँ विचारधारा के नाम पर गलत चीजें होती हैं जिसमें सबसे अधिक सच की बलि दी जाती है। अभिव्यक्ति की आजादी के नाम पर शैक्षिक संस्थान पूरी तरह राजनैतिक अखाड़े में तब्दील हो जाता है और पेशेवर छात्र नेता अपनी दलगत पक्षधरता के अनुसार उस शिक्षण संस्थान को किसी खास राजनैतिक विचारधारा के रंग में रंग डालते हैं। पिछले 9 फरवरी, 2016 को जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय परिसर में जो सांस्कृतिक कार्यक्रम के नाम पर घटना घटी और राष्ट्रविरोधी नारे लगाए गये वह तो सफ़तौर पर न केवल वामपंथी विचारधारा के रंग में रंगने का प्रयास कहा जाएगा, बल्कि आयोजन में आतंकवादी संगठनों से जुड़े कुछ बाहरी युवा लोग तो देश-द्रोही तत्वों के साथ मिलकर देश को बर्बाद करने के रास्ते ढूँढ़ने लगे। यहाँ जो कुछ होता रहा और निर्बाध बढ़ता रहा उसे जान बूझकर न तो पहचाना गया और न रोकने का कोई प्रयास किया गया। देश या विदेश में ऐसा कोई युवा आंदोलन कभी नहीं हुआ जहाँ युवाओं ने अपने देष्ठा की बर्बादी की आवाज उठाई हो। जेएनयू में जो हुआ वह अंततः राष्ट्र विरोधी शक्तियों के षड्यंत्र का ही एक और प्रयास सिद्ध होगा और षड्यंत्र किसी आंदोलन की नींव नहीं डालते हैं।

भाई अरुण जी, केवल जेएनयू ही नहीं, बल्कि इस देश के यादवपुर विश्वविद्यालय हों या हैदराबाद का केंद्रीय विश्वविद्यालय अथवा राष्ट्रीय महत्व के अन्य शिक्षण संस्थान सभी के परिसर इन दिनों दलगत राजनीति की आँच से झुलस रहे हैं। इस परिप्रेक्ष्य में देखा ज़ाए, तो प्राचीन काल में विश्व गुरु भारत के बिहार स्थित नालंदा विश्वविद्यालय बिना किसी राजनीतिक हस्तक्षेप के दुनिया भर में शिक्षा के महान केंद्रों के रूप में विख्यात हुआ।

दरअसल, विश्वविद्यालयों में आज जिस तरह की राजनीति दिखाई पड़ती है, उससे नकारात्मक तस्वीर उभरती है। छात्र नेता छात्र राजनीति न

कर और पढ़ाई छोड़कर राजनीतिक दलों की ठेकेदारी करने लगे हैं और उनका गठजोड़ आपराधिक गिरोहों से होने लगा है। यह प्रवृत्ति भारत जैसे जनतांत्रिक समाज के लिए कतई ठीक नहीं कही जाएगी। खासतौर पर सार्वजनिक निधि से संचालित शिक्षण संस्थानों में तो हर तरह की विचारधारा को पनपने का मौका मिलना चाहिए। किसी खास विचारधारा के रंग में विश्वविद्यालय को रंगने का नतीजा तो बहुत चिंताजनक और निराशाजनक साबित हुआ है।

दरअसल, जिन विचारधारा के लोगों ने सत्ता तक पहुँचने के पहले संस्थानों के अंदर प्रवेश कर उनपर अधिकार जमाने की पहली सीढ़ी माना है उनके दायरे बहुत संकुचित हो जाते हैं, क्योंकि उससे हर प्रकार का आत्मानुशासन तिरोहित हो जाता है और लोग उसी व्यवस्था को जर्जर करने पर उतारू हो जाते हैं जो उनका भरण-पोषण करती है।

जहाँ तक अभिव्यक्ति की आजादी का सवाल है तो लंबे अरसे से मान्यता रही है कि उच्च शिक्षण संस्थानों में हर तरह के सवाल को उभरने देने और उन्हें विमर्श का विषय बनाने से विचारों में अधिक धार पैदा होती है। यह अंततः लोकतांत्रिक मूल्यों को ही मजबूत करता है। बेशक, अभिव्यक्ति की आजादी हमारे मौलिक अधिकारों की तरह ही बिना शर्त नहीं है। फिर भी बौद्धिक बहसों का आकाश जितना विस्तृत होगा, हमारी लोकतांत्रिक व्यवस्था की जकड़बंदियाँ उतनी ढीली होंगी। इसलिए विचारों को खिलने देने से नुकसान कम, लाभ ही ज्यादा होता है। हाँ, विचार हिंसक हो जाए तो मामला अलग होता है और राज्य को दखलंदाजी का पूरा अधिकार होता है।

दरअसल कुछ राजनीतिक दलों में विगत लोकसभा चुनाव और पाँच राज्यों के विधान सभा चुनावों के बाद इस कदर निराशा घर कर गई है कि वे अब देश का विखंडन करने वाले विचारों के समर्थन में खड़े दिखाई देते हैं जिन्हें सबसे उदार, लोकतांत्रिक और बहुलता वाले राष्ट्र की नब्ज को कुतरने की इजाजत नहीं दी जा सकती।

(६)प्रश्नः क्या महाविद्यालयों अथवा विश्वविद्यालयों में पढ़ने वाले युवा विद्यार्थियों या राष्ट्र के युवाओं की क्षमता और कुशलता का संपूर्ण उपयोग हो पा रहा है?

उत्तरः प्रो. राजेन्द्र जी, किसी भी राष्ट्र को उसकी युवाशक्ति पर गर्व होता है। जोश, जज्बा और जुनून से लवरेज युवा ही राष्ट्र का भविष्य तय

करता है। युवाओं के प्रेरणा श्रोत स्वामी विवेकानंद ने युवा पीढ़ी को राष्ट्र के उन्नयन में महत्वपूर्ण माना था। उन्होंने अपने उद्‌बोधन में सर्वगुण संपन्न युवाओं के जरिए देश की काया तक पलट देने की बात कहीं थी। जनसंख्या का यह वर्ग अपनी श्रमशक्ति के बल से शेष निर्भर जनसंख्या का पेट भरता आया है।

संयुक्त राष्ट्र संघ की हालिया रिपोर्ट के अनुसार भारत में 35 करोड़ युवा हैं, लेकिन उनकी क्षमता और कुशलता का संपूर्ण उपयोग नहीं हो पा रहा है, कारण कि वे सही दिशा में सकारात्मक सोच के साथ आगे नहीं बढ़ पा रहे हैं। खासतौर पर इस देश की राजनीतिक पार्टियाँ और उसके राजनेता उन्हें अपने-अपने राजनीतिक दलों के प्रत्याशियों के चुनाव में गलत इस्तेमाल कर अथवा उनमें अपनी-अपनी विचारधारा का रंग थोपकर गलत दिशा की ओर ले जा रही हैं। युवा शक्ति पर गर्व तभी किया जा सकता है जब वे सकारात्मक सोच के साथ आगे बढ़ें।

(७)प्रश्नः क्या तकनीकी शिक्षा की समस्या को केवल नए भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (आई.आई.टी.) खोलकर हल किया जा सकेगा? अगर नहीं तो उत्कृष्ट तकनीकी शिक्षा की समस्या को हल करने के लिए और कौन-कौन से पहल करने की आवश्यकता है?

उत्तरः भाई आनंदवर्द्धन जी, तकनीकी शिक्षा की समस्या केवल नए भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (आई.आई.टी.) खोलकर हल नहीं किया सकेगा। तकनीकी शिक्षा के लिए आकर्षक कैरियर की रूप-रेखा होनी चाहिए, उद्योगों को अधिक से अधिक जोड़ा जाना चाहिए और गहन अनुसंधान पर बल देना चाहिए, तभी आई.आई.टी. विश्व में भारत को अग्रणी बनाने में सार्थक भूमिका अदा करेंगे।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इस विशाल भारत देश, जिसकी एक अद्‌भुत प्राचीन संस्कृति रही है और जिसने तमाम चुनौतियों के बावजूद सदैव अच्छी व गहन शिक्षा को समाज का एक विशिष्ट पहल बनाए रखा है, वह आज़ दो राहों पर खड़ा है। ऐसी स्थिति में हमें एक नए तकनीकी विश्व में अपनी ठोस जगह बनानी है, हमारे संसाधन सीमित हैं। और हमारे पास वक्त भी बहुत कम है।

अमेरिका, जापान, रूस, जर्मनी, चीन, ब्रिटेन और कोरिया जैसे देश आधुनिक विश्व अर्थव्यवस्था के सबसे प्रबल और शक्तिशाली देशों में शुमार हैं, क्योंकि इन देशों में विज्ञान और तकनीकी में निवेश बेशुमार होते हैं। मूल

अनुसंधान पर बल दिया जाता है और बाजार में उस अनुसंधान की मशीनरी से उपजे तकनीकी, उत्पादों से अपनी धाक जमायी जाती है। आज हम और आप जिन तकनीकों का रोजाना इस्तेमाल करते हैं ये सभी इन्हीं देशों से निकले हैं। इसी कड़ी में रक्षा उत्पादों में इजरायल का नाम भी लिया जाता है। मगर तकनीक और विज्ञान के वैश्विक बाजारों में दूसरों को छोड़कर भारत कहीं नहीं दिखाई देता है।

1951 में खड़गपुर के आई.आई.टी. कैंपस से अपनी शुरुआत कर धीरे-धीरे मुंबई, दिल्ली, कानपुर और मद्रास के इन कुल पाँच स्थानों पर भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थानों की स्थापना हुई जिसके बाद 1994 में गुवाहाटी में आई.आई.टी. खुला और 2008 के बाद मानो बाढ़ सी आ गई। आज, 2016 में स्थिति यह है कि भारत में अब 23 आई.आई.टी. हैं जो विश्व का अपने प्रकार का पहला उदाहरण है, जिसमें उत्कृष्ट तकनीकी शिक्षा का इतना फैलाव और विस्तार एक ब्रांडनेम के तहत सरकारी आदेशों से हो रहा है।

उत्कृष्ट तकनीकी शिक्षा की समस्या को हल करने के लिए निम्नलिखित पहल आवश्यक है-

किसी भी नयी भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान की शुरुआत के लिए सिर्फ सरकारी धन आवंटन ही पर्याप्त नहीं मान लेना चाहिए। इन संस्थानों को उत्कृष्ट बनाने के लिए हमें पहले उनके लिए ठोस 'फीडर रूट्स' तैयार करने होंगे, अर्थात बहुत सारे उत्कृष्ट तकनीकी शिक्षक और सही औद्योगिक-लिंक, इन दोनों की भीषण कमी है। केवल प्रतिभाशाली छात्र एक कड़ी परीक्षा से चयनित कर स्वत: ही आई.आई.टी. श्रेष्ठ बन जाएँगे, यह गलत सोच है। हो सकता है हम दस या बीस वर्षो में कुछ चमत्कारिक कर दें, अन्यथा प्रतिष्ठा की समस्या हो जाएगी।

इसी प्रकार भारतीय विनिर्माण आज भी दोयम दर्जे का है। यह तथ्य किसी से छिपा नहीं है कि चीन के सामने किसी भी अन्य देश के मैन्यूफैक्चरिंग क्षेत्र टिक नहीं पाते हैं, जब हम उस क्षेत्र में ही अभी संघर्षरत हैं, और 'मेक इन इंडिया' जैसे दूरद्रष्टा अभियानों की सफल होने में अभी शायद वक्त लगेगा, तो इन 23 आई.आई.टी. से निकलने वाले सभी हजारों प्रतिभाशाली अभियंताओं को भारत में कैसे सही काम मिल पाएगा। क्या इनमें से अनेक फिर बाहर नहीं करेंगे? या फिर अपनी मूल ब्रांच छोड़कर कम्प्यूटर क्षेत्र या प्रबंधन या लोक सेवा क्षेत्र में जाएँगे, तो करोड़ों का नया निवेश आखिर क्यों?

आई.आई.टी. द्वारा विकसित या प्रवर्तित तकनीकों का वैश्विक कामर्सियल बाजारों में अग्रणी नहीं होना भी हमारी एक समस्या है। अमेरिका के एम.आई.टी. सै यदि तुलना करें, जहाँ हर क्षेत्र में नयी तकनीकें विकसित की जाती हैं, जिनका दुनिया पर गहरा प्रभाव पड़ता है, तो बड़े स्तर पर ऐसा अब तक हम नहीं कर पाए हैं।

अतएव आने वाले वर्षो में हमें इन 23 आई.आई.टी. संस्थानों पर ही रूक कर, इन्हें ही श्रेष्ठ बनाना चाहिए। तकनीकी शिक्षा की समस्या को केवल नए आई.आई.टी. खोलकर हल नहीं किया जा सकेगा। निश्चित रूप से हमें तकनीकी शिक्षा के लिए आकर्षक कैरियर की रूपरेखा तैयार करनी होगी और उद्योगों को अधिक से अधिक जोड़कर गहरा अनुसंधान पर भी बल देना होगा, तभी यह 23 आई.आई.टी. विश्व में भारत को अग्रणी बनाने में सार्थक भूमिका निभा पाएँगे।

भारत को तकनीकी को जल्दी अपनाने से मिलने वाले ायदे चूकना नहीं चाहिए। यही देखिए न 5 -जी की विराट तथा चमत्कारिक संभावनाओं से भारत के युवाओं के लिए अवसरों के अनंत द्वार खुलने वाले हैं। गणित बताता है कि सिर्फ जी-5 स्पेक्ट्रम और इसकी लाइसेंसिंग से ही अगले पाँच साल में 20 लाख करोड़ रुपए मिलेंगे। जरा सोंचे, तो क्यों दक्षिण कोरिया जैसा छोटा-सा देश 5 जी रिसर्च पर 15000 करोड़ रुपए खर्च कर रहा है, क्योंकि उसके अच्छे दिन आने वाले हैं।

(८)प्रश्न: केंद्र सरकार द्वारा अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय (एएमयू) की अल्पसंख्यक प्रकृति का विरोध करना क्या संवैधानिक रूप से सही है?

उत्तर: हाँ, केंद्र सरकार द्वारा अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय (एएमयू) की अल्पसंख्यक प्रकृति का विरोध किया जाना न केवल संवैधानिक रूप से सही है, बल्कि मुस्लिमों के उत्थान की दृष्टि से भी उचित प्रतीत होता है। सन् 2005 में उच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश ने फैसला सुनाया था कि एएमयू को अल्पसंख्यक संस्थान का दर्जा देना और एएमयू द्वारा मुस्लिमों को पचास फीसदी आरक्षण देना असंवैधानिक है।

सर सैयद अहमद खान द्वारा 1875 में स्थापित मोहम्मडन एंग्लो-ओरियंटल कॉलेज के 1920 में विघटित किए जाने के बाद भारतीय संसद के अधिनियम द्वारा अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के रूप में पुन: स्थापित किया गया था और इस प्रकार एएमयू की स्थापना संविधान के प्रावधानों के

तहत हुई है जिसके मुताबिक ऐसी संस्थाएँ अल्पसंख्यक का दर्जा बरकरार नहीं रख सकतीं, यदि उनकी फंडिंग भारतीय शासन द्वारा हो रही हो। भारत एक पंथ निरपेक्ष देश रहा है, ऐसे में एएमयू यदि स्वयं को अल्पसंख्यक संस्थान मानता है, तो वह देश के करदाताओं का पैसा नहीं ले सकता है। संविधान के अनुच्छेद 30(2) के मुताबिक शासनतंत्र अल्पसंख्यक संस्थाओं को सहायता दे सकता है, लेकिन अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय का मामला सिर्फ सरकार द्वारा सहायता देने भर का नहीं है, बल्कि एक सरकार द्वारा अल्पसंख्यक समुदाय के लिए संस्थान चलाने और उसे फंडिंग करने का है और सबसे बड़ी बात यह है कि एएमयू एक केंद्रीय विश्वविद्यालय भी है इसका अर्थ यह है कि देश में राष्ट्रीय महत्व के एक संस्थान को धार्मिक मान्यता क़ो पोषित करने, किसी धर्म की शिक्षा को बढ़ावा देने या मुख्य रूप से एक धार्मिक समुदाय के छात्रों को स्वीकारने की अनुमति नहीं दी जा सकती है, क्योंकि सभी केंद्रीय विश्वविद्यालयों का अपने छात्रों में राष्ट्रीय एकता का भाव भरना अनिवार्य है और ऐसा तभी हो सकता है जब बिना किसी धार्मिक, क्षेत्रीय या जातीय भेदभाव के एएमयू में भारत के सभी समुदायों और क्षेत्रों के छात्रों को पढ़ने का अवसर मिले इसलिए विगत 17 जुलाई, 2016 को केंद्रीय कानून मंत्री रविशंकर प्रसाद का यह कहना सही है कि सरकार द्वारा पोषित एएमयू का अल्पसंख्यक दर्जा देना संभव नहीं है।

(९)प्रश्नः भारत में चिकित्सा शिक्षा की मौजूदा स्थिति क्या है ? क्या आप चिकित्सा शिक्षा और स्वस्थ भारत के लिए कुछ ठोस प्रयासों की आवश्यकता महसूस करते हैं? अगर हाँ, तो क्यों?

उत्तरः डॉ. आनंदवर्द्धन जी, संसद की स्थायी समिति ने वर्ष 2016 की एक रिपोर्ट में रेखांकित किया है कि देश में चिकित्सा शिक्षा की स्थिति दयनीय है और वह निचले स्तर तक पहुँच गई है तथा चिकित्सकों में पेशेवर सक्षमता का बहुत अभाव है। चिकित्सा में अनैतिक व्यवहारों पर चिंता व्यक्त की गई हैं। मेडिकल कॉसिल शैक्षणिक सुधार के लिए गंभीर प्रयास नहीं कर सकी है तथा पारदर्शिता की कमी के क़ारण मेडिकल कॉलेजों को लाइसेंस देने में भारी भ्रष्टाचार का आलम है।

चिकित्सा शिक्षा और स्वस्थ भारत के लिए कुछ ठोस प्रयासों की आवश्यकता मैं महसूस करता हूँ। संसदीय समिति द्वारा मेडिकल काउंसिल को दो भागों में बाँटने का सुझाव दिया गया है तथा संसदीय समिति की रिपोर्ट के बाद सर्वोच्च न्यायालय ने मेडिकल काउंसिल के कामकाज पर

नजर रखने के लिए भारत के पूर्व प्रधान न्यायाधीश आए. एम. लोढ़ा की अध्यक्षता में एक तीन सदस्यीय कमिटी का गठन किया गया है। स्वास्थ्य क्षेत्र में प्रशिक्षित चिकित्सकों और अन्य कर्मियों की कमी पर आधारित एक रिपोर्ट में कहा गया है कि देश में तात्कालिक तौर पर 100 सीटोंवाले 550 मेडिकल कॉलेजों की जरूरत है, ताकि 2030 तक वैश्विक औसत के स्तर तक पहुँचा जा सके। ऐसे कदमों से ही बढ़ती आबादी, बीमारियों के प्रकोप तथा लोगों के बढ़ते स्वास्थ्य खर्च जैसी समस्याओं के दबाव को कम किया जा सकता है। भारत की गिनती दुनिया के उन देशों में होती है, जहाँ स्वास्थ्य सेवा का स्तर बेहद लचर है और एक बड़ी आबादी को समुचित इलाज मयस्सर नहीं है। इस कारण उपचार बहुत महँगा हो गया है तथा गुणवत्तापूर्ण स्वास्थ्य केंद्र केवल शहरों तक सीमित हो गया है। चिकित्सकों और अस्पतालों की कमी की वजह से बड़ी संख्या में झोला-छाप चिकित्सक या नीम-हकीम पैदा हो गए हैं, जो बिना किसी प्रशिक्षण के सस्ते में ही रोगों का इलाज करते हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन की एक हालिया रिपोर्ट ने बताया है कि अधिकांश चिकित्सकों के पास कोई पेशेवर अर्हता (क्वालिफिकेशन) नहीं है, पर बेहतर विकल्प के अभाव में रोगी इनके पास जाते भी हैं। अक्सर गलत दवाई देने के चलते रोगी की हालत खराब भी होती जाती है। ऐसी स्थिति में उम्मीद की जाती है कि न्यायाधीश लोढ़ा कमिटी बेहतर चिकित्सा शिक्षा और स्वस्थ भारत के लिए कुछ ठोस सकारात्मक प्रयासों को प्रोत्साहित करेगी।

(१०)प्रश्न: हर रोगों का इलाज विकास न होकर शिक्षा को कहा जाता है। आप इस विचार से कहाँ तक सहमत हैं?

उत्तर: हाँ, मैं भी इस विचार से पूर्णत: सहमत हूँ कि हर रोगों का इलाज विकास नहीं, बल्कि शिक्षा है। आपको याद होगा पहले मनुष्य को धर्म दर्शन और नीति विचार की जरूरत अबोधावस्था से निकलते ही होता था। उसे यह समुचित रूप से प्रदान करना ही भारत में शिक्षा कहलाता था, पर आजादी मिलने के पश्चात् भारत में सत्ताधारियों ने समाजवाद, आधुनिकता, उन्नति और विकास के अँधविश्वास में स्वयं शिक्षा का ही अर्थ बिगाड़ दिया। अब शिक्षा रोजगार सृजन और प्रशिक्षण यानी भौतिक विकास की व्यवस्था बन कर रह गई है।

वर्तमान दौर में विकास-धुन इसी अज्ञान राग पर बज रही है, मानों हर किसी को रोटी, कपड़े, मकान, जूते, मोबाइल, व इंटरनेट पाने के सिवा

और कुछ की आवश्यकता न हो। यदि ऐसा है, तो देश का विकसित राज्य पंजाब नशे में क्यों डूबा है? वहाँ खालिस्तान का विचार क्यों उभरा? आजादी के पूर्व भारत में सबसे विकसित राज्य बंगाल और पंजाब थे। दोनों टूटे, विभाजित हुए, कई मारे गए, कई बेघर हुए। यह अँग्रेजों ने नहीं, बल्कि लोग आपस में ही लड़े, क्योंकि लोगों में शिक्षा का अभाव रहा। अतः हर रोगों को इलाज विकास नहीं, शिक्षा है।

सामाजिक बदलाव का सबसे बड़ा जरिया शिक्षा है जिसके लिए शिक्षा एवं शिक्षण संस्थानों के भी जनतंत्रीकरण की आवश्यकता है, क्योंकि सामाजिक भेदभाव के लिए शिक्षा भी जिम्मेदार है। प्रत्यक्ष रूप से यूँ तो अस्पृश्यता कम हो गई है, लेकिन समाज पर जाति की पकड़ और उसका वैचारिक वर्चस्व खत्म नहीं हुआ है। इसके मद्देनजर उच्च शिक्षण संस्थानों में जातिगत भेदभाव के विरोध में कानून लाना होगा, जो शिक्षा और शिक्षण संस्थानों में जनतंत्रीकरण करे।

जिस देश की शिक्षा प्रणाली में गड़बड़ी हो, उस देश की भावी पीढ़ी के साथ खिलवाड़ तो होगा ही। जाहिर है इसका असर देश के विकास पर पड़ेगा। गलत तरीके से अगर डॉक्टर बनेगा, तो क्या वह उचित इलाज कर पाएगा? या फिर अधिवक्ता इंसाफ के लिए कैसे उचित लड़ाई लड़ेगा? शिक्षक छात्रों को कैसे अच्छी शिक्षा या ज्ञान दे पाएगा?

(११)प्रश्नः क्या आप भी ऐसा महसूस करते हैं कि शिक्षा के क्षेत्र में देश की स्थिति बड़े नाजुक दौर में पहुँच रही है? आखिर क्यों? क्या निजी शिक्षण संस्थान अधिकाधिक धन उगाही के माध्यम नहीं बन चुके हैं?

उत्तरः हाँ, पांडे जी, आप तो स्वयं शिक्षक हैं, मैं भी यह महसूस करता हूँ कि शिक्षा के क्षेत्र में देश की स्थिति बड़े नाजुक दौर से गुजर रही है जो सभी के लिए चिंता का विषय इसलिए है, क्योंकि आर्थिक मोर्चे पर प्रगति के लिए कुशल मानव पूँजी अनिवार्य है और कौशल मुक्त या कुशल मानव पूँजी शिक्षण संस्थाओं से ही आती है जहाँ की हालत दिन प्रतिदिन बिगड़ती जा रही है,। विद्यालयों, महाविद्यालयों से लेकर विश्वविद्यालयों और राष्ट्रीय स्तर के प्रौद्योगिकी संस्थानों तक में अध्यापकों का अभाव एक गंभीर समस्या है। बिहार में हुए मेरिट घोटाले और परीक्षा व्यवस्था में जिस बड़े पैमाने पर धाँधली उजागर हुई है उससे वहाँ पर संपन्न परीक्षा की विश्वसनीयता ही आज संदिग्ध हो उठी है। शिक्षा के साथ यह क्रूर मजाक कब से चल रहा

होगा और समाज में अबतक कितना घुन लग चुका होगा, इसकी आज कल्पना भी नहीं की जा सकती है।

मेरा अनुभव बताता है कि बिहार विद्यालय परीक्षा समिति से भी बदतर स्थिति बिहार के मदरसा बोर्ड तथा बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड की है जो विगत चार दशकों से केवल अंक पत्र और प्रमाण पत्र छापने का कारखाना बन चुका है। बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के 15 सितंबर, 2008 से लेकर 14 सितंबर 2011 के अपने तीन साल के कार्यकाल में उसके अध्यक्ष का दायित्व संभालते हुए मैंने देखा है कि मेरे पूर्व तथा बाद में परीक्षा तथा उत्तर पुस्तिकाओं के मूल्याँकन में जितनी अनियमितता और वित्तीय गड़बड़ियाँ हो सकती हैं हुई हैं। अपने तीन साल के कार्यकाल में उसका निवारण जितना मुझसे संभव हो सका, मैंने किया और भ्रष्टाचारियों एवं रिश्वतखोरों से किसी भी तरह का समझौता नहीं करने की स्थिति में अध्यक्ष के दायित्व से मुक्त होना ही मैंने लाजिमी समझा। जिस रिश्वतखोर संस्कृत बोर्ड के सचिव को मैंने राज्य के मुख्यमंत्री को पत्र लिखकर चौबीस घंटे के भीतर स्थानांतरण कराया वह बिहार विद्यालय परीक्षा समिति के सचिव रहते घोटाले की वजह से आज जेल की हवा खा रहा है। यानी मैंने उसे जिस तरह का घोटालेबाज समझा था, वह सही निकला।

बिहार के विश्वविद्यालयों की स्थिति का अंदाजा आप इस बात से लगा सकते हैं कि बिहार का सर्वश्रेष्ठ पटना विश्वविद्यालय जिसे कभी पूरब का ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय कहा जाता रहा है, क्योंकि कभी उच्च शिक्षा के भी कसौटी पर खरा माना जाता था, उसके कुलपति छात्रों और कर्मचारियों के डर से कार्यालय नहीं जाते और सारे कामकाज वाउंसरों की निगरानी में आवास से निपटाते हैं। इसे विडंबना नहीं तो और क्या कहेंगे ?

जहाँ तक निजी शिक्षण संस्थानों की स्थिति का सवाल है वे अधिकाधिक धन उगाही के माध्यम बन चुके हैं। प्रबंधन कोटे से डोनेशन इनमें कम प्राप्तांक वाले विद्यार्थियों को भी प्रवेश मिल जाता है। बेहद खर्चीले होने पर भी छात्रों की किसी तरह की गुणात्मक अभिवृद्धि करने में वे असफल ही रहते हैं। ऊपरी चमक-दमक और तामझाम तो वहाँ रहता है, पर वे किस प्रकार की शिक्षा प्रदान करते हैं, इसे लेकर सबके मन में संशय है। आखिर तभी तो उच्च पदस्थ अधिकारियों के कार्य के दायित्व-बोध और अकर्मण्यता की ग्लानि से कोसों दूर ऐसे लोगों की भीड़ बढ़ती जा रही है जो निजी लाभ पाने के चक्कर में समाज की प्रगति में रोड़े बनते जा रहे हैं।

चरित्र की दृष्टि से इनकी दुर्बलताओं के किस्से आए दिन समाचार-पत्रें की सुर्खियों के रूप में हमारे सामने उपस्थित होते हैं।

बिहार में शिक्षा की गिरती सेहत की वजह है शिक्षा व्यापार। आज देश के युवा उच्च शिक्षा पाने के प्रति उत्सुक हैं और इसके लिए मेहनत भी करते हैं, लेकिन शिक्षातंत्र में फैले भष्टाचार के कारण युवाओं को कई मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। शिक्षा की सेहत तभी सुधरेगी जब शिक्षा में फैले भ्रष्टाचार और व्यापार को रोकने का प्रयास किया जाए।

(१२)प्रश्नः क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि सरकार द्वारा सभी राज्यों की राजधानी में संस्कृति स्कूल की स्थापना का प्रस्ताव असमानता की खाई को और अधिक बढ़ाने वाला कदम होगा?

उत्तरः हीरालाल पांडे जी, आपने ठीक कहा, शिक्षा प्रणाली या शिक्षण संस्थाओं में सुधार की जब कभी चर्चा चलती है तो थामस बैबिंगटन मैकाले का उद्धरण दिया जाता है, क्योंकि मैकाले ने शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन ब्रिटिश राजशाही की हुकूमत को भारत पर अपना अंकुश बनाए रखने में सहायक बना। मैकाले अपनी कल्पना के भारतीयों का एक अलग वर्ग बनाने में सफल रहा। मगर आजादी के सत्तर साल बाद न मैकाले के साथी हैं और न ही अँग्रेज शासक फिर भी शायद भारत में एक ऐसा वर्ग फल-फूल रहा है, सशक्त है, सत्ता में है जो मैकाले की इच्छाओं को आगे बढ़ा रहा है। इसका ही परिणाम है कि बिना किसी हिचक के अपने और अपनों के लिए जितनी व्यवस्था हो सके, करते रहो और जिनकी सेवा के लिए नियुक्त हो उन्हें बरगलाते रहो और किसी प्रकार की चिंता मत करो। जी हाँ, आखिर तभी तो भारतीय प्रशासनिक सेवा के सर्वोच्च स्तर के अधिकारियों के बच्चों की शिक्षा के लिए भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा एक प्रस्ताव पर विचार किया जा रहा है कि राज्यों की राजधानी में संस्कृति स्कूलों की स्थापना की जाए। मंत्रालय के समक्ष इस आशय की नीति का मसौदा प्रस्तुत हो चुका है और किसी भी वक्त उजागर किया जा सकता है।

जिस तरह हमारे माननीय सांसद एवं विधायक अभी तक मनमाने ढंग से अपने वेतन-भत्ते बढ़ाते रहे हैं, उसी प्रकार अब वरिष्ठ अधिकारी भी अपने लिए शिक्षा के क्षेत्र में विशिष्ट व्यवस्थाएँ बिना किसी हिचक के करने जा रहे हैं। मुझे लगता है कि इस प्रकार के निर्णयों का समाज और सामान्य जन पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा और इससे आपसी विश्वास और आक्रोश बढ़ेगा, क्योंकि आजादी के सत्तर साल बीत जाने के बावजूद एक तो ऐसे ही

अमीरों-गरीबों के बीच खाई निरंतर बढ़ती जा रही है और दूसरी ओर विशिष्ट अधिकारियों के बच्चों को शिक्षा प्रदान करने के लिए हर राज्य की राजधानियों में संस्कृति स्कूल खोलने से बढ़ती असमानता को और भी बढ़ाया जा सकेगा। जबकि केंद्रीय विद्यालयों की स्थापना अखिल भारतीय सेवा के बच्चों को स्थानांतरण में होने वाली असुविधा के निवारण के लिए ही की गई थी, लेकिन ऐसा लगता है कि केंद्रीय विद्यालय उन विशिष्ट अधिकारियों के लिए इसलिए उपयुक्त नहीं लग रहा है, क्योकि वहाँ सरकारी कर्मचारियों के हर श्रेणी के बच्चे साथ-साथ पढ़ते और खेलते हैं जो उन्हें रास नहीं आ रहा है।

आजादी के बाद देशवासी यह अपेक्षा करते हैं कि संविधान की आत्मा में निहित समानता के अवसर हर युवा को उपलब्ध हो और यह तभी संभव है जब समाज के हर बच्चे की समान स्तर की शिक्षा मिले। अधिकांश देशवासी इसे ही न्यायसंगत मानते हैं। मगर विशिष्ट अधिकारी अपनी विशिष्टता बनाए रखने और प्राचीन समय के राजे-महाराजे की तरह स्वघोषित श्रेष्ठता को बनाए रखने के लिए अलग विद्यालय की इच्छा रखते हैं। मैकाले भी तो अपनी शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन कर यही चाहता था कि उन्हें इस देश में एक ऐसा वर्ग तैयार करना है जिसका रूप और रंग भारतीय होगा, मगर जो रुचि, विचार, नैतिकता और बौद्धिकता में अँग्रेज होगा।

भारतीय प्रशासनिक सेवा के जिन अधिकारियों ने संस्कृति स्कूलों के लिए सरकारी साधनों का उपयोग करना पसंद है वे यह क्यों नहीं समझ पा रहे हैं कि पहले उन स्कूलों की सुध ली जाए जिनमें ब्लैक बोर्ड और शौचालय नहीं है। वहाँ शिक्षकों की कमी है। मगर साहब लोगों के बच्चों के लिए चमकते हुए स्कूल सरकारी सहायता से निर्मित हों।

निश्चित रूप से ऐसे 'नवाचारों' के सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रभाव देशवासियों पर पड़ेंगे। सियाचीन की हाड़ कांपने वाली ठंड में गश्त लगाते उस सैनिक पर क्या प्रभाव पड़ेगा जो छुट्टी में घर आने पर पाएगा कि उसके बच्चे के स्कूल में अभी तक अध्यापक नहीं हैं, लेकिन वरिष्ठ अधिकारियों के बच्चों के लिए नया भव्य स्कूल बन रहा है। इस लिहाज से देखा जाए तो संस्कृति स्कूलों की स्थापना से समाज में बढ़ते विघटन को और बढ़ावा मिलेगा। इसलिए इस प्रस्ताव का जितनी शीघ्रता से पटाक्षेप हो उतना ही अच्छा होगा।

दूसरी बात मुझे यह कहनी है कि जब देशवासियों में असमानता

की भावना होगी, तो उसका असर राष्ट्रीयता की भावना पर होगा। एक तो ऐसे ही आज जिस प्रकार की शिक्षा हमारे देश में दी जा रही है, उससे छात्रों के अंदर देश प्रेम और राष्ट्रीयता का संस्कार नहीं पनप रहा है। शिक्षा केवल पैसा कमाने का माध्यम बनता जा रहा है, क्योंकि भारत की जो वास्तविक सभ्यता और संस्कृति है आज के दौर की शिक्षा से उसका कोई सरोकार नहीं है। शिक्षा प्रत्येक प्रकार के अपेक्षित परिवर्तन तथा सुधार की धुरी होती है मगर अपेक्षित सुधार तो दूर, देश के नागरिकों, नौजवानों पर पश्चिमी सभ्यता का भूत सवार होता जा रहा है।

(१३)प्रश्न: बिहार की शिक्षा-परीक्षा को बर्बाद करने और इसे सड़ा देने में बिहार विद्यालय परीक्षा समिति के अतिरिक्त आप किसे जिम्मेदार मानते हैं?

उत्तर: डॉ. शिववंश जी, आपको याद होगा बिहार के तत्कालीन राज्यपाल देवानंद कुंवर ने एक विश्वविद्यालय के दीक्षांत समारोह में शिरकत करते हुए युनिवर्सिटी टॉपर तथा विश्वविद्यालय के कुलसचिव से जब कुछ सवाल पूछे थे, तो दोनों से जवाब पाकर वे आश्चर्य में पड़ गए थे। ठीक उसी प्रकार जैसे बिहार की इंटर परीक्षा की टॉपर रूबी कुमारी ने साक्षात्कार में पॉलिटकल साइंस को संभवत: प्रॉडिकल साइंस विषय के बारे में बताया। आखिर तभी तो बिहार विद्यालय परीक्षा समिति द्वारा घोषित 12वीं के परिणाम के बाद टॉपर रहे दो छात्र रूबी राय और सौरभ श्रेष्ठ के संदिग्ध होने की खबर ने सुशासन-विकास के लिए चर्चित बिहार सरकार के साथ-साथ यहाँ की परीक्षा और मूल्याँकन प्रणाली न केवल सवालों के घेरों में लाकर खड़ा कर दिया, बल्कि उसकी धज्जियाँ उड़ गईं।

वैसे परीक्षाओं में नकल एक प्रवृत्ति की तरह प्राय: प्रत्येक प्रांतों और समाज में है, लेकिन बिहार में पिछले दशकों से परीक्षा में नकल कराने का धंधा और परीक्षा बोर्ड की धाँधली एवं हेर-फेर का धंधा, मजबूत सिंडीकेट के रूप में स्थापित हो चुका है जिसके परिणामस्वरूप यह राज्य सबसे अधिक बदनाम हो चुका है। यही कारण है कि बिहार से भारी संख्या में छात्रों का दिल्ली, कोटा जैसे जगहों में कूच हो रहा है। वैसे नकल माफिया से हटके कुछ सुकून की खबर यह भी है कि पूरी दुनिया में आनंद कुमार के नेतृत्व में चल रहा 'सुपर-30' का चेहरा अपनी काबिलियत का चेहरा दमक रहा है। यहाँ से मेहनत से निकली मेधाविता एक तरफ जहाँ देश-विदेश में मान्य हो रही है, वहीं दूसरी तरफ बिहार विद्यालय परीक्षा

समिति के भ्रष्टाचार में आकंठ लिप्त रहने की वजह से बिहार सरकार की फजीहत हो रही है।

परीक्षाओं में भ्रष्टाचार पनपने तथा उसमें मददगार बनने में बड़ी-बड़ी शक्तियाँ सक्रिय रही हैं और पक्ष-विपक्ष की राजनीति भी जिम्मेदार है। दरअसल, यहाँ पूरी शिक्षा व्यवस्था पैसा, पैरवी और कोचिंग के सहारे चलती है। खास बात यह है कि नकल और फेल-पास के दलदल में सभी दल फँसे हैं।

सामान्य परीक्षाओं के अलावे बिहार में मेडिकल तथा इंजीनियरिंग परीक्षाएँ भी नकल के बिना नहीं हो रही हैं। बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के अध्यक्ष पद का दायित्व का निर्वह्ण करते वक्त मैंने देखा है कि शिक्षा माफिया परीक्षा और मूल्याँकन में कितनी गड़बड़ियाँ करते हैं। विगत चार दशकों से भ्रष्टाचार में आकंठ डूबे संस्कृत बोर्ड की गाड़ी को पटरी पर लाने में मुझे कितनी मुसीबतें झेलनी पड़ी हैं यह तो मैं ही जानता हूँ। इसलिए मैं अपने अनुभव के आधार पर कह सकता हूँ कि यदि बोर्ड के प्रमुख की इच्छाशक्ति मज़बूत हो और वह अपने दायित्व का निर्वाह ईमानदारी से करे, तो परीक्षाओं में नकल पर अंकुश और उत्तर पुस्तिकाओं के मूल्याँकन की गड़बड़ियों एवं हेराफेरी को रोका जा सकता है। इसके अतिरिक्त राजनीतिक इच्छाशक्ति की भूमिका भी अहम है जिसका अभाव बिहार सरकार में स्पष्ट दिखता है। जहाँ तक शिक्षा विभाग में व्याप्त भ्रष्टाचार का सवाल है मंत्री से संत्री तक, 'को बड़ छोट कहत अपराधू' को चरितार्थ कर रहे हैं।

बिहार की जिस ज्ञान-भूम्रि-नालंदा पर पूरा भारत गर्व करता आया है उसी भूमि की उपज बिहार विद्यालय परीक्षा समिति के तत्कालीन अध्यक्ष और उनकी नेता पत्नी ने उसी ज्ञान-भूमि की गरिमा को तार-तार कर दिया। पूरा बिहार तो इसके लिए शर्मिन्दा है ही, हम भी इसलिए अपने को शर्मिन्दा महसूस कर रहे हैं, क्योंकि हमारी जन्मभूमि भी वही ज्ञान की भूमि नालंदा है जिस पर हम सदैव गर्व करते रहे हैं, मगर 'ले डूबता है एक पापी नाव को मझधार में' कहावत को चरितार्थ किया दोनों पति-पत्नी ने। जिन्हें अपने विषय तक की जानकारी नहीं वे टॉपर की सूची में शामिल हो गए। नित्य आ रहे चौकाने वाले नए तथ्यों की खबर से यह कल्पना भी नहीं की जा सकती कि इतने बड़े पद पर बैठै लोग इस तरह की प्रणाली को अपनी जागीर समझकर सारी सीमाएँ लांघ जाएँगे। बोर्ड के शिक्षा माफियाओं ने बिहार के गौरव के साथ-साथ छात्र-छात्राओं के भविष्य पर भी प्रश्न चिन्ह

लगा दिए। ऐसे ही धंधेबाज बच्चा राय जैसे लोगों को जन्म देते हैं।

मेरा मानना है कि जब तक शिक्षण संस्थान के शीर्ष पर बैठे लोग निष्ठावान और ईमानदार नहीं होंगे और पढ़ाई गुणवत्तापूर्ण नहीं होगी, तबतक शिक्षा माफिया अपनी रोटी सेंकते रहेंगे, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा ही राज्य को नकल के कलंक से मुक्ति दिला सकती है। जिस बिहार में महात्मा बुद्ध को ज्ञान प्राप्त हुआ, आर्यभट्ट और राजेन्द्र प्रसाद जैसे उद्‌भट विद्वान एवं संविधान निर्माता का जन्म हुआ आज उस बिहार को शिक्षा की बदहाली के लिए शर्मसार होना पड़ रहा है जो चिंता का विषय है।

दुर्भाग्य है कि कुछ धनलोलुप व्यक्तियों ने बिहार की शैक्षिक चमक को न केवल निस्तेज कर दिया, बल्कि बिहार की इस पहचान पर ही चोट कर दी। यह तो कहिए कि यह अच्छा हुआ बच्चा राय, लालकेश्वर प्र. सिंह एवं उनकी पत्नी उषा सिन्हा सहित सभी प्रमुख आरोपी अब कानून के शिकंजे में हैं। अब नीति निर्धारकों को पूरी ईमानदारी एवं पारदर्शिता के साथ विचार करना चाहिए कि तंत्र में वे कौन सुराख थे जिनकी वजह से इतना बड़ा घोटाला परवान चढ़ गया? क्या इतने बड़े मेरिट घोटाले के लिए सिर्फ लालकेश्वर और बच्चा राय ही जिम्मेदार हैं? यह कैसी व्यवस्था थी, जिसे सिर्फ दो व्यक्तियों ने अपनी मुट्ठी में कैद कर लिया? बिहार जैसे शिक्षा-प्रिय राज्य के लिए इससे बड़ी त्रासदी क्या हो सकती है कि इतने बड़े मेरिट घोटाले के लिए शिक्षा-प्रणाली के साथ-साथ शिक्षा विभाग का पूरा तंत्र जिम्मेदार है। शिक्षा विभाग को अविलंब ये हालात बदलने के लिए मजबूत कार्य योजना बनानी चाहिए, ताकि बिहार के विद्यालय-महाविद्यालय अपने स्वर्णिम अतीत की राह पर लौट सकें और बिहार कम से कम शिक्षा के मामले में देश के श्रेष्ठतम राज्यों की पंक्ति में सीना तानकर फिर से खड़ा हो सके।

(१४)प्रश्न: क्या आपको ऐसा लगता है कि देश में शिक्षा के व्यावसायीकरण के विरोधी शिक्षकों ने ही सबसे पहले इसको व्यवसायिक रूप दिया? यदि हाँ, तो क्यों और कैसे?

उत्तर: हाँ, श्रद्धेय कैलाश चौधरी जी, मुझे भी ऐसा लगता है कि इस देश में शिक्षा के व्यवसायीकरण के विरोधी शिक्षकों ने ही सबसे पहले इसको व्यावसायिक रूप दिया, क्योंकि शिक्षकों ने ही विद्यार्थियों और अभिभावकों में कोचिंग करने और कराने की आवश्यकता उत्पन्न कर दी। उनके मन में प्रतियोगिता की भावनाएँ जगाईं। उनमें अयोग्य और अज्ञानी होने

का डर भर दिया। बड़े-बड़े बैनर, पोस्टर, पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित विज्ञापन में तस्वीरों के जरिए साधारण से साधारण क्षमता के बच्चों में भी वे चिकित्सक, अभियंता आदि बनने की चाह पैदा की।

गली-गली में खुले कोचिंग संस्थानों द्वारा विद्यार्थियों और अभिभावकों को डराया जाता है कि मौजूदा दौर डॉक्टर, इंजीनियर बनने की दौड़ में है। इस होड़ में योग्य से योग्य बच्चों को भी ऐसा लगने लगता है कि वे अपने आप से कुछ नहीं कर सकते, इसलिए कोचिंग की शरण में चले जाते हैं। योग्यता तो बहुतों के पास है, लेकिन कोचिंग में उन्हें प्रश्नों का हल करने की आसान ट्रिक सिखाई जाती है, जिससे वे दूसरों से बेहतर हल कर सकें। फिर क्या बच्चों के उज्ज्वल भविष्य का संपना संजोए अभिभावक आसानी से उनकी बात में आ जाते हैं और फिर कॉलेजों के शिक्षक भी तो ओभरटाइम में कोचिंग में क्लास लेकर पैसे कमाते हैं। यही कारण है कि पूरे देश में शिक्षा का व्यवसायीकरण हो गया और कोचिंग संस्थानों की भरमार है।

(१५)प्रश्नः इधर हाल के वर्षो में विद्यार्थियों खासतौर पर कोचिंग में शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों की आत्महत्या की खबरों से देश के लोगों का ध्यान विचलित हो रहा है। ऐसा क्यों?

उत्तरः हाँ, मैंने भी यह महसूस किया है कि इधर हाल के वर्षो में विद्यार्थियों की आत्महत्या खासतौर पर कोचिंग से जुड़े विद्यार्थियों की आत्महत्या की खबरों से देश के लोगों का ध्यान विचलित हो रहा है। आत्महत्या करने वालों में असफल के साथ-साथ सफल बच्चे, साधारण परिवार से लेकर संपन्न परिवार, गाँवों और कस्बों से लेकर बड़े शहरों के बच्चे शामिल हैं। और तो और राजस्थान का कोटा जहाँ के कोचिंग संस्थान विद्यार्थियों का प्रतियोगिता की तैयारी कराने में ख्याति प्राप्त कर चुके हैं में एक विद्यार्थी द्वारा आत्महत्या की खबर आने से लोग और विचलित हुए।

मुझे लगता है कि इस बढ़ती आत्महत्या के और कारण चाहे जो हों, मगर इसमें बच्चों के समाजीकरण प्रक्रिया जिसमें उनकी परवरिश, माता-पिता और समाज की भूमिका भी महत्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त कोचिंग संस्थानों के रवैये की भी अनदेखी नहीं की जा सकती। जिस पारिवारिक और सामाजिक परिवेश में बच्चों का बचपन बीतता है वहाँ कई बार बिना सिखलाए भी बच्चे प्रतिस्पर्धा, प्रतियोगिता, तुलना, हीनभावना, ईर्ष्या, द्वंद्व जैसे भावों, विचारों और व्यवहारों को देखते, समझते और सीखते हैं। उन्हें दिखता है कि अच्छे कपड़े, चमकती गाड़ियों और महंगे मोबाइल

रखने वालों की ही पूछ है, भले ही वे अच्छे इंसान न हों। उन्हें बचपन से ही यह सिखलाया जाता है कि ये सब कुछ उसी को मिलता है जिसने अच्छी पढ़ाई की हो। बालमन पर ये सारी चीजें प्रभाव डालती हैं और वे अपने आपको बाहरी दुनिया से अलग ही कैमरे में कैद कर लेते हैं। कैमरे में कैद होकर वे सोचते हैं कि बस दो ही साल की तो बात है, किसी तरह निकल जाएगा तो फिर सारी दुनिया उनकी मुट्ठी में होगी, लेकिन यदि उन्हें मनोनुकूल सफलता नहीं मिलती है, तो तनाव भी ऐसे ही बच्चों को अधिक होता है, जो उन्हें मानसिक रूप से बीमार बना देता है और उसी में से कुछ बच्चे आत्महत्या करने को मजबूर हो जाते हैं।

दरअसल, संतुष्टि की भी तो एक हद होनी चाहिए जो अक्सर नहीं होती है, क्योंकि कोई बच्चे कभी किसी से ऊपर होकर खुश होता है, तो कभी दूसरों को नीचे करके। मायने ये रखता है कि कोई कहाँ जाकर संतुष्ट होता है। समाजीकरण की इस प्रक्रिया में माता-पिता या अभिभावक की भी भूमिका बहुत अहम होती है। बच्चों के जन्म के साथ उनके सपने आकार लेने लगते हैं। अपने बच्चों को सफलता के सबसे ऊँचे सोपान पर देखने का सपना संजोने लगते हैं। साथ ही बच्चों के मन में भी अपने सपनों के बीज बोने लगते हैं। कई बार तो बच्चों पर वे ऐसे विषय थोप देते हैं, जिसके लिए न तो उनकी रुचि होती है, न ही योग्यता या क्षमता, साधारण परिवार के अभिभावक जो बड़ी मुश्किल से बच्चों को बाहर पढ़ने भेजते हैं, उनकी उम्मीदें कुछ ज्यादा ही रहती हैं, जिसे वे कई बार जाने या अनजाने बच्चों पर थोपते भी हैं। कई बार तो बच्चों की यह शिकायत रहती है कि उनके स्वास्थ्य, खान-पान आदि के बारे में न पूछकर उसकी पढ़ाई और क्लास में उसके रैंक और प्राप्तांक के बारे में माता-पिता पूछने लगते हैं। नए माहौल में तो वैसे भी तनाव, अकेलापन, खान-पान की असुविधा आदि की वजह से तो वे परेशान रहते ही हैं ऊपर से परिवारवालों की उम्मीदों और उसपर खरा न उतरने का डर भी बच्चों को बहुत प्रभावित करता है और रही-सही कसर कोचिंग संस्थानों और वहाँ के माहौल से निकल जाती है।

नया शहर, नया माहौल और विद्यार्थियों का हुजूम देखकर शुरू में ही कहीं खो जाने या पहचान खो जाने का डर बच्चों को सताने लगता है और उन्हें घुटन सी महसूस होने लगती है। क्लास में कुछ समझ में नहीं आने पर शिक्षक से पूछने की हिम्मत भी सभी बच्चों में नहीं होती। नीरस माहौल, पढ़ाई के लंबे फेरे, लगातार टेस्ट, मनोरंजन का अभाव, रिश्ते-नाते

और प्रकृति से दूरी, मानवीय मूल्यों की उपेक्षा और सिर्फ पढ़ाई में प्रदर्शन को महत्व देना बच्चों के मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करता है और विवश होकर बच्चे आत्महत्या कर लेते हैं। इसलिए बच्चों को अपने हिसाब से तैयारी करनी चाहिए और जो भी उपलब्धि हासिल करे उसी में खुशी ढूँढ़ने का प्रयास करना चाहिए, क्योंकि जीवन का असली आनंद हर पल को जीने में है।

राजस्थान के कोटा में पढ़ाई करने वाली बिहार के खगड़िया की एक तेज-तर्रार छात्र स्नेहा सुमन ने भी मेडिकल की तैयारी करने के दौरान टेस्ट में कम अंक पाने की वजह से अवसाद ग्रस्त हो गई और बाद में फिर उसने आत्महत्या कर ली। इसके पहले भी गोपालगंज की एक छात्र ने आत्महत्या कर ली थी।

(१६)प्रश्न: क्या आप भी इस बात से सहमत हैं कि इस देश के छात्रों का स्तर अपेक्षा से नीचे रहने की स्थिति के लिए केवल शिक्षक ही दोषी नहीं हैं, बल्कि विद्यालयों की लचर बुनियादी सुविधाएँ और शिक्षा नीति भी जिम्मेवार है? क्या भाषा का इस्तेमाल शिक्षा में वर्ग-विभेद को बढ़ाने के लिए हो रहा है या यह भाषा की राजनीति है?

उत्तर: हाँ, मैं भी इस बात से सहमत हूँ कि इस देश के छात्रों का स्तर अपेक्षा से नीचे रहने की स्थिति के लिए केवल शिक्षक ही नहीं, बल्कि विद्यालय की लचर बुनियादी सुविधाएँ तथा शिक्षा नीति भी जिम्मेवार है जैसा कि देष्ठा के शिक्षा-संबंधी अध्ययन और सर्वेक्षण भी इस ओर इंगित करते हैं। मौजूदा दौर में विद्यालयों के छात्रों का स्तर यह है कि पाँचवी-आठवीं के बच्चों को दूसरी-तीसरी के स्तर का ज्ञान भी नहीं होता। शिक्षा की गुणवत्ता व्यवस्था के कारण प्रभावित हुई है जिसके लिए कुछ हद तक शिक्षक भी इसलिए दोषी हैं, क्योंकि न तो उन्हें ढंग से प्रशिक्षण दिया जाता है और जिन शिक्षकों की नियुक्ति होती हैं उनमें से अधिकतर फर्जी प्रमाण-पत्र तथा डिग्री प्राप्त हैं। देश में शिक्षकों के लिए सपोर्ट सिस्टम का घोर अभाव है। करीब 92 फीसदी शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाएँ प्राइवेट सेक्टर में हैं, जहाँ की हालत बेहद खराब है।

देश में एक लाख से अधिक विद्यालय ऐसे हैं, जहाँ सिर्फ एक शिक्षक है। अधिकतर विद्यालयों में छात्र-शिक्षक अनुपात समुचित नहीं है। ऐसे में छात्रों का खराब प्रदर्शन एक स्वाभाविक परिणति है।

विद्यालय और छात्रों की बदहाली के लिए बहुत हद तक शिक्षा

नीति भी जिम्मेवार है। हमारे नीति-निर्माता जो पाठ्यक्रम बनाते हैं, वह बच्चों के सोचने-समझने की क्षमता के स्तर से मेल नहीं खाता। शिक्षक और पाठ्यक्रम में कोई तालमेल है कि नहीं, हमारे नीति-निर्माता यह भी नहीं समझ पाते। देश भर में यह शोध किए जाने की जरूरत है कि हर राज्य क्षेत्र विशेष में बच्चों के सोचने-समझने की क्षमता का स्तर क्या है। उस स्तर के आधार पर ही पाठ्यक्रमों का निर्धारण हो। इस शोध में आंचलिकता, भाषा, बोली, व्यवहार, माहौल आदि भी शामिल होने चाहिए।

इसके अतिरिक्त शिक्षक अपने काम से इसलिए संतुष्ट नहीं हो पाते, क्योंकि उन्हें शैक्षणिक सहयोग नहीं मिल पाता है। प्रशिक्षण के बाद उन्हें मार्गदर्शन की आवश्यकता है जो उन्हें नहीं मिल पाता है। नयी शिक्षा नीति के तहत स्कूली पाठ्यक्रम को बच्चों और शिक्षकों के अनुकूल बनाना होगा। बच्चों की भाषा-बोली पर विशेष ध्यान देना होगा और शिक्षकों को अकादमिक सहयोग देना होगा।

शिक्षा समाज, व्यक्ति और जीवन के व्यापक मूल्यों पर टिकी है। वैकल्पिक शिक्षा के अनेक मॉडल भी बने हैं, फिर भी हमारे देश में शिक्षा की दुर्गति होती रही है। यह शिक्षा वर्ग-विभेद और जाति-विभेद को मजबूत करने वाली रही है। शिक्षा के साथ एक बड़ा मसला भाषा का जुड़ा हुआ है। तकरीबन आधा भारत हिंदी क्षेत्र कहलाता है और इस क्षेत्र की विडंबना यह है कि भाषा का इस्तेमाल शिक्षा में वर्ग-विभेद को बढ़ाने के लिए हो रहा है। भाषा की यह राजनीति इतनी बारीकी से और इतने सुनियोजित रूप से काम करती है कि इसकी कोई काट इसके विरोधी भी नहीं ढूँढ़ पाते।

इसका स्पष्ट परिणाम यह होता है कि हिंदी प्रांतों के बहुसंख्यक छात्र जिनके घर, परिवेश, विद्यालय की भाषा हिंदी हैं, वे इस भाषा के सहारे अपने कैरियर में न तो बहुत आगे जा पाते हैं और न ही इस भाषा को छोड़कर किसी तरह से अँग्रेजी अपना लेने के बाद उसमें ही इतनी कुशलता हासिल कर पाते हैं कि वह उन्हें आगे के पायदानों पर मजबूती से स्थापित कर सकें। वे बेचारे भाषा की इस राजनीति को समझ ही नहीं पाते। विश्वशक्ति का दंभ भरने वाले हमारे राजनेताओं की स्थूलबुद्धि से यह बात बहुत परे रहती है कि विश्वशक्ति तो दूर आत्मशक्ति का अनुभव भी यह देश कर सके, इसके लिए पहली, बुनियादी और अनिवार्य शर्त यह है कि यह अपने नागरिकों को मातृभाषा की सीमाओं और हीन भावनाओं से मुक्त कर, उनके मस्तिष्क और दिमागों का स्वतंत्र विकास होने दे। इसी परिप्रेक्ष्य

में हिंदी की आग पर रोटी सेकने वाली छुटभैया राजनीति जन्म लेती है, जो खुद को अँग्रेजी साइनबोर्ड पोतने से लेकर हिंदी के नाम पर संस्थान बनाने, सरकारी निधि पाने या ऐसे ही न जाने किन-किन करतबों में मुब्तिला कर निजी लाभ का धंधा करती हैं। दरअसल, मुद्‌दा हिंदी के राष्ट्रभाषा, विश्वभाषा आदि बनने, न बनने का है ही नहीं। मुद्‌दा एक मात्र है कि हिंदी कम से कम हिंदी प्रदेशों में शिक्षा और उच्चतर शिक्षा का एकमात्र माध्यम हो, अँग्रेजी नहीं। यह आज इतना कठिन बना दिया गया है कि इसके बारे में सोचना तक मुनासिब नहीं लगता, पर भाषा-समस्या ही नहीं देश की प्रतिभा, विकास और समान अवसर के साथ सामाजिक समरसता के लिए यह पहला जरूरी काम है, जिसे करने की इच्छाशक्ति भारत में आज किसी दल के पास नहीं है। नतीजा आपके सामने है हिंदी या क्षेत्रीय भाषाओं के जानने वालों बच्चों के लिए अचानक से अँग्रेजी में विचारों को व्यक्त करना, पढ़ना, लिखना, समझना और बोलना मुश्किल हो जाता है, घुटन-सी होने लगती है। क्लास में कुछ समझ न आने पर शिक्षक से पूछने की हिम्मत भी सबको नहीं होती। देश के बुद्धिजीवियों और मनोवैज्ञानिकों को इस दिशा में सोचने को मजबूर कर दिया है।

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर और महात्मा गाँधी का भी विचार था कि स्कूलों में शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होनी चाहिए। बच्चों को किस भाषा में शिक्षा दी जाए, यह समस्या भी हमारे समक्ष बहुत लंबे समय से लंबित है। सबसे बड़ी बात तो यह कि हमारा देश एकमात्र ऐसा देश है जिसका अभिजात्य वर्ग ऐसी भाषा बोलता है जो विदेशी है और हमारे सामने एक सवाल यह भी खड़ा है कि बच्चों का यह विदेशी भाषा अँग्रेजी पढ़ाएगा कौन, क्योंकि भारत में बहुत कम लोग हैं, जो पढ़ा सकने लायक अँग्रेजी जानते हैं।

(१७)प्रश्न: आप बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के अध्यक्ष रहे हैं, इस नाते क्या बचपन की मासूमियत बचाने के लिए बच्चों के कंधों पर लादे जाने वाले भारी भरकम बस्तों के बोझ से छुटकारा पाने की दिशा में ठोस कदम उठाने की जरूरत आप महसूस करते हैं?

उत्तर: हाँ, प्रो. पी. लता जी, आपने ठीक कहा बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के अध्यक्ष रहने के नाते मैं भी यह महसूस करता हूँ कि बचपन की मासूमियत बचाने के लिए बच्चों के कंधों पर लादे जाने वाले भारी-भरकम बस्तों के बोझ से छुटकारा पाने की दिशा में ठोस कदम उठाने की जरूरत

है। आपको याद दिलाऊँ कि एक समय प्रख्यात शिक्षाविद् प्रो. यशपाल की अध्यक्षता में बनी समिति ने भी शुरुआती कक्षाओं में बच्चों को बस्ते के बोझ से मुक्त करने की सलाह दी थी, क्योंकि बच्चों के कंधों पर लादे जाने वाले भारी-भरकम बस्तों के बोझ का उनकी पढ़ाई-लिखाई की गुणवत्ता से कोई सीधा संबंध नहीं पाया गया था। समिति ने पाया था कि बस्ते का बोझ बच्चे की शिक्षा, समझ और उनके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डाल रहा है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि बस्तों के भारी वजन और होमवर्क के बोझ के चलते बच्चों को कई तरह का शारीरिक-मानसिक परेशानियों से दो-चार होना पड़ता है। आखिर तभी तो महाराष्ट्र के चंद्रपुर कस्बे के एक विद्यालय के सातवीं कक्षा के दो छात्रों ने शिकायत की कि उन्हें सात-आठ किलो वजन तक की किताबें रोजाना अपने घर से पाँच किलोमीटर चलकर स्कूल की तीन मंजिल की कक्षा तक ले जानी पड़ती है। उन छात्रों ने अपने बस्ते का बोझ कम करने को लेकर प्रधानाचार्य से भी कहा, लेकिन उनकी बात पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। इन बच्चों की शिकायत पर पूरे देश को गौर करना चाहिए, क्योंकि बच्चे वास्तव में स्कूली बस्तों के बोझ से त्रस्त हैं। बाल मनोविज्ञान से जुड़े अध्ययन भी बताते हैं कि चार साल से लेकर 12 साल तक की उम्र के बच्चों के व्यक्तित्व का स्वाभाविक विकास होता है। इस अवस्था में बच्चों के विकास के लिए किताबी ज्ञान की तुलना में भावनात्मक सहारे की ज्यादा जरूरत होती है और खेल-खेल में सिखाने की विधि से बच्चों की प्रतिभा अधिक मुखरित होती है।

इसी प्रकार कुछ समय पहले कई बड़े महानगरों में एसोचैम की ओर से दो हजार बच्चों पर किए गए एक सर्वे से स्पष्ट हुआ था कि पाँच से बारह वर्ष की आयु वर्ग के 82 प्रतिशत बच्चे बहुत भारी स्कूल बस्ता ढोते हैं। सर्वे ने यह भी साफ किया था कि दस साल से कम उम्र के लगभग 58 प्रतिशत बच्चे हल्के कमर दर्द के शिकार हैं। हड्डी रोग विशेषज्ञ भी मानते हैं कि बच्चों के लगातार बस्तों के बोझ सहन करने से उनकी कमर की हड्डी टेढ़ी होने की आशंका रहती है। एक मामले में मानवाधिकार आयोग का भी कहना था कि निचली कक्षाओं के बच्चों के बस्ते का वजन साढ़े तीन किलो से अधिक नहीं होना चाहिए। स्कूली बच्चों की इसी समस्या को ध्यान में रखते हुए ठाणे नगर निगम ने विद्यालयों में पहली और दूसरी कक्षा के विद्यार्थियों के लिए सभी की डेस्क में एक लॉकर की व्यवस्था की थी, ताकि बच्चों को बस्ते लादने से छुटकारा मिल जाए। इसीलिए बच्चों में

सीखने की क्षमता के सहज विकास के लिए कम उम्र के बच्चों के साथ बहुत संवेदनशील तरीके से पेश आने की जरूरत है।

(१८)प्रश्न: क्या आपको ऐसा नहीं लगता है कि जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय जैसे एक प्रतिष्ठित शैक्षणिक संस्थान में वर्ष २०१६ के विजयादशमी के दिन देश के प्रधानमंत्री का रावण की तरह पुतला जलाने की ऐसी घटना छात्र संघ राजनीति शैक्षणिक वातावरण का प्रदूषण है?

उत्तर: डॉ. आनंदवर्द्धन जी, निश्चित रूप से दिल्ली स्थित जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय जैसे अंतरराष्ट्रीय स्तर के एक प्रतिष्ठित शैक्षणिक संस्थान में विजयादशमी के दिन प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी का रावण की तरह पुतला जलाने की घटना को न केवल छात्रसंघ राजनीति की वजह से शैक्षणिक वातावरण का प्रदूषण कहा जाएगा, बल्कि शर्मनाक भी है जिसकी कोई देशवासी कल्पना भी नहीं कर सकते। स्पष्ट है कि इस घटना के पीछे एक खास मुहिम है जो गत 2015 में तिरंगा, कश्मीर की आजादी और अफजल गुरु की फाँसी के विरोध के साथ शुरू हुई। इस अशोभनीय घटना से तो ऐसा लगता है कि छात्रों के लिए राजनीति पहले और शिक्षा बाद में है। जरा आप याद करें नरेन्द्र मोदी का पुतला रावण की तरह जलाकर जेएनयू छात्र संघ चुनाव में अध्यक्ष पद के पराजित एनएसयूआई उम्मीदवार सन्नी धीमान ने जोर देकर कहा कि, 'हमने दशहरे को 'असत्य पर सत्य की जीत' के रूप में मनाया है।' गत वर्ष जेएनयू छात्र संघ के पूर्व अध्यक्ष कन्हैया कुमार प्रकरण के बहाने जिस तरह राहुल गाँधी और माकपा नेता सीताराम येचूरी ने जेएनयू को अपनी सियासी राजनीति का मोहरा बनाया, वे सभी अशोभनीय घटना पर बगल से निकल गए।

दरअसल, जेएनयू छात्र संघ अपनी उदंडता और उच्छृंखलता के लिए मशहूर है, आखिर तभी तो वर्ष 2007-08 में दो साल तक सीधे सर्वोच्च न्यायालय को हस्तक्षेप करके चुनाव स्थगित करना पड़ा था, क्योंकि छात्र नेताओं ने उच्चतम न्यायालय द्वारा गठित लिंगदोह कमिटी की चुनाव आचार संहिता मानने से यह कहकर इनकार कर दिया था कि 'जेएनयू की अपनी अलग आचार संहिता' है। उसका एक नमूना फिर 'पुतला दहन' के रूप में आया है।

गंभीर चुनौतियों के बावजूद भारतीय लोकतांत्रिक व्यवस्था में राजनीतिक दलों एवं उसके नेताओं ने बार-बार देश को आगे बढ़ने में, विरोधाभासी स्वरों

को सुर देने में और गरीबों को हाशिए पर जाने से रोकने में कुछ सफलता पाई है। आज देश उस मोड़ पर खड़ा है, जहाँ हमें कुछ ठोस और कड़े निर्णय लेने ही होंगे, क्योंकि आज जहाँ एक ओर हमारे सामने चीन और पाकिस्तान जैसे पड़ोसी देशों ने बाहरी चुनौतियाँ खड़ी कर दी हैं, वहीं दूसरी ओर हमारी आंतरिक चुनौतियाँ भी हैं जो साफ दिखने वाला वर्तमान का खतरा है।

अभी पिछले दिनों जेएनयू के छात्र नसीब अहमद के गायब होने और उसे वापस लाने के लिए कुलपति सहित अन्य प्रशासनिक अधिकारियों को बंधक बनाने की घटना के चलते राजनीतिक टकराव की वजह से कई दिनों तक वहाँ पढ़ाई बाधित रही। जेएनयू में पहले भी विवाद और राजनीति चलती थी, लेकिन ऐसा कभी नहीं हुआ, जैसा पिछले सालभर से हो रहा है। विश्वविद्यालय न सिर्फ दो विचारधाराओं के तीखे विवाद और कब्जे की लड़ाई में उलझ गया है, बल्कि वहाँ का गंभीर और शांत अकादमिक जगत अभूतपूर्व खूनी संघर्ष का भी शिकार हो रहा है, यह राष्ट्रीय शर्म की बात है कि लोग इस देश के ज्ञान के भविष्य को भी दांव पर लगा रहे हैं।

(१९)प्रश्नः क्या मात्र शैक्षिक डिग्रियों से जीवन प्रवाह सुचारू रूप से प्रवाहित हो सकता है? आखिर क्यों?

उत्तर: नहीं, मात्र शैक्षिक डिग्रियों से जीवन प्रवाह सुचारू रूप से प्रवाहित नहीं हो सकता है, क्योंकि एक अदद खूबसूरत-सी डिग्री प्राप्त हो जाने से ही शिक्षा के उद्येश्यों की पूर्ति नहीं हो जाती है। इस संदर्भ में मनुष्य के सर्वांगीण विकास के लिए भौतिक शरीर, मन और चेतना का विकास जरूरी है। स्वयं को परिग्रह, दूसरों के शोषण, असहिष्णुता, असहजता, धर्मांधता, अँधविश्वास और आडंबर से मुक्त कर लेना ही शिक्षित होना है। स्वयं में दूसरों के दुख-दर्द के प्रति संवेदनशीलता उत्पन्न करना ही शिक्षा है। वर्तमान दौर में अक्षर-ज्ञान और बौद्धिकता के आधिक्य की वजह से ही व्यक्ति अधिकाधिक अहंकारी होता जा रहा है। वस्तुत: यदि हम शिक्षित होते, तो हमारा दंभ बढ़ने की अपेक्षा कम होता जाता।

कहा गया है 'सा विद्या या विमुक्तये'। अर्थात जो हमें मुक्त करे, वही विद्या है। मुक्ति से तात्पर्य है अज्ञान अथवा अशिक्षा से मुक्ति, नकारात्मक भावों से मुक्ति। नकारात्मक भावों से मुक्त होकर आत्मविकास करना, दूसरों के विकास में बाधा न बनते हुए स्वयं का विकास ही शिक्षा है। दरअसल, शिक्षा वास्तव में बाह्य परिवर्तन नहीं, अपितु आंतरिक

परिवर्तन है। शिक्षा मनुष्य का रूपांतरण है। मनुष्य के बाह्य विकास एवं वास्तविक शिक्षा प्राप्ति के लिए साक्षरता तथा औपचारिक शिक्षा में पूर्ण संतुलन उत्पन्न करके हम सही अर्थों में शिक्षित होने की दिशा में अग्रसर हो सकते हैं और अपना सर्वांगीण विकास कर सकते हैं।

(२०)प्रश्नः क्या आपको ऐसा लगता है कि नालंदा अंतरराष्ट्रीय विश्वविद्यालय की असली लाइलाज बीमारी सरकारी हस्तक्षेप की है, जो उसकी स्वायत्तता का गला घोटती है?

उत्तरः हाँ, मुझे भी ऐसा लगता है कि बिहार के नालंदा जिला स्थित नालंदा अंतरराष्ट्रीय विश्वविद्यालय, नालंदा की असली लाइलाज बीमारी सरकारी हस्तक्षेप की है, जो उस स्वायत्तता का गला घोटती है, जिसके बाद न तो मौलिक शोध संभव है और न ही बेहतरीन पढ़ाई। दिल्ली स्थित जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय हो या कोई दूसरा केंद्रीय विश्वविद्यालय सब इसी के शिकार हैं। आज देश की प्रतिभा को कुंठित करने के लिए न तो प्राचीन नालंदा विश्वविद्यालय को बरबाद करने वाले किसी विदेशी हमलावर की जरूरत है और न मैकाले जैसे मक्कार की।

आप इस बात से अवगत होंगे कि जिस वक्त यूरोप के देश्ा अंधविश्वास की बेड़ियों में जकड़े थे और लगभग पूरी आबादी निरक्षर थी, उस वक्त भारत के बिहार राज्य में नालंदा स्थित नालंदा विश्वविद्यालय स्थापित हो चुके थे, जिसकी ख्याति दुनिया भर में थी। यहीं बरसों रहकर चीनी यात्री ह्वेनसांग ने बौद्ध दर्शन का अध्ययन किया था और इसी यात्रा वृतांत से हमें नालंदा के गौरवपूर्ण अतीत का पता चलता है और जिसका खंडहर इस बात का साक्षी है कि नालंदा की यह विरासत कितनी गौरवमयी थी। दुर्भाग्यवश बाद की सदियों में धर्मांध विदेशी आक्रमणकारियों ने नालंदा विश्वविद्यालय को नष्टकर खंडहर में बदल दिया।

बरसों से नालंदा के इस प्राचीन विश्वविद्यालय के पुनर्जन्म का सपना देखा जा रहा था, जो मौलिक शोध और सभी विषयों में उत्कृष्टता स्तरीय शिक्षण-प्रशिक्षण की सुविधा से संपन्न हो। अंततः केंद्र सरकार और अंतरराष्ट्रीय संहयोग के साथ-साथ बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार की सदिच्छा व दिलचस्पी से यह पहल की गयी और जब प्राचीन नालन्दा विश्वविद्यालय की तर्ज पर नालन्दा अंतरराष्ट्रीय विश्वविद्यालय की स्थापना की गई, तो लोगों में उत्साह की लहर दौड़ गई।

दरअसल, केंद्र सरकार के द्वारा बिहार सरकार के पूरे समर्थन के

बाद जब नए नालंदा विश्वविद्यालय की स्थापना की गई, तब से इसकी कुलपति डॉ. गोपा सबरवाल की नियुक्ति को लेकर विवाद खड़ा हो गया, जबकि इसके सलाहकार मंडल में भारत के पूर्व राष्ट्रपति डॉ. ए. पी. जे. अब्दुल कलाम, नोबल पुरस्कार विजेता अमर्त्य सेन, लार्ड मेघनाथ देसाई सरीखे विद्वानों के साथ-साथ सिंगापुर, जापान, थाइलैंड, श्रीलंका आदि के सुप्रसिद्ध विद्वानों को शामिल किया गया था। मगर फिलहाल जिस विवाद के चलते इस विश्वविद्यालय के अस्तित्व पर ही सवाल खड़ा हो गया है वह यह कि बिना वर्तमान कुलपति को कोई सूचना दिए केंद्र सरकार ने इसके गर्वनिंग बोर्ड का ऐसा पुनर्गठन किया है कि कुलपति को त्याग देने के लिए मजबूर होना पड़ा। और हो भी क्यों नहीं जब पद त्याग करने वाले कुलाधिपति जार्ज यो सिंगापुर के विदश मंत्री रह चुके हों, तो उनकी भावना को ठेस लगना स्वाभाविक है। यही नहीं केंद्र सरकार ने अमर्त्य सेन का कार्यकाल नहीं बढ़ाने में भी कुलपति की सलाह नहीं ली गई। जाहिर है कि कोई भी स्वाभिमानी व्यक्ति इस व्यवहार से खिन्न होगा। चूँकि संयोजन की जिम्मेदारी विदेश मंत्रालय को सौंपी गई है, तो कम-से-कम शिष्टाचारवश कुलपति की जानकारी में तो परिवर्तन की जानकारी दी जानी चाहिए थी, मगर ऐसा लगता है कि नौकरशाही चूँकि खुद को सर्वोपरि रखने की साजिश में लगी रहती थी उसी का नतीजा था कि यह विवाद कुछ इन्हीं सब कारणों से पिछले पाँच छह वर्षो के दौरान सरकारी समर्थन के बावजूद न तो इस विश्वविद्यालय में छात्रों को आकर्षित किया जा सका है और न ही प्राध्यापकों को जो इसकी गरिमा को देखते हुए चिंता का विषय है। इसलिए इस नए नालंदा विश्वविद्यालय की असली लाइलाज बीमारी सरकारी हस्तक्षेप की है, जो उसके स्वायत्तता का गला घोटती है जिसके बाद न तो मौलिक शोध संभव है और न ही बेहतरीन पढ़ाई।

नालंदा परंपरा से मतलब है उदारता, बहुलता और ज्ञान के लिए अन्वेषण पर जोर। नालंदा विश्वविद्यालय दुनिया की विभिन्न सभ्यताओं में समन्वय को आगे बढ़ाने में बड़ा मंच बन सकता है। ऐसा केंद्र बनकर विश्वविद्यालय वैश्विक समस्याओं को हल करने के सूत्र ढूँढ़ने में मददगार हो सकता है। इस दृष्टि से इसे आत्मविश्वविद्यालय बना देने से यह अपने उद्येश्य से भटक जाएगा।

(२१)प्रश्नः क्या आपको ऐसा लगता है कि प्राथमिक शिक्षा पूरी तरह अनियंत्रित एवं अराजक हो चुकी है? ऐसा क्यों?

उत्तर: हाँ, मुझे भी ऐसा लगता है कि प्राथमिक शिक्षा पूरी तरह अनियंत्रित एवं अराजक हो चुकी है, क्योंकि एनुयल स्टेटस एंड एजुकेशन रिपोर्ट तो कम-से-कम अपने सर्वेक्षण में यहीं निष्कर्ष निकाला है जिसका प्रभाव माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा के स्तर पर भी पड़ना स्वाभाविक है। कटुसत्य तो यह है कि सरकारी विद्यालयों का एक मात्र आकर्षण मध्याह्न भोजन है जिसकी वजह से साधनहीन परिवार के बच्चे विद्यालय जाते हैं, मगर इन बच्चों को विद्यालयों में पठन-पाठन का माहौल नहीं मिलता। दरअसल उनका ध्यान तो केवल मध्याह्न भोजन पर रहता है। विद्यालयों में संसाधन तथा नियोजित शिक्षकों की नियुक्ति के बाद भी व्यवस्था इतनी लचर है कि किसी भी स्तर पर किसी की जवाबदेही निर्धारित नहीं है जिसके परिणामस्वरूप विद्यालयों में पढ़ने वाले बच्चों की असली संख्या का न पता है और न उनके आने-जाने के समय का। इसी प्रकार परीक्षा परिणाम कैसा रहा, इसे जानने की न तो किसी ने परवाह की और पूछने पर ना ही जवाब मिलते हैं। जाहिर है कि प्राथमिक शिक्षा को बदहाली से निकालने के लिए दृढ़ राजनीतिक इच्छाशक्ति आधारित 'बड़ा आपरेशन' जरूरी है। साथ ही प्राथमिक शिक्षकों को खुद भी विचार करना चाहिए कि अपनी अकर्मण्यता से वे किस तरह का नुकसान और बदनामी कर रहे हैं। उम्मीद की जाती है कि एनुयल स्टेटस एंड एजुकेशन रिपोर्ट के सर्वेक्षण निष्कर्ष पर शिक्षा विभाग और शिक्षकों की संजीदगी दिखेगी।

(२२)प्रश्नः लालकेश्वर से लेकर परमेश्वर तक के टॉपर्स घोटाले और नियुक्ति घोटाले, एएनएम बहाली घोटाले सामने आने से क्या उन हजारों-लाखों नौजवानों के सपने चकनाचूर नहीं हो जाते हैं जो सुदूर गाँवों से आकर अभाव के बीच राजधानी पटना में बेहतर जिंदगी की आस में वर्षो से जी-तोड़ मेहनत कर रहे हैं? आखिर कैसे?

उत्तर: हाँ, बिहार विद्यालय परीक्षा समिति के अध्यक्ष पद पर रहे लालकेश्वर प्रसाद सिंह तथा बिहार कर्मचारी चयन आयोग (बीएसएससी) के सचिव परमेश्वर राम से जुड़े नियुक्ति तथा फिर एएनएम घोटाले के सामने आने पर उन हजारों-लाखों नौजावानों के सपने चकनाचूर हो जाते हैं, जो सुदूर गाँवों से आकर अभाव के बीच राजधानी पटना में बेहतर जिंदगी की आस में वर्षो से जी-तोड़ मेहनत कर रहे हैं। बेहतर कोचिंग की आस

तो सपना है। अगर उनके पास कुछ है तो वो है उनकी मेहनत, लेकिन जब-जब टॉपर्स घोटाले और बीएसएससी घोटाले सामने आते हैं, तो न केवल उनके सपने-चकनाचूर हो जाते हैं, बल्कि उनका जीवन लक्ष्यविहीन हो जाता है। जद्दोजहद. और संघर्ष से गुजर रहे बेरोजगार नौजवानों के काफी परिश्रम करने के बाद जब घोटाले सामने आते हैं, तो उनका हौसला टूटने लगता है कि ऐसी मेहनत से क्या फायदा! क्यों इसी दिन के लिए वे दिन-रात एक कर रहे हैं? ऐसे में राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' की निम्न पंक्तियाँ इन बेरोजगार मेहनतकश नौजवानों पर सटीक बैठती हैं-

'मानव जब जोर लगाता है, पत्थर पानी बन जाता है।'

(२३)प्रश्नः बिहार की राजधानी पटना के जिलाधिकारी आवास से सटे वर्षो पुराने प्रतिष्ठित सेंट जेवियर स्कूल की दो शिक्षिकाओं द्वारा पाँच साल की बच्ची के साथ अप्राकृतिक यौनाचार की आश्चर्यजनक घटना क्या हैवानियत की सारी हदें नहीं पार कर गई? इस तरह से घिनौने कृत्य करने वाली शिक्षिकाओं को कठोर से कठोर सजा नहीं मिलनी चाहिए?

उत्तरः पटना के जिलाधिकारी आवास से सटे प्रतिष्ठित सेंट जैवियर स्कूल में एक मासूम बच्ची से दो शिक्षिकाओं द्वारा अप्राकृतिक यौनाचार के वक्त हैवानियत की हदें पार करना किसी भी कीमत में माफी योग्य नहीं है, बल्कि ऐसी शिक्षिकाओं को कड़ी-से-कड़ी सजा मिलनी चाहिए। पहले तो यह घटना सुनकर ही लोगों को आश्चर्य हुआ है कि एक तो शिक्षा के मंदिर में ऐसे घृणित कृत्य किए गए और दूसरे कि दो शिक्षिकाओं द्वारा। कहा जाता है कि ये दोनों शिक्षिकाएँ बिहार के बाहर की हैं।

चिकित्सा जाँच में यह पुष्टि हो चुकी है कि पाँच साल की बच्ची जो एल.के.जी. की छात्र हैं, के साथ अप्राकृतिक यौनाचार किया गया और उसके नाजूक अंगों को इस कदर चोट पहुँचाई गई कि वह ठीक से चल फिर नहीं सकती। इस स्कूल के बारे में अभी तक आमधारणा यह रही है कि अभिभावकों के साथ इनका व्यवहार भले सख्त हो, पर बच्चों को यहाँ अनुशासन सिखाया जाता है और पढ़ाई के प्रति यहाँ के शिक्षक-शिक्षिकाएँ सरकारी स्कूलों से कहीं ज्यादा संजीदा हैं, मगर इस कुकृत्य और वह भी शिक्षिकाओं द्वारा की गई घटना से मिशनरी स्कूलों की साख को जबर्दश्त बट्टा लगा है। आमतौर पर मिशनरी स्कूलों के खिलाफ कोई अभिभावक शिकायत को लेकर आगे नहीं आते, परंतु किसी मामले में पानी जब सिर

से उपर आने लगता है तो बात बढ़ जाती है। इस मामले में तो खैर एक पुलिस अधिकारी की बच्ची के साथ यह घटना घटी।

यौन शोषण के इस मामले में पॉक्सो एक्ट में प्राथमिकी दर्ज होने के बाद आरोपी शिक्षिकाओं की गिरफ्तारी की गई और पुलिस ने दोनों शिक्षिकाओं को हिरासत में लेकर पूछताछ के बाद जेल तो भेज दिया है, पर घटना का कारण स्पष्ट नहीं हो सका है। कायदे से स्कूल प्रबंधन को आगे आकर पुलिस को सहयोग करना चाहिए जिससे भविष्य में स्कूल की प्रतिष्ठा बची रह सके, किंतु शिक्षिकाओं पर अबतक निष्कासन की कोई कार्रवाई नहीं की गई है। ऐसा लगता है कि चूँकि इस घटना में स्कूल के वाइस प्रिंसिपल और प्रिंसिपल तक संदेह के दायरे में आ चुके हैं और इस मामले बड़ी-से--बड़ी पैरवी की बात भी सुनी जा रही है।

अप्राकृतिक यौनाचार की शिकार मासूम बच्ची ने अदालत में दर्ज बयान में दोनों मैडम द्वारा अक्सर मीठी गोली खिलाने का बयान भी आया है। मासूम के साथ शिक्षिंकाओं ने इस तरह की अश्लील हरकत क्यों की? इस सवाल का जवाब ढूँढ़ने की बजाय कुछ लोग आरोपियों को बचाने में जुटे हैं यहाँ तक कि उपप्राचार्य एवं प्राचार्य को बचाने के लिए राजनीतिक पैरवी भी की जा रही है।

आज स्कूल के जो शिक्षक-शिक्षिकाएँ छात्र-छात्राओं की मार्गदर्शक होती हैं, वहीं जब भक्षक हो जाएँ, तो भगवान ही मालिक! इसी स्कूल में 11 अगस्त, 2016 को भी क्लास 8 में पढ़ने वाली 14 साल की एक लड़की के साथ भी अश्लील हरकतें की गई थीं, जिसमें इसी स्कूल के दो लड़के भी शामिल थे। एफआइआर भी दर्ज है, मगर आजतक पुलिस द्वारा कोई कार्रवाई नहीं की गई है। स्कूल प्रशासन कतई नहीं चाहता कि इस पूरे मामले की गहराई से जाँच हो इसलिए वह इसे शांत करने के जद्योजहद में लग गया है, जबकि होना तो यह चाहिए था कि आरोपियों पर कड़ी-से-कड़ी सजा दिलाने की कोशिश की जाए।

(24)प्रश्न: आखिर किस वजह से हमारे विश्वविद्यालय परिसर रह-रहकर अराजकता और अव्यवस्था से घिर रहे हैं? यह कैसा समाज बन रहा है कि हर कहीं और यहाँ तक कि शैक्षिक परिसरों में भी छात्र-छात्राओं की सुरक्षा का सवाल गंभीर रूप लेता जा रहा है?

उत्तर: हमारे विश्वविद्यालय परिसर रह-रहकर अराजकता और अव्यवस्था से घिर रहे हैं जिसका और कारण चाहे जो हो विश्वविद्यालय के जिम्मेदार

लोगों का गैर-जिम्मेदाराना रवैया भी एक प्रमुख कारण है। अभी-अभी पिछले दिनों बनारस हिंदू विश्वविद्यालय जो देश भर में अपनी पहचान और प्रतिष्ठा रखने वाला विश्वविद्यालय है, एक बार फिर अप्रिय कारणों से चर्चा में है। अगर विश्वविद्यालय वार्डन ने छेड़खानी से क्षुब्ध छात्राओं की शिकायत पर तनीक भी संवेदनशीलता दिखाई होती तो शायद बात आगे नहीं बढ़ती, लेकिन वार्डन ने छात्राओं की सुरक्षा की अनदेखी ही नहीं की, बल्कि उनसे यह बेजा सवाल भी किया कि आखिर वे बाहर क्या रही थीं? इसके बाद जब छात्राओं ने कुलपति से मिलने की इच्छा जताई और प्रयास किया तो पता नहीं क्यों उन्होंने उन छात्राओं से मिलने से इनकार कर दिया? यह समझना कठिन है कि कुलपति महोदय को उद्वेलित छात्राओं से मिलने में क्या परेशानी थी? आखिर किसी कुलपति को अपने विश्वविद्यालय की छात्र-छात्राओं से मिलने में क्यों परेशानी होनी चाहिए? जरूरी केवल यह नहीं है कि ऐसे सभी सवालों के जवाब सामने आएँ, बल्कि यह भी देखा जाना चाहिए कि नाराज छात्राएँ जब धरने पर बैठीं तो उनके बीच तिल का ताड़ बनाने वाले तत्व कैसे सक्रिय हो गए। दरअसल, इसी वजह से राजनीतिक रोटियाँ सेकने वालों को खुलकर खेलने का मौका मिल गया। इस कारण भी हमारे विश्वविद्यालय परिसर रह-रहकर अराजकता और अव्यव्यस्था से घिर रहे हैं। अब वे पठन-पाठन को केंद्र कम राजनीति का अखाड़ा अधिक बन रहे हैं। नि:संदेह विश्वविद्यालयों में छात्रों को पढ़ाई के साथ और भी बहुत कुछ सीखने-समझने की जरूरत है, इस जरूरत के नाम पर उन्हें राजनीतिक दलों के कार्यकर्ता के तौर पर तब्दील करने की इजाजत नहीं दी जा सकती।

मुझे लगता है कि अब इस पर भी विचार किए जाने की आवश्यकता है कि विश्वविद्यालय परिसर में उनकी सुरक्षा के लिए अतिरिक्त कदम क्यों उठाने पड़े रहे हैं। चाहे नई दिल्ली स्थित जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय हो या पटना स्थित पटना विश्वविद्यालय का पटना कॉलेज आए दिन उसके परिसर में छात्र-छात्राओं के बीच झड़प ही नहीं पिस्तौल-बंदूकें एवं बम की आवाजें सुनाई पड़ती हैं। इन घटनाओं से तो इस नतीजे पर पहुँचा जा सकता है कि आखिर यह कैसा समाज बन रहा है कि हर कहीं और यहाँ तक कि शैक्षिक परिसरों में भी छात्र-छात्राओं की सुरक्षा का सवाल गंभीर रूप लेता जा रहा है।

आश्चर्य तो यह है कि बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के कुलपति शिकायत सुनने तक को राजी नहीं हुए तो छात्राओं के आंदोलन को इसे

अनसुनी परिणति कहा जा सकता है। आवश्यकता इस बात की थी कि छात्राओं की शिकायतों की जाँच होती और दोषियों को दंडित किया जाता, लेकिन इसकी बजाय छात्राओं की स्वाभाविक माँग पर अंकुश लगाना और शक्ति के बल पर उन्हें सबक सिखाने का प्रयत्न निश्चित रूप से अन्याय की श्रेणी में आएगा। छात्राओं का परिसर में छेड़छाड़ को लेकर आवाज उठाने के बाद से जो द्वंद्व मचा, उस सिलसिले में संवेदनशील कदम उठाने की जरूरत थी, लेकिन आंदोलन को सुरक्षा बलों की शक्ति से समाप्त करने का प्रयत्न किया गया जिसका कोई औचित्य मुझे नहीं लगता।

23 सितम्बर, 2017 को बनारस हिंदू विश्वविद्यालय परिसर में हुए बबाल की नैतिक जिम्मेदारी लेते हुए चीफ प्रोक्टर प्रो. ओ. एन. सिंह के इस्तीफे के बाद चिकित्सा विज्ञान संस्थान के एनाटॉमी विभाग की प्रो. रॉयना सिंह को नई चीफ प्रोक्टर बनाया गया है जो बीएचयू के इतिहास में बड़ी इबारत इसलिए लिख दी है, क्योंकि करीब 100 साल के स्थापना काल में बीएचयू को पहली महिला प्रॉक्टर मिली है। उम्मीद की जाती है भारत की सुरक्षा मंत्री निर्मला सीतारमण की तरह प्रो. रॉयना भी अपनी काबिलियत का परिचय देंगी।

(२५)प्रश्न: प्राचीन काल में भारत की जिस विश्व गुरु के रूप में छवि थी, वह बिहार के किन-किन प्राचीन विश्वविद्यालयों की वजह से थी और क्यों थी?

उत्तर: प्राचीन काल में भारत की जिस विश्व गुरु के रूप में छवि थी उसका एक अहम हिस्सा बिहार के प्राचीन नालंदा विश्वविद्यालय तो रहा ही है नालंदा विश्वविद्यालय से कुछ ही दूरी पर अवस्थित उदंतपुरी विश्वविद्यालय, बिहार शरीफ, नवादा के अपसढ़ में धार्मिक विश्वविद्यालय, भागलपुर में विक्रमशिला विश्वविद्यालय को भी इस कड़ी का हिस्सा माना जाता था।

बिहार के नालंदा जिलांतर्गत प्राचीन नालंदा विश्वविद्यालय का अतीत काफी गौरवशाली रहा है। चीनी यात्री ह्वेनसांग के मुताबिक यहाँ बौद्ध धर्म के अलावा वेद, हेतु विद्या, शब्द विद्या, चिकित्सा योग, तंत्र विद्या, सांख्य दर्शन का अध्यापन इन पर शोध होता था। इसकी स्थापना कुमार गुप्त ने की थी। 823 साल पहले तक नालंदा शिक्षा का विश्वविख्यात केंद्र था। जाहिर तौर पर ऑक्स्फोर्ड और कैम्ब्रिज विश्वविद्यालयों की जब स्थापना की जा रही थी, उस वक्त तक नालंदा विश्वविद्यालय पूरी दुनिया में विख्यात हो चुका था। इस विश्वविद्यालय में करीब 2 हजार शिक्षक व 10 हजार विद्यार्थी थे।

चीन, मंगोलिया, तुर्की, जापान समेत कई एशियाई देशों के विद्वान यहाँ आते थे, लेकिन 1193 में जब मुहम्मद बिन बख्तियार खिलजी ने इसे नष्ट कर दिया, तब से यह अतीत बनकर रह गया। नालंदा जिले के एकंगरसराय के तेल्हाड़ा में हुई खुदाई में से भी प्राचीन नालंदा विश्वविद्यालय का अवशेष एक महाविहार के रूप में मिला है। यह बौद्ध की महायान शाखा की पढ़ाई के लिए यह एक बड़ा केंद्र माना जाता था। इसी प्रकार नवादा के अपसढ़ में धार्मिक विश्वविद्यालय को तक्षशिला के समकालीन माना जाता रहा है। भागलपुर के विक्रमशिला विश्वविद्यालय भी तंत्रवाद की शिक्षा के लिए ख्यात था। इसे पालवंश के राजा धर्मपाल ने स्थापित किया था। बिहार के जिस विश्वविद्यालयों को लेकर एक समय भारत विश्वगुरु के रूप में छवि थी, आज वही बिहार गरीबी और पिछड़ापनवाला प्रदेश बन गया है। अतीत चाहे जितना भी गौरवशाली रहा हो, उसमें वापस जाना तो संभव नहीं है, मगर उस गौरवशाली अतीत से प्रेरणा लेकर अंतरराष्ट्रीय स्तर का पुन: नालंदा विश्वविद्यालय की स्थापना कर बिहार को वर्तमान छवि से जरूर उबारने का प्रयास किया जा रहा है। यह सच है कि यह विश्वविद्यालय बिहार की मुक्कमल तस्वीर नहीं बदल सकता, पर यह सोचने के लिए बाध्य करेगा कि दुनिया को ज्ञान देने वाले आज कहाँ खड़े हैं? हम कितना आगे बढ़े हैं?

◆◆◆

अध्याय : चार
भाषिक प्रश्नोत्तर

(१)प्रश्नः क्या आपको ऐसा लगता है कि अपनी भाषा और परंपराओं से हमें ताकत मिलती है?

उत्तरः हाँ, डॉ. शिववंश जी, मुझे भी ऐसा लगता है कि अपनी भाषा और परंपराओं से हमें ताकत मिलती है, क्योंकि उसी में हमारी जड़ें छिपी हैं। अपनी जड़ों को छोड़कर हम आगे नहीं बढ़ सकते हैं। सच तो यह है कि जब तक हम अपनी संस्कृति को लेकर आगे नहीं चलेंगे साहित्य आगे नहीं बढ़ सकता और न उसमें सच्चाई आ पाएगी। अँग्रेजी एवं अन्य बाहरी भाषाओं के तथ्य बनावटीपन का अनुभव कराते हैं जबकि लोकभाषाएँ, हिंदी तथा उर्दू भाषाएँ सच्चाई का अहसास कराती हैं। हिंदुस्तानी भाषाओं को पढ़ने से मन में गुदगुदी और अपनापन का अहसास होता है।

इस देश की अनेकता में एकता की जिस खुशबू व रंगारंग विरासत पर दुनिया नजर करती है, उसमें हमारी उन भाषाओं की भी बहुत बड़ी भूमिका है, जो इस देश के विभिन्न क्षेत्रों में बोली जाती हैं। वैसे भी भाषा, साहित्य और संस्कृतियाँ इस देश के लोगों को जोड़ने और करीब लाने में मददगार होती हैं और उसी से न केवल हमारी ताकत बढ़ती है, बल्कि हमारे देश की भी ताकत बढ़ती है जिसके परिणामस्वरूप हमारी एकता और अखंडता अक्षुण्ण रहती है। ऐसे में यह कहना सर्वथा सत्य है कि हमारी एकता और ताकत को एक धागे में पिरोने और सम्प्रदायिक सौहार्द की डोर को मजबूत करने में हमारी भाषा और परंपरा का बहुत बड़ा योगदान है।

(२)प्रश्नः क्या आप मानते हैं कि मुहावरें किसी भाषा को दमदार बनाते हैं? आखिर क्यों?

उत्तरः हाँ, मैं मानता हूँ कि मुहावरे किसी भाषा को दमदार बनाते हैं, क्योंकि उसमें हरेक भाव को व्यक्त करने के लिए हर तरह का शब्द मौजूद है। अगर किसी भाषा में बड़ी संख्या में कहावतें, मुहावरें और लोकोक्तियाँ मौजूद हों, तो कहने हीं क्या। कहने को तो मुहावरे और कहावतें चंद शब्दों से मिलकर बनते हैं, लेकिन उनके मतलब बहुत गहरे होते हैं।

हरेक क्षेत्र की स्थानीय भाषाओं में बहुत तरह के मुहावरें बना लिए जाते हैं। कुछ कहावतें हैं तो ऐसी हैं जो हर इलाके में मिल जाती हैं। जैसे बिना दर्द झेले कभी कुछ हासिल नहीं हो सकता या फिर अगूँर खट्टे हैं।

सच तो यह है कि कहावतें या मुहावरे जिंदगी के हरेक पहलू को छूती हैं और हर तरह के वक्त की नजाकत को बयान करने के लिए काफी होती हैं। मुहावरों को चंद शब्दों में परिभाषित करना आसान नहीं होता। अगर कोई अपनी भाषा में मुहावरों का इस्तेमाल करता है, तो माना जाता है कि उस शख्स को भाषा की अच्छी जानकारी है।

कुछ मुहावरें ऐसे भी हैं जिसका बहुत ज्यादा इस्तेमाल हो चुका है। जैसे ये मुहावरा जो होता है अच्छे के लिए होता है। या हर बात की एक वजह होती है या ईश्वर तुम्हें वही देता है जो,तुम संभाल सकते हो।

(३)प्रश्नः क्या भाषा के बिना समाज में अपनी अस्मिता की पहचान हो सकती है? आखिर क्यों?

उत्तरः नहीं, भाषा के बिना समाज में अपनी अस्मिता की पहचान नहीं हो सकती है, क्योंकि अगर किसी समाज को उसकी भाषा से काट दिया जाए, तो उसकी अस्मिता खंडित हो जाती है। मेरी दृष्टि से भाषा मात्र मनुष्य के मनुष्य होने की पहचान और शर्त है। भाषा के बिना मनुष्य मनुष्य नहीं होता। सच तो यह है कि पशु से मनुष्य के विकास में भाषा ही वह सीढ़ी है जिसको पार करके वह मनुष्यत्व प्राप्त करता हैं। भाषा मिलने के बाद यह मनुष्यरूपी जीव सभी पशुरूपी जीवों से अलग हो जाता है।

भाषा अपने-आपको पहचानने का साधन है। भाषा मूल्यों की सृष्टि करना संभव बनाती है। मनुष्य की जिजीविषा ही अंतिम और स्वयं सिद्ध तक होता है, जीने के लिए। मनुष्य भाषा के जरिए ऐसे मूल्यों की सृष्टि करता है जिनके लिए वह जीता है। प्रतिक्रिया, अभिव्यक्ति और संप्रेषण भाषा के बिना संभव नहीं है। हमारे सामाजिक व्यवहार का आधार भाषा है और भाषा भी सामाजिक व्यवहार के लिए। हमारे दैनंदिन जीवन में भाषा एक स्थान है। हमारे प्रयोजन का वह साधन है। भाषा में सर्जनशीलता है। भाषा हमारी शक्ति है, उसको पहचानना रचनाशीलता का उदाहरण है। व्यक्ति के लिए भी और समाज के लिए भी। भाषा का अपना समाजशास्त्र होता है। कभी भाषा समाज को परिभाषित करती है, तो कभी समाज भाषा को। भाषा की प्रत्येक गतिविधि भाषा के माध्यम से तय होती है।

(४)प्रश्नः जिस देश की एक बड़ी आबादी हिंदी भाषा जानती-समझती है, उनके लिए अदालतों में अँग्रेजी में चलने वाली कार्यवाही और उनके आदेश को समझने के लिए दूसरे की मदद पर ही निर्भर करने का क्या औचित्य है ?

उत्तर: आपने ठीक कहा कि जिस देश की एक बड़ी आबादी हिंदी भाषा जानती, बोलती और समझती है, उनके लिए अदालतों में अँग्रेजी में चलने वाली कार्यवाही और उनके आदेश को समझने के लिए दूसरे की मदद पर ही निर्भर करने का मेरी समझ से कोई औचित्य नहीं है। यदि अँग्रेजी से हिंदी अथवा अन्य कोई भारतीय भाषा में अदालतों की कार्यवाही और उनके आदेश देने में कोई अड़चन हो, तो नियम-कानून में बदलाव अबतक क्यों नहीं किया जा रहा है? यह आश्चर्यजनक है, मुझे नहीं लगता कि आजादी के सत्तर साल के दौरान भी इस ओर ध्यान देने और हिंदी जानने-समझने वाली जनता की इस समस्या के हल के लिए शायद ही कोई पहल हुई हो। बल्कि सच तो यह है कि इसी साल 2016 के अप्रैल में जब देश की सभी अदालतों में संबंधित प्रांत की भाषा के प्रयोग को लेकर याचिका दाखिल की गई थी, तो सर्वोच्च न्यायालय ने उसे खारिज करते हुए कहा था कि इसके लिए संविधान में ही बदलाव की माँग क्यों नहीं की जाती? यानी हो सकता है कि अपने कामकाज में सिर्फ अँग्रेजी का प्रयोग करना राष्ट्रीय हरित प्राधिकरण (एनजीटी) के लिए भी बाध्यता हो, लेकिन अगर कोई व्यक्ति हिंदी में या किसी दूसरी भारतीय भाषा में अपनी बात रखना चाहे, तो ऐसे मे सिर्फ इसलिए न्याय से कैसे वंचित किया जा सकता है कि उसने अँग्रेजी में दस्तावेज तैयार नहीं कराए? अगर बेतुका नियम आड़े आ रहा है, तो उस नियम को हटा दिया जाना चाहिए।

ऐसा ही एक मामला जब राष्ट्रीय हरित प्राधिकरण (एनजीटी) के समक्ष आया, तो हिंदी में दायर की गई एक याचिका को भ्रम का नतीजा बताते हुए अधिकरण ने साफ किया कि 2011 एनजीटी (चलन व प्रक्रिया) नियमों के प्रावधान 33 के मुताबिक एनजीटी के काम केवल अँग्रेजी में होंगे। यानी अगर कोई अपने कागजात अँग्रेजी में तैयार नहीं करा पाता है, तो उसकी याचिका को सुनवाई के योग्य नहीं माना जाएगा। जाहिर है, ऐसे नियम की मार उन लोगों को झेलनी पड़ेगी जो किन्हीं वजहों से अँग्रेजी में अपनी बात सामनें नहीं रख पाते या फिर अपने दस्तावेज कानून की जटिल गुत्थियोंवाली अँग्रेजी भाषा में तैयार नहीं कर पाते। ऊपरी अदालतों में हिंदी में बहस या इसके प्रयोग को लेकर लंबे अरसे से बात उठती रही है, लेकिन इस बेतुका नियम को अभी तक नहीं हटाया जा सका है। मेरा कहना है कि अगर मौजूदा नियम के पीछे हिंदी में तैयार दस्तावेज समझने में आने वाली दिक्कत को कारण बताया जा रहा है तो क्या यही दलील केवल हिंदी

समझने वाला भी अँग्रेजी की बाध्यता का लेकर नहीं दे सकता? क्या यह अदालत पहुँचने वाले को अनिवार्य रूप से अँग्रेजी के जानकारों पर या अँग्रेजी जानने-लिखने वाले वकीलों पर ही निर्भर बना देने की व्यवस्था नहीं है? जबकि यह जानते हैं कि अँग्रेजी जानने-लिखने वाले वकीलों पर ही निर्भर बना देने की व्यवस्था नहीं है? जबकि यह जानते हैं कि अँग्रेजी जानने-समझने और बदलने वालों की संख्या बहुत कम है। ऐसी स्थिति में अदालत के साथ-साथ ज्यादातर शीर्ष संस्थानों में कामकाज के लिए अँग्रेजी का प्रयोग वैसे तमाम लोगों को, जो अँग्रेजी नहीं समझते, दूसरों पर निर्भर होने को मजबूर करता है। जहाँ तक न्यायपालिका का सवाल है, तो निचली अदालतों में भाषा के लिहाज से थोड़ी राहत होती है, लेकिन उपरी अदालतों में केवल अँग्रेजी का प्रयोग मुवक्किलों को कार्यवाही से लेकर बहस के सभी संदर्भो को समझने से वंचित कर देता है। वादी-प्रतिवादी को आमतौर पर सिर्फ फैसला समझा दिया जाता है। जबकि वहाँ प्रांतीय भाषा में काम हो तो वे शुरू से लेकर अंत तक, समूची कार्यवाही खुद समझ सकते हैं। न्याय के तकाजे में भाषा का पहलू भी शामिल किया जाना चाहिए।

(५)प्रश्नः इतिहास और परंपरा सहित सारे ज्ञान-विज्ञान भाषा में ही रचे-बसे होने के बावजूद हिंदी समाज क्यों शिथिल है और अधिक जागरूक क्यों नहीं हो पा रहा है?

उत्तर: यह सही है कि भारतीय भाषाओं का शब्द भंडार अँग्रेजी से कहीं अधिक है। भाषा में ही सारे ज्ञान-विज्ञान बसते हैं। इतिहास और परंपरा भाषा में ही रचा बसा है। इसके बावजूद हिंदी समाज शिथिल है और अधिक जागरूक नहीं हो पा रहा है। इसका और कारण चाहे जो हो हम अपनी भाषा का अच्छी तरह प्रयोग नहीं कर पा रहे हैं। प्रयोग के बिना वे अपनी चमक खो बैठते हैं। सीखने की आदतें, स्मृतियाँ, सृजन और अभिव्यक्ति की छटाएँ सब कुछ भाषा से ही संभव हो पाया है।

मेरा मानना है कि बहुभाषी भारत में आज कोई भाषा अकेली नहीं जीती है। प्रायः एक भाषा का उसके आसपास प्रयुक्त कई दूसरी भाषाओं से एक विशेष तरह का भाषिक परिवेश निर्मित हो रहा होता है। ऐस में शब्दों की एक से दूसरी भाषा में आवाजाही होती रहती है। बहुभाषिकता भारत की विशेषता हो चली है। जहाँ तक हिंदी समाज की शिथिलता और अधिक जागरूकता न होने का सवाल है अँग्रेजों के प्रभुत्व के फलस्वरूप भारतीय समाज का अँग्रेजी और अँग्रेजियत की ओर झुकाव बढ़ा। विश्वास बना कि

अँग्रेजी भाषा के प्रयोग सुपठित होने से सम्मान का पात्र बनता है। हालांकि बाजार की दुनिया के व्यापक होने की वजह से आम जिंदगी में हिंदी के प्रयोग का असर देखने को मिल रहा है। समाज में अपनी चीजों को प्रचारित करने और लोकप्रिय बनाने के लिए प्रस्तुत विज्ञापनों में हिंदी का प्रयोग किया जा रहा है। इसी प्रकार हिंदी फिल्मों के गाने जनता में बेहद लोकप्रिय हो रहें हैं। टी. वी. के हिंदी चैनलों की संख्या में भी वृद्धि हुई है। हिंदी के समाचार पत्रों के प्रसार संख्या में निरंतर बढ़ोतरी हुई है। लेकिन हिंदी लिखने और बोलने के बीच सामंजस्य घट रहा है। अनुस्वार, चंद्रबिंदु और हलंत के प्रयोग को लेकर भी कुछ अव्यवस्था अभी बनी हुई है। मसलन चंद्रबिंदु का प्रयोग होना चाहिए, वहाँ अनुस्वार का प्रयोग कर लोग काम चला लेते हैं, पर उसका औचित्य मुझे इसलिए नहीं लगता, क्योंकि हिंदी भाषा के साथ एक बड़ी खुबी यह है कि हिंदी शब्दों के उच्चारण से ही उसके शब्द और अनुस्वार, चंद्रबिंदु तथा हलंत का प्रयोग होता है। उदाहरण के तौर पर जब हंस शब्द का प्रयोग करते हैं, तो उसका मतलब हंस पक्षी से होता है और जब हँसने के रूप में चंद्रबिंदु का प्रयोग करते हैं तभी वह उपयुक्त होता है, लेकिन विडंबना यह है कि अधिकांश हिंदी भाषी लेखक-रचनाकार या पत्रकार पक्षी में हंस या हँसने के रूप में अनुस्वार से ही काम चला लेते हैं, जो गलत है। इसलिए मानक हिंदी के रूप को मुद्रित रूप में अंगीकार करना हिंदी के हित में होगा, मगर हिंदी समाज में जो पनप रही है और जो राजभाषा विभाग की या तकनीकी शब्दावली आयोग की हिंदी शब्दावली है उसमें बड़ा फर्क है। हिंदी भाषा में होने वाली अखबारी या टी.वी. वाली प्रस्तुति में अँग्रेजी के बहुत सारे शब्द ठूँस दिए जाते हैं। मसलन कम्पटीशन, कमीशन, ऑफर, कैम्प, कॉरपोरेशन, कॉमर्स, कॉल, क्रेडिट, डेटा जैसे शब्द उपलब्ध हैं। संभवतः अँग्रेजी का मोह उनके इस्तेमाल का प्रमुख कारण है न कि भारतीय भाषाओं की दुर्बलता या अक्षमता।

(६)प्रश्नः हिंदी का विश्व दिवस मनाने के मुगालते में हम कब तक जीते रहेंगे? क्या हम इतनी बड़ी संख्या में लोगों द्वारा बोली जाने वाली भाषा को लेकर जागेंगे? यदि हाँ, तो कब?

उत्तरः अभी तक, जिस भाषा को निर्विकल्प बताया और घोषित किया जाता रहा है, आज वही स्पेनिश, मंदारिन और हिंदी-इन्हीं तीन भाषाओं के बढ़ते वर्चस्व से अँग्रेजी घबरायी हुई है। हिंदी से उसे सिर्फ इतना भर ही डर है कि यह अपनी आबादी के बल पर ही दुनिया की तीसरी सबसे बड़ी

बोली जाने वाली भाषा बन रही है और इस आधार पर वह 'पावर लैंग्वेज इंडेक्स' स्वीकृति की सूची में शामिल हो गई, तो धीरे-धीरे या अपने देश भारत में अँग्रेजी बढ़त और बिक्री पर रोक लगा सकती है, क्योंकि भारत में अँग्रेजी सिखने-पढ़ाने का व्यापार ही अरबों डॉलर का बैठता है। वह तो ठप हो ही जाएगा, लेकिन मुझे डर है कि आगे हजारों वर्ष के लिए यही अँग्रेजी भाषा भारत में चलती रही, तो हिंदी का क्या होगा? इस देश की सबसे बड़ी खूबी यही देखने में आ रही है कि यहाँ जिन चीजों से 'प्राण' बचते हों, उनको ही बहुत आसानी से 'प्राणलेवा' बनाया जा सकता है। मसलन, जनता के 'हितों की रक्षा' के लिए योजना बनाई जाए, तो वह जनता के हितों को छिनने का आधार बन जाती है। हिंदी के संदर्भ में इस सच्चाई को देखा जा सकता है और यही इसकी विडंबना है।

आज की तिथि में इस देश में हिंदी बोलने वालों की संख्या 58 करोड़ है, मगर इतना होते हुए भी विश्व में हिंदी ही एक ऐसी भाषा है जो अपने ही बोलने वालों द्वारा छली गई और अब एक नए तरीके से छली जाने वाली है। इसके कद को काटकर छोटा करने का प्रस्ताव है, जो आज से दो दशक पहले ब्रिटिश काउंसिल के एक सदस्य ने इसकी अचूक तरकीब बताई थी, ताकि इस भाषा के हाथ-पैर काटकर अलग कर दिए जाएँ और यह वर्ल्ड इकोनॉमिक फोरम के (पावर इंडेक्स लैंग्वेज) प्रभावशाली भाषा सूची के शिखर पर सवार ना हो सके। हिंदी की बढ़त को रोकने के लिए इसके खिलाफ इसकी बोलियों को भिड़ा दिया गया। इसी मंसूबे से भारत में भूमंडलीकरण के साथ हिंदी के विरूद्ध उसकी बोलियों का झगड़ा शुरू कर दिया गया। आखिर तभी तो मैथिली के बाद अब भोजपुरी और राजस्थानी जैसी आँचलिक भाषाओं को भी आठवीं अनुसूची में शामिल करने की माँग और आंदोलन चल रहे हैं। साथ ही यह भी कहा जा रहा है कि आप अपनी मातृभाषा हिंदी नहीं, बल्कि भोजपुरी, राजस्थानी, बुंदेलखंडी आदि बोलियों को लिखाएँ। नतीजा यह होगा कि जब भाषा के आँकड़े आएँगे, तो पता चलेगा कि सवा अरब की आबादीवाले इस देश में हिंदी मातृभाषावाले लोग नगण्य हैं। फिर तो इतनी नगण्य भाषा की आखिर वर्ल्ड इकोनोमिक फोरम की पावर इंडेक्स लैंग्वेज में अन्य भाषाओं के साथ कैसे रखा जा सकता हैं? यह साजिश है जिसके शिकार हम भारतवासी हो रहे हैं ।

यदि हम हिंदी को सचमुच ही विश्व भाषा बनाना चाहते हैं तो इसे और भी ज्यादा समृद्ध करने का संकल्प लेना होगा। हिंदी की जड़ें बोलियों

की जमीन में हैं और जिसकी जड़ें अपनी जमीन में होती हैं, वह वृक्ष विशाल और हरा-भरा होता है।

(७)प्रश्नः क्या आप मानेंगे कि चीनी और खाड़ी देशों के बहुत से राजनयिक और रक्षा विशेषज्ञ पाकिस्तान से हिंदी भाषा सीख रहे हैं? हिंदी की आदि जननी भाषा और बोलियाँ कौन-कौन हैं?

उत्तरः डॉ. शाहिद जी, यह सच है कि चीनी और खाड़ी देशों के बहुत से राजनयिक और रक्षा विशेषज्ञ पाकिस्तान से हिंदी भाषा सीख रहे हैं और खुद पाकिस्तान के भीतर भी हिंदी को जानने-समझने और सीखने की प्यास तेजी से बढ़ रही है। दरअसल, भारत-पाक विभाजन से पहले समूचे पाकिस्तान में पंजाब से लेकर सिंध तक हिंदी पढ़ाई जाती थी। लाहौर हिंदी का गढ़ होता था। वहाँ पर हिंदी के कई बड़े प्रकाशन भी थे, लेकिन बाद में विभाजन का खामियाजा हिंदी को भी भुगतना पड़ा।

बहरहाल, चीनियों और अरब देशों के रक्षा और कूटनीति के जानकारों को इस्लामाबाद स्थित नेशनल यूनिवर्सिटी ऑफ़ मॉर्डन लैंग्वेज (एनयूएमएल) में हिंदी का कामचलाऊ ज्ञान मिल रहा है। पंजाब विश्वविद्यालय, लाहौर में भी 1983 से हिंदी विभाग सक्रिय है। इसी प्रकार एनयूएमएल में डिप्लोमा से लेकर पीएचडी तक की सुविधा है। दिल्ली में पाकिस्तानी उच्चायुक्त रहे रियाज खोखर का कहना है कि हिंदी पाकिस्तान के पड़ोसी मूल्क की अहम भाषा है, इसलिए हम इसकी अनदेखी नहीं कर सकते। निकाह के बाद पाकिस्तान की कई महिलाएँ यथा नेशनल यूनिवर्सिटी ऑफ मॉर्डन लैंग्वेज, इस्लामाबाद की हिंदी विभागाध्यक्ष डॉ. नसीमा खातून और प्राध्यापिका शाहिना जफर क्रमशः त्रिभुवन विश्वविद्यालय, नेपाल से हिंदी में पीएच.डी. और मेरठ विश्वविद्यालय की छात्र रही है।

बहरहाल, हिंदी फिल्मों और भारतीय टी.वी. सिरियलों की वजह से पाकिस्तान में हिंदी का बहुत प्रभाव बढ़ रहा है। दर्जनों हिंदी के शब्द आम पाकिस्तानी की अहम बोल-चाल में शामिल हो गए हैं। एक वजह यह भी है कि खाड़ी के देशों में लाखों भारतीय-पाकिस्तानी एक साथ काम कर रहे हैं। स्वाभाविक है कि दोनों एक-दूसरे की जुबान सीख रहे हैं। हालांकि, पाकिस्तान के हिंदुओं की मातृभाषा हिंदी नहीं है, पर वे हिंदी से भावनात्मक रूप से जुड़ते हैं। पाकिस्तान में हिंदी फले-फूले इससे बेहतर कोई बात हो नहीं सकती। आखिर भाषा का संबंध किसी धर्म या जाति से तो नहीं होता।

हिंदी लगभग विश्व की 3000 भाषाओं में से एक है और यह

प्राचीनतम भाषाओं में से भी एक है जिसकी आदि जननी संस्कृत है। संस्कृत पालि प्राकृत भाषा से होती हुई अपभ्रंश तक पहुँचती है तथा अपभ्रंश से अवहट्ट होती हुई प्रारंभिक हिंदी का रूप लेती है। आधुनिक हिंदी की अनेक उपभाषाएँ व बोलियाँ इस प्रकार हैं- राजस्थानी यानी मारवारी, जयपुरी, मेवारी व मालवी, हरियाणवी, ब्रजभाषा, बुंदेली, कन्नौजी, अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी, भोजपुरी, मगही, मैथिली, कुमाऊँनी और गढ़वाली आदि। संवैधानिक रूप से हिंदी देश की प्रथम राजभाषा है और भारत की सबसे ज्यादा बोली और समझी जाने वाली भाषा है। यही नहीं चीन जैसे शक्तिशाली देश में फ्रेंच और ब्रिटिश लोगों के बराबर भारतीय बड़ी संख्या में जाते हैं। जाहिर है जब इतनी बड़ी संख्या में हिंदी भाषी जाएँगे, तो चीनी को अपना सामान बेचने के लिए हिंदी सिखनी पड़ी है। लगभग वहाँ सभी टैक्सीवाले हिंदी समझ लेते हैं और हिंदी फिल्मों के गाने की एकाध पंक्ति गुनगुना ही लेते हैं।

(८)प्रश्नः क्या हिंदी भाषा का कोई दुश्मन भी है?

उत्तरः राष्ट्रभाषा होते हुए भी हिंदी का राष्ट्रभाषा के सिंहासन से दूर रहने की एक मुख्य वजह है हिंदी के सारे साहित्यकारों और प्राध्यापकों का संकीर्णवादी दृष्टिकोण। हिंदीवाले ही हिंदी के दुश्मन हैं। आखिर तभी तो हिंदी प्रदेशों में हिंदी जानने वालों के बीच ही अँग्रेजी का बोलबाला है। हिंदी प्रदेशों के माता-पिता अपने बच्चों से भी अँग्रेजी में बात करते हैं। अँग्रेजी माध्यम के विद्यालयों में बच्चों को पढ़ाना बुरा नहीं है, बुरा है हिंदी से धीरे-धीरे दूर होना। यकीन मानिए जिस दिन हम अपनी भाषा से कट जाएँगे, तो अपनी संस्कृति से भी दूर हो जाएँगे।

बिहार जैसी खाटी हिंदी प्रदेशों में हिंदी की मौजूदा दशा-दिशा चिंतित करने वाली इसलिए है, क्योंकि एक तो पहले ही से अँग्रेजी और हिंग्लिश के बढ़ते प्रभाव की चुनौतियाँ हिंदी भाषा-भाषी क्षेत्र झेल रहें हैं, दूसरे कि सरकारी कार्यप्रणाली में हिंदी के बेहद जटिल एवं क्लिष्ट व उलझाऊ शब्दों के इस्तेमाल की वजह से धीरे-धीरे ये शब्द स्कूली शिक्षा तथा आम बोल-चाल का हिस्सा बन गए। हिंदी क्षेत्र के युवा एवं परीक्षार्थी जब अपने उज्ज्वल भविष्य के लिए राष्ट्र स्तरीय लिखित या मौखिक परीक्षा से गुजरते हैं, तो उन्हें परेशानी होती है और नुकसान भी उठाना पड़ता है।

(९)प्रश्नः यूरोपीय भाषाओं के कौन-कौन से ऐसे विद्वान हुए हैं, जिन्होंने हिंदी भाषा में बहुत उल्लेखनीय काम करते हुए हिंदी को अंतरराष्ट्रीय आयाम दिया है?

उत्तरः डॉ. शाहिद जी, यूरोपीय देशों में इंग्लैंड, अमेरिका, जर्मनी, इटली आदि बहुत से ऐसे विद्वान हुए जिन्होंने राज-रोजगार के लिए नहीं, बल्कि भाषा प्रेम के कारण हिंदी की सेवा की और इसे अंतरराष्ट्रीय आयाम दिया है।

विदेशी हिंदी सेवियों में जर्मन भाषी तथा जर्मनी प्रसिद्ध हाइडेलबर्ग विश्वविद्यालय में इंडोलॉजी यानी भारतीय विद्या विभाग के विद्वान लोठार लुत्से ने न केवल हिंदी से जर्मन भाषा में अनुवाद किया, बल्कि हिंदी को लेकर शोध को बढ़ावा दिया। कहा जाय तो एक तरह से जर्मन भाषा में अपने समकालीन हिंदी लेखकों, विद्वानों से बराबर संवाद स्थापित करने वाले लुत्से की संस्कृत के बरक्स हिंदी को लाने में उनकी बहुत महत्वपूर्ण भूमिका मानी जाती है।

इसी प्रकार रूसी विद्वान अलेक्सांद्र निकोलयेविच सिंकेविच, जिन्होंने न केवल स्वयं हिंदी में लिखा, बल्कि अज्ञेय, बच्चन, अशोक वाजपेयी, रघुवीय सहाय, श्रीकांत वर्मा आदि हिंदी के ख्यातिलब्ध बड़े कविओं की कविताओं का रूसी भाषा में अनुवाद किया है। इसके अतिरिक्त हिंदी के गौरख पाण्डेय, मंगलेश डबराल, उदय प्रकाश, नरेन्द्र जैन, अरुण कमल, अनिल जनविजय, गगन गिल और स्वप्निल श्रीवास्तव आदि जैसे युवा कवियों की रचनाओं का भी अनुवाद किया। रूस से हिंदी लेखकों को दिए जाने वाले पुशकिन सम्मान की ज्यूरी के स्थायी सदस्य तथा इवान बूनिन पुरस्कार से पुरस्कृत सिंकेचिव के नेतृत्व में अनेक रूसी अभियान दलों ने उत्तर भारत के हिमालयी क्षेत्रों के अलावा भूटान, नेपाल और तिब्बत की खोज यात्राएँ की। इनकी कविताएँ 'दिनमान' में प्रकाशित होती थीं जिसका अनुवाद सर्वेश्वर दयाल सक्सेना और रघुवीर सहाय जैसे कवि करते थे।

बेल्जियम में जन्में फादर कामिल बुल्के ने रामकथा की उन्नति और विकास पर ऐसा शोध किया जो आज भी रामकथा को लेकर सबसे मानक शोध माना जाता है। हिंदी भाषा के प्रति उनकी निष्ठा ऐसी थी कि उन्होंने हिंदी में शोध प्रस्तुत करने के लिए विशेष अनुमति ली, क्योंकि उस समय यह नियम था कि शोध प्रबंध केवल अँग्रेजी में ही प्रस्तुत किए जा सकते थे। उनके लिए इलाहाबाद विश्वविद्यालय में नियम में विशेष संशोधन किया गया था। वे अपने समय में भारतीय विद्या के सबसे बड़े ज्ञाता माने जाते थे।

इसके अतिरिक्त फादर कामिल बुल्के ने अँग्रेजी-हिंदी कोश तैयार किया जिसे आज तक अँग्रेजी-हिंदी का सबसे मानक कोश माना जाता है।

उन्होंने बशाओं और संस्कृतियों के बीच ऐसा पुल बनाया जिसका दूसरा उदाहरण ढूँढ़े नहीं मिलता। सच कहा जाए तो बुल्के हिंदी के लिए जिए और हिंदी के लिए काम करते-करते ही अपनी जीवन-यात्रा समाप्त कर हिंदी जगत में एक बड़ा ऋण छोड़ गए।

इटली के वेनिस विश्वविद्यालय की प्राध्यापिका मरिओला औफ्रेदी ने करीब 40 सालों तक हिंदी पढ़ाया और भारत में हिंदी और संस्कृत से अनेक उल्लेखनीय अनुवाद किए तथा इटली की नई पीढ़ियों को हिंदी साहित्य से जोड़ा। हिंदी भाषा की कई पीढ़ियों के लेखकों-कवियों की रचनाओं का इटैलियन भाषा में अनुवाद किए। कहा जाता है किसी भी विदेशी भाषा में हिंदी का सबसे अधिक अनुवाद औफ्रेदी ने ही किया है।

ब्रिटिश इपर्ट स्नेल ने अँग्रेजी जानने वालों को हिंदी सिखाने के लिए जितना काम किया है उतना शायद किसी और ने नहीं किया। उनको ब्रजभाषा साहित्य पर अपने शोध और किताबों के लिए भी जाना जाता है। आजकल वे अमेरिका के टेक्सास विश्वविद्यालय में प्राध्यापक हैं।

इसी प्रकार हंगरी निवासी इमेरे बंधा ने हिंदी में 'सनेह को मारग' नामक पुस्तक आज से 17 साल पहले लिखी थी, जो रीतिकाल के सबसे अनूठे कवि घनानंद की जीवनी है। इंग्लैंड में लंदन के स्कूल ऑफ़ ओरियंटल स्टडीज में हिंदी पढ़ाने वाले इस विद्वान ने खड़ी बोली के उद्‌भव और विकास को लेकर गंभीर काम किए। ब्रजभाषा साहित्य का मूलभाषा में भी उन्होंने गहरा अध्ययन किया है।

1980 के दशक के बाद हिंदी साहित्य का परिचय अँग्रेजी के माध्यम से विश्व साहित्य से करवाने में बहुत बड़ा योगदान अमेरिका के यूनिवर्सिटी ऑफ वर्जिनिया के प्राध्यापक रावर्ट हयुक्सडेट का रहा है। मनोहर श्याम जोशी के उपन्यास- 'हरिया हरक्यूलीज की हैरानी' का अँग्रेजी अनुवाद उन्होंने ही किया जिसके कारण उन्हें अंतरराष्ट्रीय पुरस्कार भी मिले।

यूनिवर्सिटी ऑफ वेनिस, इटली से हिंदी में शिक्षा प्राप्त फ्रेंसेस्का और्सेनी को हिंदी साहित्य की गहरी समझ है। उनके शोध ने हिंदी में शोधों को एक नई दृष्टि दी। यूनिवर्सिटी ऑफ लंदन के स्कूल ऑफ ऑरियंटल स्टडीज में हिंदी की प्राध्यापिका ओर्सिनी ने हिंदी और उर्दू के लोकप्रिय साहित्य को लेकर अपने शोध के माध्यम से गंभीर बहसें चलायीं। इन दिनों वह हिंगलिश भाषा के प्रभावों और उसके विस्तार को लेकर एक महत्वाकांक्षी शोध योजना से जुड़ी हुई हैं।

विदेशी हिंदी सेवियों में सेलिना थिलमान ने संगीत और हिंदी की शिक्षा क्रमशः जर्मनी और स्कूल ऑफ ओरियंटल एंड अफ्रीकन स्टडीज, लंदन से प्राप्त कर दोनों भाषाओं-अँग्रेजी और हिंदी में नियमित रूप से लिखा तथा ध्रुपद गायन की शिक्षा प्राप्त मध्यकालीन भक्ति साहित्य के गायन की परंपरा को लेकर काम किया।

अमेरिका के गेसन ग्रूनबाम ने उदय प्रकाश की रचनाओं का अनुवाद कर अंतरराष्ट्रीय स्तर पर ख्याति प्राप्त की। उन्होंने मंजूर एहतेशाम के उपन्यास का अँग्रेजी में अनुवाद किया। अमेरिका में वे हिंदी पढ़ाते हैं और आने वाले दिनों में उनसे अनेक उल्लेखनीय कामों की अपेक्षा की जाती है।

रूस के सेंट पीटाबारान्निकों पीटसबर्ग में हिंदी पढ़ाते हैं और उन्होंने रामचरित मानस का हिंदी में अनुवाद किया। रूस में हिंदी सिनेमा को लेकर वे लेखन करते हैं और अनेक भाषाओं से जुड़े लोगों को हिंदी से जोड़ते हैं।

(१०)प्रश्न: भारतीय भाषाओं के विकास में मिशनरियों का क्या योगदान रहा है?

उत्तर: भाई ध्रुव जी, आप तो राष्ट्रभाषा परिषद से जुड़े रहे हैं, धर्म किसी-न-किसी रूप में मनुष्य के जीवन को निरंतर प्रभावित करता रहता है। समाज के वर्तमान स्वरूप में संस्थाबद्ध संबंधों को बनाने में धर्म और आध्यात्मिकता का योगदान महत्वपूर्ण माना जाता है। इसमें भाषा की मध्यस्था को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता, क्योंकि भाषा की प्रमुख भूमिका संप्रेपण है। चूँकि ईसामसीह के वचनों का प्रचार-प्रसार उनके अनुयायियों का परम कर्तव्य समझा जाता है इसीलिए ईसा की मृत्यु के पश्चात् उनके शिष्यों व अनुयायियों ने दुनिया के विभिन्न हिस्सों में जाकर ईसाई धर्म का प्रचार किया। इसी क्रम में सेंट थामस का भारत में आगमन सन् 52 का माना जाता है।

वैसे तो प्राचीन काल से भारत और पश्चिम के बीच संबंध रहे हैं, पर ईसा पूर्व 975 में लाल समुद्र स्थित अकाबा बंदरगाह और भारत के पश्चिमी तट के बीच व्यापार का जिक्र अफ्रीका के इतिहास में मिलता है। वहाँ के निवासी पोनेश्यिन भारत और युनान के बीच मध्यस्थ थे। यूनान के लोग वेद एवं पुराणों के बारे में ईसा से 300 वर्ष पूर्व परिचित थे। लगभग इसी समय बौद्ध धर्म के सिद्धांतों की गूँज भूमध्यसागरीय इलाकों तक पहुँची, लेकिन रोमन साम्राज्य के पतन के बाद भारत और पश्चिम के बीच सीधा संपर्क 20 मई, 1498 को पुर्तगाली नाविक वास्कोडिगामा के कालिकट आगमन के बाद प्रारंभ हुआ। राजा जामोरिन द्वारा यात्रा का कारण पूछे जाने

पर वास्कोडिगामा ने उत्तर दिया, 'ईसाईयत और मसाले'।

अंग्रेज बहुत बाद में आए। सन् 1579 में प्रथम अँग्रेज जेसुइट पादरी थॉमस स्टीवेंसन गोवा पहुँचे जिनकी भारतीय बोलियों के व्याकरण में गहरी रुचि थी। कुछ इसी वजह से उसने कोंकणी गोवा की भाषा में व्याकरण पर एक किताब प्रकाशित की और साथ ही 'क्रिस्टियन पुराण' नाम्नी काव्य लिखा।

सन् 1583 में महारानी एलिजाबेथ प्रथम की एक सिफारिशी चिट्ठी लेकर अँग्रेज व्यापारियों का एक शिष्टमंडल भारत के लिए रवाना हुआ जो सम्राट अकबर के दरबार में आगरा सन् 1585 में पहुँचा। अकबर अत्यंत उदार हृदय सम्राट था और राज्य में शांति स्थापना के उद्येश्य से उसने सभी धर्मों के प्रति सहिष्णुता का दृष्टिकोण अपना रखा था। उसके निमंत्रण पर गोवा से दो पादरी उसके दरबार में आए। अकबर, शाहजहाँ और जहाँगीर के जमाने में ईसाई धर्म प्रचारकों को कोई कठिनाई नहीं हुई। 'दी जेसुइट एंड दी ग्रेट मुगल्स' नामक किताब में सर एडवर्ड मेकलेगन ने लिखा है कि स्थानीय सुबेदारों ने धर्म प्रचार में कभी बाधा नहीं डाली, बल्कि वे कैथोलिक पादरियों का बड़ा आदर करते थे।

दरअसल, अँग्रेज भारत में व्यापार करने के इरादे से आए थे, लेकिन यहाँ की परिस्थिति और राजनीतिक कमजोरियों का फायदा उठाकर शासक बन बैठे। उन्होंने भारत के उद्योग-धंधों को चौपट कर दिया। इस शोषण का विरोध उन प्रोटेस्टेंट प्रचारकों ने किया जो डेनमार्क से भारत में ईसाई धर्म का प्रचार करने तंजाबूर आए थे। जीगन बाल्ग और हेनरी प्लुचू नामक दो पादरियों ने दक्षिण भारत की सभी भाषाओं का अध्ययन किया। जीगन ने सन् 1706 में बाइबिल का तमिल भाषा में अनुवाद किया। भारतीय भाषाओं में बाईबिल का यह प्रथम अनुवाद था। सन् 1712 में उन्होंने एक छापाखाना लगाया और हिंदुस्तानी भाषा का व्याकरण प्रकाशित किया।

अठारहवीं शताब्दी में फारसी राज दरबार में अपना रंग खो चुकी थी, ब्रजभाषा की शक्ति भी क्षीण हो चुकी थी और मुसलमानों के बीच फारसी मिश्रित शब्दोंवाली खड़ी बोली उर्दू जोर पकड़ चुकी थी। अबतक उत्तर भारत के अनेक स्थानों पर ईसाई मिशन स्थापित हो चुके थे जिसमें आगरा, पटना, मुँगेर, बनारस, मिर्जापुर और इलाहाबाद प्रमुख थे। सन् 1793 में कलकत्ता में विलियम कैरी के आगमन के बाद ईसाई धर्म प्रचार में नया अध्याय प्रारंभ हुआ जिसमें स्थानीय भाषाओं में रचना करने को प्रमुख विधि के रूप में चिन्हित किया गया। विलियम कैरी के इस कार्य में समाज

सुधारक राजा राममोहन राय ने बड़ी सहायता की जिसके परिणामस्वरूप उत्तर भारत की प्रायः सभी भाषाओं का विकास काफ़ी हुआ और उसी के चलते स्थानीय भाषाओं में अनेक रचनाएँ प्रकाशित हुईं।

प्राचीनकाल से अबतक के भारत पर शासन करने वालों के इतिहास और उनके धर्म एवं भाषा के प्रति मानसिकता की चर्चा आपसे मैंने इसलिए की, क्योंकि धर्म के प्रचार-प्रसार के शासकों अथवा मिशनरियों को भारतीय भाषाओं का ज्ञान इसलिए जरूरी था कि भाषा संप्रेषण का एक प्रमुख माध्यम है जिसका ज्ञान ईसा के अनुयायियों को होना जरूरी था। उसी के परिणामस्वरूप भारतीय भाषाओं का विकास भी काफ़ी हुआ।

(११)प्रश्नः भाषा से जुड़ा एक प्रश्न आपसे यह कर रहा हूँ कि पता नहीं नैतिकतावादी दृष्टि के कारण या क्लिष्टता की वजह से संस्कृत भाषा न केवल उपेक्षित रही है, वरन् वह हमारी जीवंत स्मृति से कटती जा रही है। इतनी प्राचीन और संपन्न संस्कृत भाषा वास्तव में विस्मृति योग्य है?

उत्तरः समादरणीय ब्रह्मचारी जी, आप तो स्वयं संस्कृत के प्राध्यापक रहे हैं और संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा के कुलपति भी, संस्कृत भाषा पर चर्चा करते समय हमें संस्कृत की परंपरा और संस्कृत साहित्य का स्मरण हो रहा है । एक तो संस्कृत सदियों पुरानी भाषा रही है और उसकी परंपरा 'ऋग्वेद' से रही है। संस्कृत साहित्य का इतिहास देखिए तो संस्कृत का संबंध लोकभाषा से गहरा रहा है। दरअसल, संस्कृत 'क्लासिकल लैंग्वेज है और इसकी जो परंपरा है, उसमें दर्शन लिखा गया है, काव्य शास्त्र लिखा गया है और 'ऋग्वेद' से लेकर 16वीं-17वीं शताब्दी तक उसका जो वैभव रहा है वह साहित्य की काव्य कथा, नाटक आदि विधाओं में लिखा गया है। संस्कृत में चिंतन, नाटक, कविता आदि इतना समृद्ध है कि मै समझता हूँ दुनिया की कोई भी भाषा इस मामले में संस्कृत के सामने टिकती ही नहीं। अलंकार शास्त्र के संस्कृत ग्रंथ शास्त्रीयता की दृष्टि से परजीवी, लेकिन रचना की दृष्टि से वह आलंकारिक है, मगर हल्का नहीं है। देवभाषा कहे जाने के कारण यह जनभाषा नहीं बन पाई जिसके कारण हमारी स्मृति से यह कटती जा रही है, मगर वास्तव में विस्मृति योग्य नहीं।

(१२)प्रश्नः विदेशी भाषा में दक्षता हासिल करने की माँग दुनिया भर के छात्र-छात्राओं के साथ भारत में भी आखिर क्यों बढ़ रही है?

उत्तरः विभिन्न देशों के बीच खुले व्यापार ने विदेशी भाषा के

जानकार लोगों की माँग को बढ़ाने में सबसे बड़ी भूमिका निभाई है। वैश्विक लैंग्वेज लर्निंग मार्केट 2011 में 58.2 बिलियन डॉलर का रहा। इस मार्केट के लगातार बढ़ते आकार के पीछे उदार होती अर्थव्यवस्था बड़ी वजह मानी जा रही है। भूमंडलीकरण के इस दौर में भारत भी अछूता नहीं रह सकता है। आज दुनिया भर की बहुराष्ट्रीय कंपनियों की नजर भारत पर है, जिसके चलते भारत के व्यापारिक संबंध दूसरे देशों के साथ लगातार बढ़ रहे हैं। इसी का परिणाम है कि विदेशी भाषा के जानकारों की माँग बहुराष्ट्रीय कंपनियों में बड़े स्तर पर है। इसके अतिरिक्त राजदूतावास, सूचना तकनीक, विज्ञापन प्रकाशन, मनोरंजन, शिक्षा, प्रशिक्षण तथा पर्यटन जैसे क्षेत्रों में विदेशी भाषा के जानकारों की माँग लगातार बढ़ती जा रही है।

(१३)प्रश्न: आज दुनिया भर की भाषाएँ क्यों तेजी से मरती जा रही हैं? भाषाओं की मृत्यु से क्या ज्ञान-विज्ञान, संस्कृति, इतिहास और दर्शन भी प्रभावित होते हैं? आदिवासी समाज के संदर्भ में आदिवासी भाषाओं के संकट से क्या आदिवासी अस्मिता पर सवाल खड़ा हो गया है?

उत्तर: आज दुनिया की कई भाषाएँ मरने के कगार पर इसलिए खड़ी हैं, क्योंकि वैश्विक दुनिया के मानकों के अनुसार वे तकरीबन लाभकारी नहीं हैं। वैश्वीकरण के मुनाफे की इस प्रवृत्ति ने भाषाओं के बीच जो दूरी पैदा की है, वह पहले कभी नहीं थी।

भाषा का महत्व केवल विचारों और भावों की अभिव्यक्ति के रूप में नहीं है, बल्कि विचारों और भावों के द्वारा लगातार अपनी सांस्कृतिक धरोहर से जुड़ते जाने से है। हमें यह नहीं भुलना चाहिए कि भाषाओं की मृत्यु में उनमें निहित ज्ञान-विज्ञान, संस्कृति, इतिहास और दर्शन की भी मृत्यु हो जाती है, क्योंकि समाजव्यवस्था, संस्कृति, दर्शन, इतिहास इन सबको अभिव्यक्त करने वाली उनकी अपनी मातृभाषाएँ ही होती हैं। भाषाओं पर संकट के संदर्भ में संसाधनों पर नियंत्रण की वजह से वैश्वीकरण का दोहरा हमला आदिवासी जीवन पर भी हुआ है, क्योंकि आदिवासियों की अपनी विशिष्ट समाज व्यवस्था, संस्कृति, दर्शन और इतिहास है जो आदिवासी भाषाओं के लुप्त होते जाने से प्रभावित हैं। कथित मुख्यधारा के ज्ञान में आदिवासी दुनिया अपने स्वाभाविक रूप में बहुत कम दिखाई देती है, क्योंकि आदिवासी दुनिया अपने स्वाभाविक रूप में अपनी मातृभाषाओं में ही मौजूद है जिनमें गीत, कथाओं, मुहावरों, पहेलियों इत्यादि में ज्ञान, विज्ञान, दर्शन, इतिहास की सामग्रियाँ बड़ी मात्र में मौजूद हैं, लेकिन उसका

अधिकांश अबतक अप्रकाशित ही हैं। मुंडारी का एक लोकप्रिय शब्द है 'उस गुलान' जिसका अर्थ है विद्रोह या आंदोलन। जैसे ही मुंडा भाषी के सामने 'उस गुलान' शब्द आता है, उसके मानस में अनायास ही बिरसा मुंडा का संघर्ष और ऐसे ही हजारों कुर्बानियों की छवि कौंध उठती है और वह स्वभावत: अपनी संस्कृति व इतिहास से जुड़ जाता है। आदिवासी संस्कृति भारत की प्राचीनतम संस्कृति है, जिसका आरंभ जंगलों, पहाड़ों, गुफाओं, कंदराओं, नदियों के किनारे और तलहटियों में हुआ है। जल-जंगल से जुड़े इन आदिवासियों ने अपने जीवन को मूल्यवान मानते हुए विशेष परंपराओं तथा कर्मकांडों में बाँध रखा है। ये कर्मकांड ही उसके जीवन की भाषा और वर्णमाला हैं जिनके प्रतीकों, संकेतों एवं मिथकों की भरमार हैं। आज यदि हमें मानव सभ्यता, धर्म, संस्कृति एवं लोकाचारों के उद्‌भव एवं विकास की जानकारी लेनी होती है, तो सूत्र के लिए आदिम संस्कृतियों की ओर मुड़ना पड़ता है जिनका प्रमुख धर्म आस्था और विश्वास है।

बहुलतावादी भारत देश में जहाँ सैकडो भाषाएँ हैं और जिनमें बहुलतावादी संस्कृति और उसके ज्ञान का अस्तित्व है, आजादी के बाद यहाँ की अधिकाधिक भाषाओं के उपयोग नहीं होने की वजह से आज हम अपने ही देश में एक-दूसरे से अपरिचित हैं। खास तौर पर आदिवासी समाज और उसकी भाषाओं के साथ शुरू से ही उपेक्षा के कारण उनकी भाषाओं में निहित ज्ञान का विभिन्न स्वरूप अपने वास्तविक रूप में प्रस्तुत नहीं हो पाया है। आदिवासी भाषाओं का संकट स्वाभाविक रूप से आदिवासी अस्मिता के संकट का जनक है। पाँच हजार साल पुरानी हमारी विरासत में 1400 बोलियाँ तथा औपचारिक रूप से मान्यता प्राप्त 18 भाषाएँ हमारे देश में हैं जो प्रतिमानों के साथ भारत में विविधता में एकता के अखंडित स्वरूपवाले सबसे बड़े प्रजातंत्र का प्रतिनिधित्व करती हैं और भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यहाँ पर मनाए जाने वाले सभी पर्व-त्योहार समाज में मानवीय गुणों को स्थापित करके लोगों में प्रेम, एकता एवं सद्‌भावना को बढ़ाते हैं और जिसका संबंध किसी जाति, धर्म, भाषा या क्षेत्र से न होकर समभाव से है। आजादी हासिल करने के पश्चात् उत्तरोत्तर आधुनिकता की बढ़ती चकाचौंध ने हमारी लोक संवेदनाओं को कुंठित कर दिया है। ऐसे में आदिवासी समाज आज भी शांत प्रकृति की गोद में पड़ा अपनी भाषाओं, परंपराओं और लोक विश्वासों से गहराई से जुड़ा है तथा अपने सांस्कृतिक भविष्य को बचाए रखने के लिए संघर्षरत हैं।

(१४)प्रश्न: क्या आप यह मानते हैं कि भाषा प्रथमत: एवं अंतत: एक सामाजिक-सांस्कृतिक प्रक्रिया एवं अंत:क्रिया है? भाषा के कौन-कौन से कार्य हैं?

उत्तर: हाँ, मैं मानता हूँ कि भाषा प्रथमत: एवं अंतत: एक सामाजिक-सांस्कृतिक प्रक्रिया एवं अंत:क्रिया है जो मौखिक, लिखित अथवा संकेतात्मक रूप में व्यक्त की जा सकती है और जिसके द्वारा दो या दो से अधिक व्यक्तिओं, समूहों या समुदायों के बीच विचारों, भावनाओं, सूचनाओं और ज्ञान का आदान-प्रदान होता है। भाषा एक मानवीय गुण है जो उसके षारीरिक विशिष्टता की वजह से जानवरों से भिन्न है। मानव जीवन के प्रारंभ के समय से किसी-न-किसी रूप में भाषा विद्यमान रही है और यह धीरे-धीरे ध्वनि, मौखिक बोली से लिखित भाषा के रूप में विकसित हुई। अपनी भाषायी अभिव्यक्ति के कारण मनुष्य जानवरों से भिन्न जीवन जीता है, क्योंकि मनुष्य अपनी समस्या को दूसरों से साझा कर सकता है और दूसरों की समस्या को समझ सकता है।

सुप्रसिद्ध विद्वान विचारक एम.ए.के. हैलिडे के अनुसार किसी भाषा के चार प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं -

1. भाषा का प्रथम कार्य 'अंतर्वस्तु' की अभिव्यक्ति है यानी कोई वक्ता वास्तविक दुनिया के अपने अनुभवों को अभिव्यक्त करता है। ऐसा करने में भाषा अनुभव को संरचना प्रदान करती है तथा चीजों के प्रति हमारा नजरिया निर्धारित करने में मदद करती है। इसे 'चिंतन-विचारण' कार्य कहा जा सकता है।

2. भाषा सामाजिक संबंधों को स्थापित और संधारित करने का कार्य करती है अर्थात यह सामाजिक भाषा द्वारा सृजित संप्रेषण सहित भूमिकाओं की अभिव्यक्ति तथा एक-दूसरे के बीच अंत:क्रिया के द्वारा कराने का भी कार्य करती है। इस कार्य के द्वारा सामाजिक समूह सीमित होते हैं तथा व्यक्ति पहचाना जाता है और भाषा दूसरों से अंत:क्रिया स्थापित करने हेतु सक्षम करके उसके व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति एवं विकास का भी कार्य संपन्न करती है। इस भाषा का अंतर-वैयक्तिक (Inter-Personal) कार्य कहा जा सकता है।

3. भाषा पाठीय कार्य भी संपन्न करती है, जैसे भाषा को अपने-आप से तथा जिस स्थिति में यह प्रयुक्त हो, उसकी विष्ठेषताओं के बीच संबंध बनाने का काम करना होगा। यह कार्य वक्ता या लेखक को करना होगा। यह

कार्य वक्ता या लेखक को 'पाठ' निर्मित करने में सक्षम बनाता हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि पाठीय कार्य का एक पक्ष किसी विमर्श में एक वाक्य को दूसरे वाक्य से साहचर्यात्मक संबंध स्थापित करना है।

4. भाषा अपने सकर्मकता कार्य में तीन कार्य करती है - (i) प्रक्रिया (ii) सहभागी तथा (iii) परिस्थितिजन्य।

नि:संदेह, भाषा-साहित्य किसी समुदाय-समाज का सामूहिक-सांस्कृतिक स्मृतिकोष्ठा होता है और उसकी निजता, तीव्रता, विस्तार तथा गहनता का मुकाबला दूसरी विदेशी भाषा कदापि नहीं कर सकती।

(१५)प्रश्न: बिहार के याचिकाकर्त्ता संजय कुमार द्वारा अपनी याचिका का सर्वोच्च न्यायालय में अँग्रेजी में अनुवाद दाखिल नहीं किए जाने को अपने हक के लिए अड़ना क्या जायज कहा जाएगा? अखिर क्यों?

उत्तर: हाँ, बिहार के संजय कुमार द्वारा सर्वोच्च न्यायालय में अपनी याचिका का अँग्रेजी में अनुवाद नहीं किए जाने पर अड़ना अपने हक के लिए जायज कहा जाएगा, क्योंकि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343 में कहा गया है, कि भारत संघ की राजभाषा हिंदी और लिपि देवनागरी होगी। पूर्व की भाँति 15 वर्ष 1965 में ही पूरे हो गए। संविधान लागू होने के 15 वर्ष बाद भारत का कोई भी काम सिर्फ अँग्रेजी में नहीं होना चाहिए। याचिका में संविधान सभा में महात्मा गाँधी के भाषण का हवाला दिया गया है जिसमें उन्होंने कहा था कि यदि देशवासियों पर अँग्रेजी थोप देंगे तो देशवासी गूँगे हो जाएँगे और फिर से देश गुलाम हो जाएगा।

इसके मद्देनजर याचिकाकर्त्ता का कहना था कि वह याचिका का अँग्रेजी में अनुवाद नहीं कराएगा, सर्वोच्च न्यायालय खुद अनुवाद कराएँ। इसके बाद अदालत ने न्यायिक सेवा समिति को निर्देश दिया कि वह हिंदी में दाखिल संजय कुमार की याचिका का अँग्रेजी में अनुवाद करने में मदद करें।

उल्लेख्य है कि भारत की राजभाषा हिंदी का प्रचार बढ़ाना और उसका विकास करना आवेदक के साथ-साथ भारत के प्रत्येक नागरिक का मौलिक कर्तव्य है। भारत की राजभाषा हिंदी के विकास को रोकना राजद्रोह है, जो भारतीय दंड संहिता की धारा 124(क) के दंडनीय अपराध है। इस लिहाज से देखा जाए तो याचिकाकर्ता संजय कुमार द्वारा हिंदी में याचिका दायर करना और अँग्रेजी अनुवाद नहीं देने पर अड़ना अपने हक के लिए जायज कहा जाएगा।

(१६)प्रश्नः हिंदी भाषा अपने घर में ही पराई क्यों हो रही है?

उत्तरः दरअसल, अँग्रेजों द्वारा तैयार की गई गुलाम मानसिकता की वजह से बहुत-से हिंदी भाषी भारतीय अँग्रेजी में बात कर सामने वाले पर अपना रोब झाड़ते हैं। अँग्रेजी का भारतीयों के मन पर बहुत ही रोब है। इसका सबसे बेहतर उदाहरण किसी भी सरकारी, गैर-सरकारी कार्यालय में देखा जा सकता है। आप कोई कार्य हिंदी में बोलकर उतनी आसानी से नहीं करा सकते, जितनी आसानी से अँग्रेजी में बोलकर। हमारे देश में अँग्रेजी बोलने वाला संभ्रांत और पढ़ा-लिखा समझा .जाता है। यहीं हिंदी का पिछड़ापन देखने को मिलता है।

कहा जाता है कि हिंदी एक पिछड़ी भाषा है, मगर यह बात सही नहीं है, क्योंकि जिस भाषा का इतिहास इतना उज्ज्वल है, वह भला कैसे पिछड़ सकती है। भारतेन्दु हरिश्चंद्र, दयानंद सरस्वती, रामचंद्र शुक्ल, प्रेमचंद, यशपाल, भीष्म सहनी, जैनेन्द्र कुमार, फणीश्वर नाथ रेणु, कबीर, तुलसीदास, सूरदास, नागार्जून जैसे विद्वानों ने हिंदी की नींव को इतनी मजबूती से तैयार करते हुए जिसे जन-जन की भाषा बना दी है उसे कोई दूसरी भाषा कैसे हिला सकती है? इतनी सारी उपलब्धियों के आधार पर हिंदी का नाम सुनते ही हमारा सिर गर्व से उठ जाता है वह हिंदी अपने घर में पराई कैसे हो सकती है?

(१७)प्रश्नः क्या भाषा के विकास में हमारी मानसिकता की अहम भूमिका है?

उत्तरः हाँ, भाषा के विकास में हमारी मानसिकता की अहम भूमिका है। आखिर अँग्रेजियत मानसिकता के चलते ही तो हिंदी आज अपने घर में पराई बनी हुई है। दरअसल, हम अपनी जड़ों से कटते जा रहे हैं। हमें अपनी मूल भाषा हिंदी हो या कोई भी मातृभाषा उसे बनाए रखना जरूरी है। अँग्रेजियत मानसिकता के लोग इसी चीज को भूलते जा रहे हैं।

(१८)प्रश्नः भारत में ऐसी मान्यता है कि भाषा मनुष्य का मान और मनुष्यता की पहचान है, परंतु भारत सहित पूरे विश्व में भाषा को लेकर क्यों अजीब-सी उदासीनता छा गयी हैं?

उत्तरः हाँ, आपका कहना सही है कि यद्यपि हमारे देश में ऐसी मान्यता है कि भाषा मनुष्य का मान और मनुष्यता की पहचान है, परंतु भारत सहित पूरे विश्व में भाषा को लेकर एक अजीब-सी उदासीनता छा गयी है। आपने देखा नहीं दुनिया का सिरमौर समझने वाले राष्ट्र अमेरिका के सर्वोच्च

राष्ट्रपति पद को लेकर उम्मीदवारी का संघर्ष राजनीतिक या आर्थिक नीतियों पर केंद्रित न होकर उम्मीदवार की गरिमाहीनता और महिलाओं के प्रति निर्लज्जता की अभिव्यक्ति का पर्याय बनता जा रहा है। चुनाव से उपजा घिनापन अजीब सी उबकाई पैदा कर रहा है।

रिपब्लिकन पार्टी से राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार डोनाल्ड ट्रंप ने जिस तरह की भाषा, संज्ञाओं एवं उपमाओं का उपयोग किया वह इस बात की ओर हमें सोचने के लिए बाध्य कर रहा है कि सभ्य और सुसंस्कृत होने के लिए समृद्धि के अलावा कुछ और भी आवश्यक होता है। बात र्सिफ महिलाओं के विरूद्ध यौन टिप्पणियों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि ट्रंप इस्लाम के खिलाफ़ जिस तरह का जहर उन्होंने उगला है, उससे यह साफ़ होता है कि उन्हें राजनीतिक, कुटनीतिक और साामाजिक तीनों ही क्षेत्रों की कतई कोई समझ नहीं है। इतना ही नहीं, उन्होंने घोषणा कर दी कि चुनाव जीतने पर वह जलवायु परिवर्तन पर हुए पेरिस समझौते को भी रद्द कर देंगे। और तो और डोनाल्ड ट्रंप ने तो अपनी बेटी की कामुकता पर भी टिप्पणी कर डाली। वह विश्व सुन्दरी, मिस अमेरिका, मिस अमेरिकी टीनएजर प्रतियोगिताओं के प्रायोजक बनने में इसलिए उत्सुक रहते हैं, क्योंकि इस हैसियत से वह पूरे प्रतियोंगिता क्षेत्र में कहीं भी आ-जा सकते थे, वहाँ पर भी जहाँ पर प्रतिभागी लड़कियाँ कपड़े पहनने के लिए अपने को तैयार कर रहीं होती हैं। ट्रंप ने अपने सार्वजनिक जीवन में जिस तरह से स्त्रियों के साथ यौन आचरण एवं उनके निजी अंगों के बारे में चर्चा की है उसने दर्शा दिया है कि विश्व किस तरह के परिवर्तन के दोराहे पर खड़ा है।

हम अपने भारत देश में भी इस तरह की परिस्थितियों का सामना करते रहते हैं। इसका सबसे हालिया उदाहरण तो बसपा नेता मायावती पर सपा के वरिष्ठ नेता द्वारा किया गया वाचिक आक्रमण है। हमारी सोशल साइट्स भी महिलाओं के खिलाफ अश्लील, अभ्रद और लैंगिक भेदभाव से सराबोर टिप्पणियों के बोझ तले दबी हुई हैं। इस संदर्भ में हमें याद आ रही है कि मैक्सिको के नोबेल पुरस्कार प्राप्त स्पेनिश भाषा के कवि आक्तेवियो पाजने द्वारा भाषा को लेकर की गयी टिप्पणी की जिसमें वह कहते हैं - 'एक लेखक की नैतिकता उन विषयों में निहित नहीं, जिन्हें वह प्रस्तुत करता है, वह भाषा के साथ उनके बर्त्ताव में बसी हुई है।'

दरअसल, खासतौर पर नेताओं की अभिव्यक्ति में आ रही कड़वाहट ने उनके विवेक को कुंद कर दिया है। इसलिए जरूरत आज इस बात की

है कि हमें अपने चेहरे को दूसरे के आइने और दूसरे की आँखों में देखने की आदत डालनी होगी।

(१९)प्रश्न: राष्ट्रभाषा हिंदी के हित में शिक्षा-संस्कृति उत्थान न्यास की ओर से दिया गया सुझाव आपकी नजर में कितना उपयोगी है?

उत्तर: डॉ. ब्रह्मचारी जी, शिक्षा-संस्कृति उत्थान न्यास की ओर से हिंदी के हित में दिया गया सुझाव उपयोगी है, क्योंकि मानव संसाधन विकास मंत्रलय को दिए गए सुझाव में कहा गया है कि स्कूलों में प्राथमिक से लेकर उच्च स्तर तक अँग्रेजी के स्थान पर हिंदी को शिक्षा का माध्यम बनाया जाए और विदेशी भाषाओं को किसी भारतीय भाषा के विकल्प के तौर पर नहीं रखा जाए। इससे राष्ट्रभाषा हिंदी का व्यावहारिक तौर पर सम्मान बढ़ेगा। न्यास ने यह भी सुझाव दिया है कि भारतीय प्रौद्योगिक संस्थान, भारतीय प्रबंधन संस्थान और राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी संस्थान जैसे प्रतिष्ठित संस्थानों में भी अध्ययन, अध्यापन का माध्यम भारतीय भाषाओं को बनाया जाए। राष्ट्रीय शिक्षा नीति बनाते समय इन सुझावों पर अमल किया जाए।

न्यास का यह भी मानना है कि अँग्रेजी भाषा को संवाद और शिक्षा के माध्यम के तौर पर अनिवार्य नहीं बनाया जाए। निश्चित रूप से ये सुझाव उपयोगी हैं। हिंदी न सिर्फ भारत में अपितु विश्व के अनेक देशों में भी लोकप्रिय है। अनेक विदेशी विश्वविद्यालयों में भी हिंदी की पढ़ाई होती है और शोधकार्य भी हो रहे हैं। हिंदी वैश्विक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो गई है इसलिए भारत में भी हिंदी को पर्याप्त सम्मान मिलना चाहिए। इस दृष्टिकोण से शिक्षा-संस्कृति उत्थान न्यास के सुझाव उपयोगी हैं।

(२०)प्रश्न: क्या ब्रिटेन के यूरोपीय संघ से पूरी तरह से बाहर जाने के बाद अँग्रेजी भाषा यूरोपीय संघ की आधिकारिक भाषा नहीं रहेगी?

उत्तर: हाँ, यूरोपीय संघ से पूरी तरह ब्रिटेन के बाहर आने के बाद अँग्रेजी भाषा यूरोपीय संघ की आधिकारिक भाषा नहीं रह पाएगी। इस आशय की चेतावनी यूरोपीय संसद की संवैधानिक मामलों की समिति ने दे रखी है। ब्रिटेन जो यूरोपीय संघ का एक महत्वपूर्ण सदस्य था, इस वर्ष यानी 2016 के जून में एक जनमत संग्रह के बाद यूरोपीय संघ से बाहर हो गया। ब्रक्जिट यानी ब्रिटेन का एक्जिट की प्रक्रिया पूरी करने में दो वर्ष लग जाएँगे और उसके बाद ही ब्रिटेन यूरोपीय संघ से औपचारिक तौर पर अलग हो पाएगा।

अँग्रेजी यूरोपीय संघ की 24 आधिकारिक भाषाओं में से एक है। यूरोपीय संसद की संवैधानिक समिति ने कहा है यदि हमारे पास ब्रिटेन नहीं

है, तो हमारे पास अँग्रेजी नहीं है। अँग्रेजी भाषा पर रोक के बाद बाकी सदस्य दशों को यूरोपीय संघ की आधिकारिक भाषाओं की सूची में बदलाना पड़ेगा।

इधर यूरोपीय आयोग ने फ्रेंच और जर्मन भाषाओं का प्रयोग शुरू कर दिया है, ताकि अँग्रेजी भाषा के बाहर जाने के बाद उन्हें कोई कठिनाई न हो सके। एक नए घटनाक्रम में इटली ने भी इटैलियन भाषा को यूरोपीय संघ की आधिकारिक भाषा बनाने के लिए प्रक्रिया शुरू कर दी है।

(२१)प्रश्न: क्या कोई क्षेत्रीय भाषा वैश्विक अपेक्षाओं को पूरा कर सकती है?

उत्तर: मौजूदा दौर में जब खासकर नौजवानों में बेरोजगारी बढ़ती जा रही है, तब नौकरी पाने के लिए नौजवानों को बाहर का रूख करना पड़ता है। अब तो स्थिति ऐसी आ गई है कि दूसरे शहर या दूसरे राज्य में न जाकर बच्चे अपने कैरियर की शुरुआत ही दूसरे देश से कर रहे हैं। इसलिए सूचना क्रांति से अधिक वैश्वीकरण हो रही दुनिया के लिए रोजी-रोटी की वजह से ज्यादा जिम्मेदार है। जब बच्चे या नौजवान रोजी-रोटी के लिए दूसरे देशों में जाते हैं तो ऐसा नहीं कि वे अपनी मातृभाषा या अपनी क्षेत्रीय भाषा से कट जाते हैं, बल्कि सच तो यह है कि दूर रहने के बाद भी उन्हें अपनी देशज भाषा और संस्कृति से ज्यादा प्यार हो जाता है। यही कारण है कि अमेरिका, थाईलैंड, आस्ट्रेलिया, इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी, जापान आदि देशों में बसे लोग भी अपनी मातृभाषा का इस्तेमाल कर रहे हैं और उन्हें अपने देश के लोगों के साथ अपनी क्षेत्रीय भाषा में बातचीत करना अच्छा लगता है।

इस संदर्भ में मैं अपना अनुभव आपकों बताऊँ कि जब वर्ष 2007 में मुझे बिहार सरकार की ओर से भारतीय प्रतिनिधिमंडल में शामिल होकर अमेरिका के न्यूयार्क स्थित संयुक्त राष्ट्र संघ के सभागार में आयोजित आठवें विश्व हिंदी सम्मेलन में जाने और 'वैश्वीकरण, मीडिया और हिंदी' विषय पर आलेख-पाठ करने के साथ-साथ परिचर्या में भाग लेने का मौका मिला, तो एक दिन न्यूयॉर्क से थोड़ी दूर पर भागलपुर निवासी डॉ. वी. के. मेहता ने मुझे अपने निवास पर आमंत्रित किया और जब वहाँ जाकर उनके परिवार के सदस्यों सहित अड़ोस-पड़ोस के लोगों से मिलने और बातचीत का मौका मिला तो हमलोगों ने हिंदी में ही बात की। बिहार राष्ट्रभाषा परिपद के तत्कालीन निदेशक प्रो. रामबुझावन सिंह तथा बिहार सरकार के गृह आयुक्त जियालाल आर्य भी हमलोगों के साथ थे। जितनी देर डॉ. मेहता जी के निवास पर हमलोग रहे हिंदी में ही बातचीत करते हुए हमलोगों को बड़ी

प्रसन्नता हुई और इस प्रकार हम कह सकते हैं कि क्षेत्रीय भाषा वैश्विक अपेक्षाओं को पूरा कर सकती है।

(२२)प्रश्नः क्या संस्कृत भाषा के महत्व को नकारा जा सकता है?

उत्तरः भाई अखिलेश जी, संस्कृत भाषा के महत्व को कतई नकारा नहीं जा सकता, क्योंकि इसी भाषा में हमारे संस्कार और संस्कृति निहित हैं। संस्कार और संस्कृति के ह्रास होते चले जाने की वजह से ही समाज में कुप्रवृत्तियाँ और विद्रूपताएँ बढ़ती जा रही हैं। जिस संस्कृत भाषा को अनिवार्य रूप से यहाँ के वैज्ञानिकों की भाषा होना चाहिए था, वह मात्र पंडा-पुजारियों की भाषा बनकर रह गई। हमने नैतिक शिक्षा को बच्चों के पाठ्यक्रम में सम्मिलित नहीं किया जो उनको संस्कारित बना सकती थी। धर्म का, नैतिक शिक्षा का पहला पाठ व्यक्ति को उसके कर्तव्यों, उसके दायित्वों को निष्ठापूर्वक निभाने का होना चाहिए। इसके बिना हम नैतिकता की पहली सीढ़ी भी नहीं चढ़ सकते। इसके लिए हमें संस्कृत भाषाओं के महत्व को समझना होगा।

◆◆◆

अध्यायः पाँच

पत्रकारिता प्रश्नोत्तर

(१)प्रश्नः मीडिया के भीतर अभिव्यक्ति की आजादी पर आप क्या कहना चाहेंगे? वाल्टेयर ने एक मूल्य के तौर पर किस अभिव्यक्ति की आजादी की बात की है?

उत्तर: डॉ. अरुण भगत जी, लोकतंत्र के चौथे खंभे मीडिया के भीतर अभिव्यक्ति की आजादी का सबसे बड़ा पाखंड रचा जाता है। वहाँ अभिव्यक्ति की समूची आजादी मालिकों के भौतिक हित और अहित के इर्द-गिर्द नाचती है। दरअसल, असिलयत यह है कि कोई भी व्यावसायिक क्षेत्र अपने किसी भी कर्मचारी को प्रबंधन के विचार-व्यवहार के विरूद्ध कोई बात कहने की आजादी नहीं देता। सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र की स्थिति तो और भी बदतर है। पत्रकारिता मानवीय भावनाओं को छोड़ तंत्र के कंधों पर आश्रित हो शुद्ध व्यवसाय बन गया है। अब मानववादी कलमकारों को छलांग लगानी पड़ती है। वाल्तेयर ने कहा था- 'तुम जो कहते हो उसे मैं बिल्कुल पसंद नहीं करता, लेकिन तुम जो कहते हो, उसे कहते रह सको, इसके लिए मैं अपनी जान भी दे सकता हूँ।' सच तो यह है कि इस देश के पूरे लोकतांत्रिक ढाँचे में वह आजादी नहीं है, जिसे अभिव्यक्ति की आजादी कहते हैं। हम दूसरों को नीचा दिखाने के लिए, अपने सत्ता केंद्र को बचाने के लिए या दूसरे के सत्ता केंद्र को ध्वस्त करने के लिए अभिव्यक्ति की राजनीतिक आजादी चाहते हैं, लेकिन जो भारतीय समाज को हर कदम पर अभिव्यक्ति की आजादी का विरोधी है, उसे बदलने की कोई मुहीम नहीं चलाना चाहते। जिन जड़ताओं के विरूद्ध सर्वाधिक अभिव्यक्ति की जरूरत है, उनके विरूद्ध मुँह नहीं खोलना चाहते हैं और जब मुँह खोलते हैं, तो कुछ इस तरह की पुरानी खाइयाँ और गहरी हो जाती हैं और शत्रुताएँ और अधिक पक जाती है।

कुल मिलाकर देखा जाए तो वाल्तेयर ने एक मूल्य के तौर पर अभिव्यक्ति की जिस आजादी की बात कही है, वह एक बहुत ही सभ्य, उदात्त, बौद्धिक और वैचारिक तौर पर अग्रणी तथा आधुनिकतावादी जीवन मूल्यों से संचालित समाज में संभव हो सकता है, भारत जैसे भ्रष्ट और विभाजित समाज में नहीं। वस्तुतः भारत को अभिव्यक्ति की आजादी की

उतनी जरूरत नहीं है, जितनी जरूरत लोकतांत्रिक ढाँचे को दुरूस्त करने की है, और आजादी के साथ की जा रही अनावश्यक अभिव्यक्तियों पर रोक की है। यहाँ लोगों को बोलने से ज्यादा चुप रहना सीखने की जरूरत है।

अभिव्यक्ति की आजादी के संदर्भ में यह भी काबिलेगौर है कि सोशल मीडिया आज लोगों की अभिव्यक्ति का एक बड़ा मंच बनकर उभर रहा है। इसने जिंदगी की पूरी परिभाषा ही बदल दी है। इस पर हर कोई अपनी भावनाएँ बेहिचक शेयर कर रहा है। इसने लोगों को बोलने और लिखने की आजादी दी है, मगर मुझे चिंता इस बात को लेकर है कि बोलने और लिखने की यह आजादी बेलगाम भी होती जा रही है। एक पल में किसी भी बात को तिल का ताड़ बना दिया जा रहा है। ऐसे में मेरा सुझाव यह है कि सोशल मीडिया पर भी आत्मनियंत्रण के साथ-साथ सरकारी नियंत्रण भी जरूरी है। कम से कम मीडिया पर जो कानूनी प्रावधान है वह सोशल मीडिया पर भी लागू होना ही चाहिए, ताकि सोशल मीडिया थोड़ा जिम्मेदार और जवाबदेह हो सके।

(२)प्रश्न: क्या आप इस बात से सहमत हैं कि लोकतंत्र की मजबूती के लिए सरकार को मीडिया पर पाबंदी लगाने की बजाय नीतियों में पारदर्शिता लानी चाहिए?

उत्तर: हाँ, मैं इस बात से सहमत हूँ कि लोकतंत्र की मजबूती के लिए सरकार को मीडिया पर पाबंदी लगाने की बजाय नीतियों में पारदर्शिता लानी चाहिए। आप इस बात से अवगत हैं कि मीडिया को लोकतंत्र का चौथा स्तंभ कहा जाता है। इसके मद्‌देनजर लोकतंत्र की मजबूती के लिए विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका- इन तीनों स्तंभों के साथ-साथ चौथे स्तंभ कहे जाने वाले मीडिया की भी भूमिका अहम मानी जाती है।

मगर भारत के सर्जिकल स्ट्राइक के बाद सेना और वहीं की सरकार ने पाकिस्तान के प्रमुख अखबार डॉन के पत्रकार साइरल अल्मीडर के देश्रा छोड़ने पर पाबंदी लगाकर यह सिद्ध कर दिया है कि डॉन में छपी खबर से सोना और सरकार के बीच नीतियों को लेकर टकराव है। डॉन में पिछले दिनों खबर छपी थी कि प्रधानमंत्री नवाज शरीफ ने वरिष्ठ सैन्य अधिकारियों से कहा है कि 'सैन्य नेतृत्व द्वारा आतंकियों को दिए जा रहे समर्थन के चलते पाकिस्तान अंतरराष्ट्रीय मंचों पर अलग-थलग पड़ रहा है।' डॉन अखबार अपनी इस खबर पर अभी भी कायम है। अखबार ने संपादकीय में दो टूक लिखा है कि एक अखबार का प्राथमिक दायित्व है अपने पाठकों

तक सही सूचना पहुँचाना। हालिया इतिहास गवाह है कि राष्ट्रीय सुरक्षा के नाम पर दुनिया भर में सरकारें अपने निहित स्वार्थों पर परदा डालती रही हैं, मगर मीडिया ने बार-बार इससे परदा उठाया है, कभी पनामा पेपर्स के रूप में, कभी बिकीलीक्स के रूप में, कभी एडवर्ड-स्नोडन के खुलासे के रूप में तो कभी और रूप में। पाकिस्तान में तो मीडिया सैन्य शासन के लंबे दौर में न्यूनतम आजादी के लिए भी संघर्ष करता रहा है। कुछ दिनों पूर्व पाक के पूर्व राष्ट्रपति जनरल परवेज मुशर्रफ ने भी वाशिंगटन में एक साक्षात्कार में कहा था कि पाकिस्तान में आजादी के बाद से ही सेना अहम भूमिका निभाती आयी है, क्योंकि तथाकथित लोकतांत्रिक तरीके से चुनी गयी सरकारें कुशासन देती रही हैं।

भारत तो शुरू से ही कहता रहा है कि पाकिस्तान में शक्ति के कई केंद्र हैं। जाहिर है, पाकिस्तान में शक्ति के कई केंद्र हैं। जाहिर है, पाकिस्तान जब तक इस आरोप से मुँह चुराता रहेगा, न तो आपने नागरिकों को आतंकवाद के दंश से मुक्ति दिला पाएगा और न ही दुनिया की नजर में 'आतंकवाद के पोषक राष्ट्र' की अपनी छवि से पीछा छुड़ा पाएगा। ऐसे में लोकतंत्र की मजबूती के लिए सरकार को मीडिया पर पाबंदी लगाने की बजाय अपनी नीतियों में पारदर्शिता लानी चाहिए।

(३)प्रश्न: क्या आपको ऐसा नहीं लगता है कि सोशल मीडिया का अपनी राजनीतिक, सामाजिक भड़ास निकालने के लिए जिस हद तक दुरूपयोग किया जाने लगा है वह एक चुनौती के रूप में सामने आ रहा है?

उत्तर: हाँ, मुझे भी ऐसा लगता है कि सोशल मीडिया का अपनी राजनीतिक-सामाजिक भड़ास निकालने के लिए जिस हद तक दुरूपयोग किया जाने लगा है वह एक चुनौती के रूप में सामने आ रहा है। और तो और सामाजिक, राजनीतिक कार्यकर्ता और इस देश के राष्ट्रपति की बेटी शर्मिष्ठा मुखर्जी के फेसबुक पेज पर जिस तरह की बातें किसी बीमार मानसिकतावाले व्यक्ति द्वारा पिछले अगस्त, 2016 में की गई उससे समाज के मानसिक स्तर का ही तो पता चलता है। उसकी हिम्मत यहाँ तक बढ़ी हुई थी कि वह अश्लीलता की हद तक उतर गया, क्योंकि उसे भी यह तथ्य अच्छी तरह से पता है कि अपनी बदनामी के चलते महिलाएँ या लड़कियाँ ऐसी बातों को अक्सर छुपा जाती हैं और बीमार मानसिकतावालों के हौंसले बुलंद हो जाते हैं। आखिर पुरुष किसी महिला से इस तरह की

बातें कैसे कह सकता है? इस बात से चिंता कम नहीं हो जाती है कि शर्मिष्ठा राष्ट्रपति की बेटी है, बल्कि हमारी चिंताएँ और भी बढ़ जाती हैं, क्योंकि जब उनके साथ इस तरह की हरकत की जा सकती है, तो आम लड़कियों को इस सोशल मीडिया पर क्या-क्या नहीं झेलना पड़ता होगा ?

(४)प्रश्नः क्या आपको ऐसा लगता है कि प्रधानमंत्री जन-धन योजना से देश की आधी आबादी आत्मनिर्भर बनी है?

उत्तरः हाँ, मुझे भी ऐसा लगता है कि प्रधानमंत्री जन-धन योजना से देष्ठा की आधी आबादी यानी महिलाएँ आत्मनिर्भर बनी हैं। यों तो जन-धन योजना के पूर्व भी महिला सशक्तीकरण और अर्थव्यवस्था में उनके योगदान की चर्चाएँ अक्सर होती हैं और इसके लिए समय-समय पर कई योजनाएँ लाई गईं, पर ज्यादातर कागजों पर ही सिमट कर रह गईं। इस दिष्ठा में प्रधानमंत्री जन-धन योजना मील का पत्थर इसलिए साबित हुई, क्योंकि जन-धन योजना के तहत वर्ष 2014 से 2015 के बीच 7.7 करोड़ महिलाओं को बैंकिंग की मुख्य धारा से जोड़ा गया। इससे उन्हें वित्तीय रूप से आत्मनिर्भर बनने में मदद मिली।

ग्लोबल कंसल्टेंसी फर्म इंटरमीडिया द्वारा जारी एक ताजा रिपोर्ट के मुताबिक महिलाओं को बैंकिंग सेवाओं से जोड़ने से भारत ने एक साल में 48 फीसद वृद्धि हासिल की है। यह अफ्रिका और अन्य एशियाई देशों की तुलना में सर्वाधिक है।

(५)प्रश्नः सोशल मीडिया पर प्रयुक्त भाषा क्या साहित्यिक भाषा के लिए खतरनाक नहीं है? सोशल मीडिया की सक्रियता से रचनात्मकता कहाँ तक प्रभावित होती है?

उत्तरः निश्चित रूप से सोशल मीडिया पर प्रयुक्त भाषा साहित्यिक भाषा के लिए खतरनाक हैं, क्योंकि सोशल मीडिया पर प्रयुक्त भाषा में हल्कापन आया है, क्योंकि नई पीढ़ी को भाषा मांजने की सीख नहीं मिल पा रही है। दरअसल, साहित्य में तो नई पीढ़ी को भाषा मांजने की सीख मिल जाती है, क्योंकि साहित्यिक पत्रकारिता के संपादक लेख को देखकर ही उसे प्रकाशित करते है, मगर सोशल मीडिया पर एक तो अश्लील चित्र आते हैं तथा यहाँ तक कि गाली-गलौज भी खुब होती है। क्षणिक आनंद ने लंबे समय के आनंद को ही बदल दिया है। रचनाओं के प्रति गंभीरता न के बराबर रह गई है। हम प्रतिस्पर्धा के पागलपन में इस कदर डूब गए हैं कि सही-गलत की पहचान से भी विचलित हो गए हैं। रातों-रात स्टार बनने की

लालसा और सोच ने जीवन की दिशा ही बदल दी है। साहित्य के प्रति साधन की भावना बर्बाद सी हो गई है। अगर कुछ बचा है तो वह छपास और चर्चा में बने रहने की ललक। छपने की भूख इस कदर बढ़ गई है कि लेखक किसी भी सीमा तक जा सकते हैं और अपनी जेबें ढीली कर सकते हैं। दरअसल, सबकुछ पलक झपकते हो जाने की लालसा और लत ने श्रमशील कलम को कुँद कर दिया है। इस प्रकार रचनात्मकता के स्तर में गिरावट आई है और उसकी गहराई और गंभीरता घट रही है।

सोशल मीडिया ने अक्सर अमर्यादित और अनियंत्रि वाद-विवाद को जन्म देती है, जो कहीं नहीं ले जाता। संवाद की संभावनाएँ सिमट जाती हैं और उसकी जगह अनर्गल प्रलाप, छींटाकशी, मान-मर्दन और षड्यंत्र जगह लेने लगते हैं। ऐसे में एक सृजनात्मक व्यक्ति के पास समय कहाँ होगा अपने सृजन के साथ किसी नए नरक में बसने के लिए? मेरी समझ से एक अच्छे लेखक को अच्छे पाठक चाहिए, पाठकों की भीड़ नहीं। बेब पत्रिकाओं को कोई आर्थिक आधार नहीं है। पढ़ना मुफ्त है इसलिए वहाँ भीड़ अधिक होती है। यही कारण है कि सोशल मीडिया में अच्छे लेखक कम दिखते हैं और नवोदितों के लिए मनमांगी मुराद है।

सोशल मीडिया से पहले साहित्यकारों की एक सदियों पुरानी परंपरा थी। उस परंपरा को तोड़ने में लंबा अरसा गुजर गया। प्राचीन साहित्यकारों का बना-बनाया रूतबा था वह धीरे-धीरे टूटने लगा है। इसका श्रेय सोशल मीडिया को दिया जाना चाहिए। पहले के दौर में साहित्यकार बनने के लिए गुरु के शरण में जाने की परंपरा थी। अपनी लिखी अभिव्यक्ति को प्रकाशित कराने के लिए बहुत ही मेहनत-मशक्कत करनी पड़ती थी, लेकिन यह परंपरा अब टूट रही है।

सोशल मीडिया के आगमन से समझौतावादी नजरिए में व्यापक परिवर्तन आया है। परिवर्तन की चाह रखने वालों ने समय से दो-दो हाथ किया। इस दिशा में उभरकर अनगिनत लेखक-लेखिकाएँ और बुद्धिजीवियों की जमात खड़ी नजर आई है जिनके दखल से भेद, मतभेद, आग्रह-दुराग्रह को छिपाना मुमकिन नहीं रहा। व्यक्ति के अंदर युगों-युगों से दबे भड़ास को बाहर निकालने में साशल मीडिया अहम भूमिका निभा रहा है। सत्ता पलटने की बात हो या अन्याय के खिलाफ न्याय का बिगुल फूँकने की या फिर किसी घटना विशेष या व्यक्ति विशेष के प्रति आक्रोश जाहिर करने की बात रही हो सोशल मीडिया जनता के लिए सहजता से सुलभ हुआ है। लोग इसे

एक हथियार के तौर पर इस्तेमाल कर रहे हैं। समाज का हर तबका सोशल मीडिया के आने के बाद अपने को खुशकिस्मत समझने लगा है, क्योंकि किसी भी भाव, भावना, भड़ास, क्रोध, आक्रोश, विद्रोह और सृजन को दबने की बजाय तुरंत प्रकट करने का एक सशक्त माध्यम जो उसे मिल गया है। साहित्य में रुचि रखने वाले हजारों लोग आडंबर, जड़ता, पाशविक मानसिकता, दकियानूसी मानसिकता और भेदभाव के खिलाफ जमकर अपने अंदर के उबाल को दर्ज कर-करा रहे हैं, क्योंकि उनके लिए सोशल मीडिया ही एक मात्र सुलभ मंच मिल गया है। भाषा की आंतरिक संरचना और वाह्य प्रयोग को प्रभावित और कई बार विकृत भी करने के साथ-साथ सोशल मीडिया द्वारा प्रयोगकर्ताओं को दी गई अज्ञानता ने एक नए तरीके की प्रवृत्ति को जन्म दिया है। इस अज्ञानता का लाभ उठाकर बहुत से लोगों ने गाली-गलौज, अश्लीलता, वाचिक हिंसा, और बेहद आपत्तिजनक हिंसक और अपमानजनक बातों की अभिव्यकित से पूरे विमर्श को दूषित किया है। यह इतना बढ़ गया है कि किसी भी मुद्दे पर फेसबुक या ट्विटर पर एक शालीन बहस या संवाद करना ही लगभग असंभव हो गया है। इस सोशल मीडिया का असमाजिक, सभ्यता विरोधी चेहरा भी सामने आया है।

(६)प्रश्नः साहित्य के क्षेत्र में सोशल मीडिया की क्या भूमिका है? सोशल मीडिया के आने के बाद साहित्य की दशा-दिशा कितनी बदली है?

उत्तरः साहित्य के क्षेत्र में सोशल मीडिया एक ऐतिहासिक परिघटना है। इसने हिंदी साहित्य, समाज और पत्रकारिता को एक सर्वथा नया और व्यापक कैनवास प्रदान किया है जिस पर कोई भी व्यक्ति अपने मनवांछित रंग भर सकता है, इच्छित चित्र उकेर सकता है। लेखक-साहित्यकारों के लिए अपना-पाठक बिरादरी तक पहुँचाने का माध्यम बना है।

सोशल मीडिया व्यक्तियों और समुदायों को साझा, सहभागी बनाने का जरिया है। सोशल मीडिया के जरिए साहित्य की पहुँच हर तबके तक बहुत हद तक मुमकिन हुई है। जिस काम को प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया मिलकर भी नहीं कर पाए उसे सोशल मीडिया के छोटे-छोटे माध्यमों ने कर दिखाया है। यह काम केवल साहित्यिक दृष्टि से ही नहीं, बल्कि सामाजिक और राजनीतिक दृष्टि से भी बहुत प्रभावी माध्यम बनकर उभरा है। आज के अधिकतर लिखने-पढ़ने वाले समूह में लेखनी की आजादी का अहसास सोशल मीडिया पर आकर बढ़ गया है। उनके अंदर का लेखक आत्मविश्वास

से भर उठा है। आज जिस किसी के अंदर जरा-सा भी लिखने की चिंगारी मौजूद है वह सब-के-सब साहित्यकार की पंक्ति में खड़े होते जा रहें हैं। आज का लेखक अपनी अभिव्यक्ति को प्रकाशित कराने के लिए हाथ-पैर बाद में मारता है, पठनीय पाठक पहले तलाश लेता है। छोटी से छोटी भावाभिव्यक्ति पाठक से पाठक तक और लेखक से लेखक का पल में पहुँचकर अपने को प्रामाणिक और अप्रामाणिक कहलाने को स्वतंत्र होती है।

सच तो यह है कि साहित्य के क्षेत्र में सोशल मीडिया ने न केवल एक खुले अखाड़े का रूप धारण कर लिया है, बल्कि इसने एक नया श्चक्ल अख्तियार कर लिया है। साहित्य के साथ-साथ विविध बोली और भाषाओं का भी इनके द्वारा प्रचार-प्रसार संभव हुआ है। 'जानकी पुल', 'समालोचना', 'कविता कोष', 'गद्य कोष', 'स्त्रीकाल', 'प्रतिलिपि', 'सहचर', 'अपनी माटी', 'नाटनोल', 'पहली बार', 'सिताब दियारा', 'अरी हिंदी समय हलचल' जैसी अनगिनत ऑनलाइन पत्रिकाएँ पाठकों के बीच लोकप्रिय हैं और नई प्रतिभाओं को उभारने में अहम भूमिका निभा रही हैं। जो प्रतिभाएँ कल तक छुपी और दबी बैठी थीं वह आज समाज के सामने मुखर हैं जिससे साहित्य प्रगति की राह पर चल रहा है। साहित्यिक पत्क्रिाओं के माध्यम से नई सोच और नए विषय सामने आ रहे हैं । इस प्रकार सोशल मीडिया साहित्य एवं समाज के संदर्भ में एक वरदान सिद्ध हो रहा है जिसमें अहम भूमिका पत्रिकाओं ने निभाई है।

जीवन की व्यवस्तताओं की वजह से पढ़ने-लिखने का समय मनुष्य के पास नहीं है, भागम-भाग और आपाधापी के बीच पाठक उलझा हुआ है। अलग से समय निकालकर पढ़ने की प्रवृत्ति समाप्त हो रही है। ऐसी स्थिति में छपाई और प्रकाशन जैसी भूख सोशल मीडिया पर आने के बाद खत्म हो जाती है। जहाँ सिर्फ विषय की कसावट और रचनाकार की मेहनत ही पाठक का ध्यान खींचने में सक्षम होती है। आज के दौर में अधिक से अधिक पत्रिकाएँ इंटरनेट पर उपलब्ध हैं। इससे साहित्य को घर-घर तक पहुँचाने में सुलभता हुई है। यह सर्वसुलभता उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। मौजूदा दौर में राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय पैमाने पर साहित्य, संस्कृति, और समाज में परिवर्तन की बयार को सोशल मीडिया ने गति दी है और सृजन एवं अभिव्यक्ति में निरंतर अहम् भूमिका अदा कर रहा है।

सन् 1990 के आखिरी दशक में सोशल मीडिया के अस्तित्व में आने के बाद ब्लॉग, फेसबुक, ट्विटर, गुगल, प्लस, आरकुट, व्हाट्सएप

आदि ने अभिव्यक्ति के इस नए-नवेले माध्यम के साथ लोगों को प्रेरित किया और तमाम तरह की अभिव्यक्तियों के साथ-साथ कविताएँ, कहानियाँ, लेख आदि भी सोशल मीडिया पर सामने आने लगे। कई नए लेखकों के अतिरिक्त स्थापित लेखक, पत्रकार व विचारक भी फेसबुक आदि बेबसाइट पर नियमित तौर पर लिखते हैं। इस प्रकार सोशल मीडिया के आने के बाद साहित्य की दशा-दिशा में काफी बदलाव आया है और उसकी स्तरीयता में परिवर्तन आया है और उसकी स्तरीयता में परिवर्तन आया है। संपादकीय सीमाओं के हट जाने से साहित्य में लोगों की भागीदारी व अभिरुचि भी बढ़ी है।

देश में सन् 1990 के उदारीकरण का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित हुआ। वैश्विक स्तर का बदलाव इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के कारण जोर पकड़ने लगा। एक के बाद एक नए-नए माध्यमों का अवतरण हुआ जिसकी वजह से साहित्यिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनैतिक और वैचारिक परिवर्तन व नवाचार का आरंभ हुआ। इंटरनेट के माध्यम से साहित्य का विस्तार बहुत तेज हुआ है। समाज के हर नब्ज पर निगाह गड़ाए रखने वाले कलम साधकों ने अपने अंदर के आक्रोश को फौरी तौर पर अभिव्यक्त करने के लिए सोशल साइट्स का बखूबी इस्तेमाल किया। यह मुख्यधारा की पत्रकारिता के साथ कदम से कदम मिलाकर चलने लगी।

इस संदर्भ में मैं एक बात आपको कहना चाहूँगा कि मुख्यधारा की मीडिया से अलग सोशल मीडिया जहाँ एक ओर ऐसा अथाह महासागर है जिसमें जाकर समझदार तो मोती-जवाहरात की तलाश कर लेते है, मगर दूसरी ओर मंदबुद्धिवाले उसके मकड़जाल में उलझ जाते हैं। जो हद दर्जे तक नासमझ, लापरवाह और बेवकूफी करते हैं वह सब के सब मझधार में डूब भी जाते हैं। उनके डूबने की वजह वे स्वयं भी डूब जाते हैं।

नि:संदेह सोशल मीडिया के आने के बाद साहित्य की दशा-दिशा बदली, समय बदला, कहने के अंदाज बदले, साहित्य के तेवर और सरोकार भी बदल गए, छपी-छपाई, रची-रचाई दुनिया में 'ग्लोबल' और 'ग्लोकल' दोनों ही तरह के परिवर्तन की प्रतिध्वनि सुनी जाने लगी और देश-दुनिया के नक्शे पर चमचमाती तस्वीर पेश होने लगी, मगर इस बीच से उभरा समाज इनके साथ कदमताल करने में अक्षम रहा, क्योंकि हाशिए का समाज आधुनिक विकास के दौर में भी आज हाशिए पर ही है। उसके सपने, उसकी संवेदना, उसके दर्द, उसके आँसू, उसकी रोटी, उसका जीवन सब कुछ घिस-घिस कर पलिहर का बनार सरीखा ही देखने को मिल रहा है।

मशीन का नाम-पता हो गया, लेकिन मशीन से मशीन तक की दूरी बरकरार है। न्यू मीडिया के संसाधनों ने बहुत कुछ मुहैया करा दिया, लेकिन हाशिए का हिस्सा आज भी कुफर, कुढ़न, कुंठित, दबा-कुचला और मुख्यधारा से परे है।

सोशल माध्यमों में एक तरफ जहाँ साहित्य की अच्छी स्थिति की चर्चा है, वहीं दूसरी तरफ दुर्गति की भी चर्चा है, क्योंकि रातों-रात साहित्यकार की श्रेणी में खड़े होने वाले अगले ही दिन चोरी के शब्द, बिंब, भाव, अभिव्यक्ति और मंच के नाम से नवाजे जाने लगते हैं। आज के लेखक सुबह उठान पर, दोपहर उबाल पर, शाम ढलान पर और रात्रि होते-होते उसका नामोनिशान ही मिट जाता है। सब कुछ बाजार पर निर्भर होने की वजह से साहित्यिक पत्रकारिता अपने पथ से विगलित तो है ही, उपभोक्ता की स्थिति भी बदल गई है। व्यवसाय के दौर में समाचार पत्रों से साहित्यिक परिशिष्ट गायब हो चुके हैं और दोयम दर्जे की रचनाओं से पूरा साहित्यिकी पन्ना पटा रहता है जिसे निचोड़ने पर कुछ भी हाथ नहीं लगता है। सोशल मीडिया ने हमारे समाज और निजी जीवन में जिस तरह का हस्तक्षेप किया है उसे देखते हुए यह जरूरी हो जाता है कि इसके विभिन्न पहलुओं का अध्ययन किया जाय। अब लोग एक-दूसरे से मिलने-जुलने की बजाय सोशल मीडिया पर समय गुजारना और संवाद करना ज्यादा पसंद करते हैं और वक्त गुजारते हैं।

(७)प्रश्न: आज जब दुनिया भर में इंटरनेट बदलाव औजार बन चुका है तब भारत में अब सोशल मीडिया और उत्तरोत्तर डिजिटल तकनीक की बढ़ती क्षमता और अधिकाधिक आबादी की उसमें हिस्सेदारी मानव सभ्यता को किस दिशा में ले जा सकते हैं?

उत्तर: भाई सुरेश, नि:संदेह दुनिया भर में आज इंटरनेट बदलाव का औजार बन चुका है और सोशल मीडिया एवं डिजिटल तकनीक की जहाँ क्षमता बढ़ती जा रही है, वहीं अधिकाधिक आबादी की उसमें हिस्सेदारी भी हो रही हे। ऐसी स्थिति में जहाँ तक मानव सभ्यता को किस दिशा में ले जाने का सवाल है सोशल मीडिया और डिजिटल तकनीक का अन्य कई रूपों में अच्छे-बुरे उपयोग हो रहे है। आखिर तभी तो 15 जुलाई, 2016 को तुर्की में तख्ता पलट की कोशिश की खबरों से दुनिया इसलिए अवाक थी, क्योंकि सिर्फ अपुष्ट सूचनाओं के आने से कई पर्यवेक्षक इस बात पर चिंता व्यक्त कर रहे थे कि सोशल मीडिया और स्मार्टफोन के युग में भी सूचनाएँ

ठीक से नहीं मिल पा रही हैं।

हालांकि, इंटरनेट के व्यापक राजनीतिक इस्तेमाल की शुरुआत अमेरिका में 2008 में बराक ओबामा के राष्ट्रपति के चुनाव में जीत से ही हो गई थी। बीते सालों के अनुभव बताते हैं कि इसके असर की सकारात्मकता और नकारात्मकता का चिन्हित करने के साथ दुनिया के अलग-अलग हिस्सों में इसके उपयोग से इसके महत्व को समझा जा सकता है।

गार्डियन की प्रधान संपादक कैथरिन वाइनर ने ब्रिटिश राजनीति में सोशल मीडिया के असर को रेखांकित करते हुए लिखा है कि इसने समाचार को चबा लिया है और जनहित की पत्रकारिता के आर्थिक सहयोग पर चोट करते हुए एक ऐसे युग की शुरुआत कर दी है कि जहाँ हर किसी के पास उसके अपने तथ्य होंगे। उन्होंने इस बात पर भी जोर दिया है कि इसके असर पत्रकारिता तक ही सीमित नहीं हैं। इसी प्रकार नवंबर, 2015 में पेरिस में हुए आतंकी हमले के दौरान सोशल मीडिया पर अन्य महत्वपूर्ण जगहों पर हमले होने तथा राष्ट्रपति ओलां को दिल का दौरा पड़ने की झूठी खबरें खूब उड़ीं। जानकारों का कहना है कि लोग सोशल मीडिया पर बिना जाने-बुझे किसी बात को सिर्फ इसलिए आगे साझा कर देते हैं, क्योकि उन्हें लगता है कि उन्होंने कुछ महत्वपूर्ण जान लिया है। यह चक्र आगे बढ़ता जाता है और जबतक खबर की पुष्टि होती है या उसे गलत साबित किया जाता है, बात हद से अधिक बढ़ चुकी होती है।

जहाँ तक भारत का सवाल है इस देश में भी डिजिटल पहुँच का विस्तार बहुत तेजी से हो रहा है। अपने देश में भी अब सोशल मीडिया, ई-कॉमर्स, सूचनाओं का प्रसार, राजनीतिक समर्थन जुटाने तथा सामाजिक आंदोलनों को मजबूती प्रदान करने जैसे विविध रूपों में इंटरनेट का व्यापक इस्तेमाल हो रहा है। 15 अगस्त, 2016 को भारत में इंटरनेट के व्यवसायिक इस्तेमाल के 21 वर्ष पूरे हो गए। एक रिपोर्ट के अनुसार, 2020 तक इंटरनेट, उपयोगकर्ताओं की वैश्विक संख्या 4.17 अरब पहुँच सकती है और छः फीसदी सालाना दो से अगले पाँच साल में दुनिया भर में 96 करोड़ नए उपयोगकर्ता जुड़ेंगे और भारत में अगले पाँच वर्षो में 40 करोड़ नए उपयोगकर्ता जुड़ेंगे, 20 फीसदी सालाना दर से।

अभी-अभी भारत के उद्योगपति मुकेश अंबानी की रिलायंस कंपनी द्वारा आधुनिक तेज और सस्ती इंटरनेट सेवा के प्रारंभ ने भारत के डिजिटल परिदृश्य में उथल-पुथल मचा दिया है। रिलायंस जियो की 4जी सेवा से

प्रतिद्वंद्वता के लिए अन्य टेलीकॉम कंपनियाँ भी अपनी सेवाओं के स्तर को बढ़ाने और दरों को कम करने की घोषणा करने लगी हैं। रिलायंस जियो के नाम से नयी डाटा-क्रांति करने वाली कंपनी यदि अपने वादे पर खरी आती है, तब निश्चित रूप से देश के सूचना हाइवे की दशा बदलने वाली है। 2जी, 3जी या 4जी में जो 'जी' लगा हुआ है वह 'जेनेरेशन' को इंगित करता है। हर अगले स्तर मे पूर्ववर्ती स्तर की तुलना में गति तेज होती है और वह अधिक सुरक्षित और भरोसेमंद होता है।

सच तो यह है कि पेट्रोलियम उत्पादों के बाद इंटरनेट डाटा का क्षेत्र सबसे बड़ा है, जिसके सहारे अब दुनिया अर्थतंत्र चल रहा है और इसपर कब्जे की लड़ाई बहुत ही गंभीर दौर में पहुँच चुकी है। इस समय चाहे खसरा खतौनी की बात हो या किसी परीक्षा या फार्म भरना हो, सब कुछ इंटरनेट पर है, लेकिन बात इंटरनेट के स्पीड की, अभी अपने देश में औसत स्पीड केवल 2एमबीपीएस के आस-पास है, जबकि सबसे अधिक दक्षिण कोरिया में औसतन 26 एमबीपीएस के आसपास है। इंटरनेट से दुष्प्रचार करना हो या सामाजिक-नैतिक रूप से गलत गलियों में विचरण करना हो यह इस नयी डाटागीरी से बहुत आसान हो जाएगा।

अभी देश में इंटरनेट का प्रयोग करने वाली आधे से अधिक आबादी के लिए इंटरनेट का मतलब सोशल मीडिया ही है यानी व्हाट्सअप और 'फेसबुक'। अब इंटरनेट फ्री होने का मतलब रहेगा कि इन कंपनियों का मुनफा और बढ़ेगा लेकिन किशोरों और युवाओं की समस्या बढ़ सकती है। बढ़ी हुई स्पीड इस युवा आबादी को किधर ले जाएगी, यह देखने वाली बात होगी। यानी इस डाटागीरी से फायदे हैं, तो खतरे भी हजार हैं।

इस देश में तीन बड़ी टेलीकॉम कंपनियाँ हैं-एयरटेल, वोडाफोन और आइडिया। इन तीनों कंपनियों के वायस और एसएमएस का व्यापार 78 से 80 प्रतिशत है, जबकि डेटा का व्यापार महज 20.22 प्रतिशत है। भारतीय टेलीकॉम की हालत बहुत अच्छी नहीं है। सभी टेलीकॉम कंपनियों के अपने कर्ज के पहाड़ हैं। ऐसे में फ्री वायस कॉलिंग-एसएमएस और कम रेट पर डेटा को लेकर जब ब्रुटल प्राइसवार होगा, तब इन कंपनियों की हालत और भी खराब हो सकती है। इससे उनपर कर्ज का बोझ और भी बढ़ेगा। जहाँ तक रिलायंस की बात है, तो इस कंपनी के पास कई तरह के कारोबार हैं जिससे पैसा कमा कर रिलायंस की कमी को दूर कर सकती है।

सूचना के प्रसार और एकजुटता बनाने में सोशल मीडिया की

भूमिका के बावजूद नियंत्रण की चिंताएँ बढ़ती जा रही हैं। विविधतापूर्ण होने के इंटरनेट के शुरुआती दावे की जगह अब रचनाएँ कुछ सोशल नेटवर्क के हाथों में केंद्रित होती जा रहीं हैं, जिसका परिणाम है कि हम सरकार और कॉरपोरेशन के सामने कमजोर होते जा रहे हैं। एक तरफ डिजिटल प्लेटफॉर्म लगातार धनी होते जा रहे हैं, वहीं पारंपरिक समाचार व्यवसाय में रोजगार के अवसर सिकुड़ते जा रहे हैं।

(८)प्रश्नः हिंदी समाचार चैनल एनडीटीवी और न्यूज टाइम असम से देश की संप्रभुता और सुरक्षा के हित को ध्यान में रखते हुए नौ नवंबर, २०१६ को एक दिन के लिए प्रसारण ऑफ एयर यानी बंद करने को प्रसारण मंत्रालय द्वारा कहा गया तो विपक्षी दलों और उसके नेताओं द्वारा इतना हाय-तौबा क्यों?

उत्तरः भारत सरकार के सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय ने एनडीटीवी और 'न्यूज टाइम असम' हिंदी समाचार चैनल को देश की संप्रभुता एवं सुरक्षा के हित के लिए नौ नवंबर, 2016 को एक दिन के लिए प्रतिबंध करने को कहा। इसपर विपक्षी दलों एवं नेताओं ने हायतौबा मचाना प्रारंभ कर इसे निर्णय को आपातकालीन स्थिति की तुलना और अभिव्यक्ति की आजादी पर रोक लगाने की बात कही है। यही नहीं, बल्कि इन नेताओं ने देश हित के लिए प्रतिबंध को तानाशाही तक कह डाला है। मुझे लगता है कि नेताओं की इस तरह की टिप्पणी इसलिए अशोभनीय है, क्योंकि पहली बात तो यह कि मंत्रलय ने पठानकोट हमले के दौरान चैनल द्वारा किए गए कवरेज पर आपत्ति जताते हुए सजा के तौर पर यह प्रतिबंध लगाया है और दूसरे यह कि यह प्रसारण के नियमों का उल्लंघन किया गया है। चैनल आतंकी हमले की कवरेज के लिए दिशा-निर्देशों का उल्लंघन करता पाया गया। रक्षा मंत्री मनोहर पार्रिकर ने भी कहा है कि जब चैनल आतंकरोधी अभियान लाइव दिखाते हैं तो आतंकवादियों के सरगना को सूचना मिलती है। ठीक ऐसा ही 26/11 के मुंबई हमले के बाद सप्रंग सरकार ने भी 2008 में आतंकरोधी अभियान के प्रसारण पर दिशा-निर्देश जारी किया था। ऐसा पहली बार नहीं, बल्कि पिछले दस सालों के दौरान प्रसारण के नियमों के उल्लंघन करने के मामलों में 28 बार टी वी चैनलों को ऑफ एयर किया जा चुका है। आतंकी हमलों और उनके खिलाफ कार्रवाई के दौरान मीडिया को कुछ भी दिखाने और लिखने की छूट नहीं मिलनी चाहिए। आतंकी हमले के समाचार प्रसारण के संदर्भ में एनडीटीवी चैनल के विरूद्ध जो 24 घंटे

का प्रतिबंध लगाया गया था वह महज सांकेतिक था। मीडिया को अभिव्यक्ति की आजादी के नाम पर ऐसा सब कुछ परोसने की छूट नहीं मिलनी चाहिए जो राष्ट्र विरोधी हो। वैसे टीवी दृश्य-श्रव्य माध्यम है और इसका तत्काल व्यापक असर पड़ता है। दरअसल, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने वर्तमान में आवारा पूँजी निवेश से बड़ी ताकत हासिल कर ली है।

अंततः इस कहानी का पटाक्षेप तब हो गया जब सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय द्वारा 7 नवंबर 2016 को एनडीटीवी पर लगाए गए प्रतिबंध स्थगित कर दिए गए।

(9)प्रश्नः क्या सोशल मीडिया समाचार पत्रों का विकल्प हो सकता है?

उत्तर: नहीं, सुरेश जी, सोशल मीडिया समाचार पत्रों का विकल्प कतई नहीं हो सकता, क्योंकि जो संवाददाता या पत्रकार अपना पूरा समय संपर्कों और फील्ड के अपने के आधार पर बीटू के बारे सूनचाएँ देते हैं उसका स्थान करोड़ों लोगों द्वारा मात्र 140 कैरेक्टर में भेजी गई सूचनाएँ नहीं ले सकती हैं इसलिए भविष्य में जब कभी अखबार नहीं होगा, तब लोगों के पास सही सूचनाओं वाली सामग्री की भारी कमी हो जाएगी।

मेरा ख्याल है कि समाचार पत्रों की आज जो जगह है, उनके न रहने पर, उस स्थान को भरने वाला एक भी उचित माध्यम नहीं होगा, क्योंकि टीआरपी के ेर में समाचारों को अनावश्यक रूप से दिलचस्प व सनसनीखेज बनाने के चक्कर में खबरों से खेलना खास तौर पर इलेक्ट्रॉनिक मीडिया को रोजमर्रा का काम हो गया है। इस खिलवाड़ में समाचार अपना अर्थ तो खोते ही हैं, कभी-कभी वे मानवाधिकारों के ऐसे प्रतिबद्ध पैरोकार बन जाते है कि मानवों को नहीं अमानुषों के कहीं ज्यादा पैरोकार दिखाई देते हैं। इस लिहाज से देखा जाए तो देश के एक लाख अखबार की जगह 890 टीवी चैनल अथवा सोशल मीडिया नहीं ले सकता है।

(१०)प्रश्नः अमेरिका में रिपब्लिकन पार्टी के डोनाल्ड ट्रंप के राष्ट्रपति पद पर जीत के बारे में अमेरिकी मीडिया सही अनुमान क्यों नहीं लगा पाया?

उत्तर: अमेरिका में रिपब्लिकन पार्टी के नेता डोनाल्ड ट्रंप के राष्ट्रपति पद पर जीत के बारे में अमेरिकी मीडिया द्वारा सही अनुमान नहीं लगा पाने की वजहों में एक तो यह कि अमेरिकी मीडिया को प्रायः रूढ़िवादी और उदार मीडिया में बाँटा जाता है। दोनों अपने-अपने एजेंडे के हिसाब से अपना पक्ष चुन लेते हैं। स्वाभाविक है कि उदार मीडिया ने ट्रंप को श्वेत अतिवादी,

कट्टरपंथी और फासीवादी घोषित करते हुए सिरे से नकार दिया। हिस्पैनिक समुदाय, अश्वेतों और मुसलमानों के पूर्वाग्रहों ने इस आग में घी डाला और इस धारणा को और अधिक मजबूत कर दिया। इस पूरे कोलाहल में मीडिया शांत, श्वेत मध्यमवर्ग में पल रहे गुस्से को नहीं भांप पाया।

हिस्पैनिक, अश्वेत और मुस्लिम समुदायों ने ट्रंप को तिरस्कार की हद तक प्रताड़ित करना और उनका मजाक उड़ाना जारी रखा, जो किसी भी तरीके से तर्कसंगत नहीं कहा जा सकता। अंततः यही ट्रंप के प्रतिवादी मतदाताओं को एक जूट होने की वजह रही। ट्रंप के चुनाव प्रचार में दो चीजें मुख्य रूप से उभर कर सामने आईं– प्रचार का अपरंपरागत दृष्टिकोण और सीधी सपाट बात। साथ ही ट्रंप ने जनता के सामने हिलेरी क्लिंटन को एक भ्रष्ट और उच्चवर्गीयवाली राजनेतावाली छवि स्थापित कर दी। आखिर तभी तो जीत के बाद दो दिनों तक हुए राष्ट्रपति के खिलाफ विरोध-प्रदर्शन के लिए ट्रंप ने मीडिया पर पेशेवर प्रदर्शनकारियों को शह देने का आरोप लगाया, क्योंकि यह मीडियावालों ने अपने ओपिनियन पोल में हिलेरी को 45वें राष्ट्रपति के रूप में दर्शाया था, लेकिन चुनाव नतीजे आते-आते यह धारणा गलत साबित हो गई। जनता ने ट्रंप को जिताकर यह साबित कर दिया कि जनता मीडिया को सच नहीं मानती। वह अपने फैसले को सही मानती है।

(११)प्रश्न:क्या मौजूदा दौर की पत्रकारिता वही पत्रकारिता है, जिसने देश को २०० साल पुरानी गुलामी की जंजीरों से आजादी दिलाई?

उत्तर: नहीं, इन दिनों देश में जिस तरह की पत्रकारिता देखने को मिल रही है उससे निराशा होती है। आमजन से सरोकार रखने वाली पत्रकारिता आज कहीं खो-सी गई है। बाजार ने इसे अपने कब्जे में ले रखा है। यही वजह है कि मीडिया उसकी भाषा बोलने लगा है और पत्रकार अपने मालिक के पिट्ठू हो गए हैं। जब लोगों को यह लगने लगे कि आप देश के लोकतंत्र के लिए खतरनाक हो सकते हैं, तो यह सोचना जरूरी हो जाता है कि इन सत्तर सालों में, हमने देश को कैसा मीडिया दिया है? यह वो दौर है जिसमें पत्रकारिता को सफलता हासिल करने की एक सीढ़ी की तरह भी इस्तेमाल किया जा रहा है। कई लोग तो इस पेशे में इसलिए भी आते है, ताकि सत्ता से नाता जोड़कर मलाई खाते रहें। कुछ पत्रकार तो ऐसे भी हैं जो नेताओं से अपना रिश्ता ऐसा बनाए हुए हैं कि उनके बयान खुद लिखकर पत्र-पत्रिकाओं को दे देते हैं और बदले में उन्हें अच्छी रकम निरंतर रूप से मिलती रहती है। किसी सभा-संगोष्ठी में उन नेताओं की ओर से पत्रकार

खुद उद्गार को लिखकर विस्तार से छपवाते हैं और उनकी तस्वीर भी प्रमुखता से देते है, हालांकि ऐसे नेताओं की पोल एक-न-एक दिन खुल ही जाती है और अंततः वे आमजन की नजरों से गिर भी जाते हैं और ओझल भी हो जाते हैं।

जब बदन पर लगी पत्रकारिता की स्याही का रगड़-रगड़ के सफेद खद्दर बनाना ही कुछ लोगों का मूल उद्देश्य बन जाए, तो पत्रकारिता अपने मूल उद्येश्य से भटकेगी ही। अच्छी पत्रकारिता का मतलब होता है संतुलित और सच की तलाश करने वाली पत्रकारिता, फिर वह सच चाहे जैसा भी क्यों न हो।

(१२)प्रश्नः क्या साहित्यिक पत्रकारिता का कर्तव्य केवल स्थापित और चमकदार नामों के पीछे भागना है?

उत्तरः नहीं, साहित्यिक पत्रकारिता का कर्तव्य केवल स्थापित और चमकदार नामों के पीछे भागना नहीं, बल्कि ऐसे रचनाकारों पर ध्यान केंद्रित करना भी उसका कर्तव्य है जो किसी दौर में अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य कर चुके हैं, किन्तु आज हाशिए पर हैं अथवा लगभग भुला दिए गए हैं, क्योंकि उनकी पूँजी केवल रचनात्मकता है। उनके पास पद या संपत्ति की तथाकथित धौंस नहीं है जिसके चलते हिंदी में आज भी अनेक रचनाकारों की तूती बोलती है।

इसके अतिरिक्त साहित्यिक पत्रकारिता का यह भी कर्तव्य है कि वह ऐसे रचनाकारों को आगे लाने का प्रयाय करें, जो साहित्यिक तिकड़में भिड़ाने में प्रशिक्षित नहीं हैं, जो साहित्यिक राजधानियों से दूर और बाहर छोटे कस्बों और गाँव में अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं- बिना किसी शिकायत के।

साहित्यिक पत्रकारिता का यह भी कर्तव्य है कि वह ऐसे रचनाकारों की रचनात्मकता को भी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करे जिनके पास आज भी कठिन जीवन संघर्ष हैं, और है जीवन की अपूर्व शांति। उदाहरण के तौर पर छतीसगढ़ के दुर्ग जिलांतर्गत भरर गाँव के निवासी विश्वेशर का नाम लिया जा सकता है जिनका जीवन कठिन संघर्षो से भरा रहा। विश्वेशर जी जैसे और भी कई ऐसे रचनाकार है जिनकी रचनात्मकता को नजरअंदाज किया जा रहा है। आवश्यकता इस बात की है कि ऐसे लोगों को पाठकों की नजर में लाया जाय।

(१३)प्रश्नः क्या आपको ऐसा लगता है कि आज का मीडिया सत्ता विरोधी नहीं दिखाई देता?

उत्तरः आपके इस प्रश्न का उत्तर देने के पहले मैं यह कहना चाहूँगा

कि यह कोई जरूरी नहीं कि मीडिया हर हमेशा सत्ता का विरोधी ही दिखाई दे। सरकार जो अच्छा काम करती है उसकी आलोचना न कर उसका स्वागत किया जाना चाहिए। क्या विगत 8 नवंबर, 2016 की आधी रात से पाँच सौ और एक हजार रुपए के नोटों पर सरकार द्वारा किए गए फैसले का भी मीडिया विरोध करता, तो आप उसे क्या कहते?

हाँ,इतना जरूर है कि मीडिया परिदृश्य आज बदल गया है। आपको याद होगा एक समय था जब द टाइम्स ऑफ इंडिया के उस समय के संपादक शाम लाल की कही गई बात कि मालिक शांति प्रसाद जैन अप्रत्यक्ष रूप से भी यह नहीं कहते थे कि अखबार को कौन-सी चीज छापनी चाहिए और कौन-सी नहीं। वास्तव में वह यह सोचते थे कि मालिक अखबार का ट्रस्टी होता है, जैसा गाँधी जी ने अखबार मालिकों की भूमिका के बारे में कहा था।

इसी प्रकार इंडियन एक्सप्रेस के मालिक गोयनका की भूमिका भी उतनी ही प्रशंसनीय थी। इसी समूह की हिंदी में प्रकाशित अखबार जनसत्ता के संपादक प्रभाष जोशी जी का सान्निध्य मुझे प्राप्त था। वे कहा करते थे कि विज्ञापन पर इंदिरा गाँधी सरकार की ओर से लगी रोक की वजह से आए आर्थिक संकट ने गोयनका को अंतिम हालत में पहुँचा दिया था, लेकिन फिर भी गोयनका एक इंच भी नहीं हिले और अपने और संपादकों को पूरी आजादी दी जिसका इस्तेमाल हमलोगों ने अपने सरकार विरोधी विचारों को खुलकर जाहिर करने के लिए किया। आपातकाल के बावजूद इंडियन एक्सप्रेस और जनसत्ता ने सत्ता के क्रोध को झेला और इसके खिलाफ अपना अकेले संघर्ष जारी रखा।

इसी प्रकार सूचना और प्रसारण मंत्रालय की ओर से पठानकोट हमले की कवरेज के लिए एनडीटीवी पर लगी एक दिन की रोक, जिसे बाद में वापस ले ली गई, के खिलाफ चैनल ने अपना बचाव खुद ही किया। बाकी मीडिया तब तक अलग खड़ा रहा जब तक एडिटर्स गिल्ड ने विरोध में आवाज नहीं उठाई। बाद में चैनल ने भी सर्वोच्च न्यायालय में मुकदमा दायर किया। इसी बीच बाकी राजनीतिक दलों की ओर से डाला गया दबाव भी बढ़ गया था। एनडीटीवी के मालिक प्रणय रॉय को सूचना और प्रसारण मंत्रालय के मंत्री के सामने पेश होने के लिए कहा गया जहाँ चैनल के सामने एक समझौता फॉर्मूला रखा गया, लेकिन प्रणय रॉय को यह श्रेय जाता है कि अपनी जगह से नहीं हटे।

अखबार को सेंसरशिप को नहीं मानने के कई उदाहरण हैं। अँग्रेजी अखबारों से ज्यादा भाषाई अखबार साहसी रहे हैं, मगर इतना जरूर है कि आज का मीडिया सत्ता विरोधी नहीं दिखाई देता। पत्रकार भी उसी ओर जाते हैं जिस ओर हवा का रूख है। पहले के विपरीत, उनकी ईमानदारी पर भी सवाल खड़े हैं। दरअसल, मीडिया घरानों के मालिक अखबार या चैनल को व्यापारिक काम मानने लगे हैं। उनकी प्रेरणा लाभ है, सिद्धांत नहीं। इसकी वजह से मुट्ठी भर ईमानदार पत्रकारों के लिए भी अपना पेशा आजादी से चलाने के लिए जगह नहीं बचती।

मगर भारतीय उपमहाद्वीप के काफी प्रतिष्ठित अखबार द डॉन जिसे आजम मुहम्मद अली जिन्ना से दिल्ली के दरियागंज से अपना आंदोलन शुरू किया और भारत-पाक विभाजन के बाद कराची से प्रकाशित होने लगा ने पिछले दिनों पाक सरकार के आदेश को नहीं मानकर पाकिस्तान के अवाम को इसकी याद दिलाई कि वे सैनिक शासकों का सामना कर सकते हैं और वास्तविक अर्थ में लोकतंत्र को वापस ला सकते हैं। राजनीतिक दलों को सत्ता का स्वार्थ रहता है मगर आम लोगों की दिलचस्पी बेहतरी और विकास में होती है इसलिए इसी की जीत होनी चाहिए।

(१४)प्रश्नः क्या सोशल मीडिया लोकतंत्र के लिए खतरा बनते जा रहा है? आखिर कैसे?

उत्तर: ब्रिटिश राजनीतिक विज्ञानी बर्नार्ड क्रिक ने 1962 में प्रकाशित अपनी किताब-'इन डिफेंस ऑफ पॉलिटिक्स' में लिखा कि हार्स ट्रेडिंग (राजनीतिक खरीद-फरोख्त) कुटिलता नहीं है, यह तो भिन्न मतों के लोगों को फलते-फूलते समाज में शांति से रहने का मौका देती है। किसी उदारवादी लोकतंत्र में किसी को भी वह जो चाहता है ठीक वही नहीं मिलता, लेकिन मोटे तौर पर हर व्यक्ति को अपने पसंद की जीने की स्वतंत्रता होती है। लेकिन अच्छी सूचनाओं, नागरिकता और सुलह-सफाई के अभाव में समाज अपने मतभेद सुलझाने के लिए बहुबल पर उतारू हो जाते हैं। आपको याद होगा जब सोशल मीडिया से अधिक ज्ञान आधारित राजनीति की उम्मीद बँधी थी, क्योंकि सटीक जानकारी और प्रयासहीन संचार के अच्छे लोगों को भ्रष्टाचार, कट्टरता और झूठ को हटाने में मदद मिली, लेकिन आज तो ऐसा लग रहा है कि बौद्धिक प्रखरता लाने की बजाय सोशल मीडिया जहर फैलाता जा रहा है।

यदि सोशल मीडिया से बुद्धिमत्ता और सत्य सतह पर आते तो बहुत

ही अच्छा होता, मगर फेसबुक पर जाने वाला हर व्यक्ति जानता है कि बुद्धिमता देने की बजाय सिस्टम ऐसी जानकारी देता रहता है, जो लोगों को पूर्वग्रह व पक्षपात मजबूत करता रहता है। इससे नफरत की राजनीति गहराती है और उदारवादी लोकतंत्र में होने वाले समझौते और सूक्ष्मताओं की प्रतिष्ठा घटती है। ऐसे राजनेताओं को प्रोत्साहन मिलता है जो साजिशों और संकुचित दायरों पर पलते हैं जिसका दुष्परिणाम राजनीति पर बुरा पड़ता है। बुरी राजनीति करने वाली बुरी सरकार बहुत नुकसान पहुँचा सकती है।

इस प्रकार आज सोशल मीडिया का दुरुपयोग हो रहा है, पर दृढ़ इच्छाशक्ति से समाज उनका दोहन करके ज्ञान की प्रखरता पाने का सपना पुनर्जीवित कर सकता है। उदारवादी लोकतंत्र के लिए इससे ज्यादा दांव पर कुछ नहीं लग सकता, जो अभी लगा है।

(१५)प्रश्नः अंकों की दुनिया में रहकर भी तो आप विभागीय पत्रिका 'प्रहरी' तथा दिल्ली से प्रकाशित राष्ट्रीय चेतना की वैचारिक पत्रिका 'विचार दृष्टि' का संपादन तो आप कर ही रहे थे, तो फिर आपने भारत सरकार की अच्छी-खासी नौकरी क्यों छोड़ी?

उत्तरः मामा जी, यह बात ठीक है कि सेवावधि में भी 'प्रहरी' तथा 'विचार दृष्टि' के संपादक का दायित्व मैं बखूबी निभा रहा था और वह कार्यालय एक हद तक मेरी एक ऐसा मंच भी रहा जिसके माध्यम से मेरी संपादक के रूप में एक पहचान बनी, किंतु स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति लेकर व्यापक और वृहत्तर समाज व राष्ट्रहित में काम करने की मेरी चाहत थी, सो आज पूरी हो रही है। सबसे बड़ी बात यह है कि नौकरी करना आसान होता है, पर अपनी पत्रिका एक कठिन पूर्वसर्ग होती है। अपनी पत्रिका निकालने का कम से कम एक लेखक के लिए सबसे बड़ा आकर्षण उसका मंच होता है जिसके माध्यम से वह अपनी बात कह सकता है। इसके अतिरिक्त हर पत्रिका के अपने उद्येश्य होते हैं और होती हैं सीमाएँ, जिनमें रहकर एक संपादक को काम करना होता है। जो संपादक उन सीमाओं को पार करना चाहता हो, उसके लिए विकल्प वही रहता है, जो मैंने अपनाया। यह खतरनाक हो सकता है, पर एक उम्र के बाद, या कहिए, एक समझ पर पहुँचाने के बाद लाभ-हानि ज्यादा महत्वपूर्ण नहीं रह जाता है।

(१६)प्रश्नः आपने 'विचार दृष्टि' को अपने न्यूनतम संसाधनों के बावजूद एक सफल पत्रिका बनाने की कोशिश की है। समय-समय पर इसने अपने विशेषांकों के जरिए बड़े और वाजिब मुद्दे भी उठाए हैं।

तो क्या आप 'विचार दृष्टि' की अब तक की यात्रा से संतुष्ट हैं?

उत्तर: 'विचार दृष्टि' के माध्यम से मुझे अपनी बात कहने और लोगों तक पहुँचाने का अवसर मिला इस लक्ष्य को तो मैंने हासिल कर लिया है जो कुछ हद तक संतोष का विषय हो सकता है। लेकिन सैद्धांतिक स्तर पर जिन उद्येश्यों को लेकर यह पत्रिका निकाली गई, जिनमें पत्रिका के जरिए राष्ट्रीय चेतना जागरित करना था, वहाँ मैं संतुष्ट नहीं हूँ, क्योंकि देशवासियों में आज भी राष्ट्रीयता की भावना तेजी से लुप्त होती जा रही है। कभी जाति व धर्म के नाम पर, तो कभी भाषा और क्षेत्र के नाम पर हम देशवासी आपस में लड़ रहे हैं। हालांकि 'विचार दृष्टि' अपनी खास छवि बना पाई है और उसका कुछ हद तक खासतौर बुद्धिजीवियों के बीच अपना अलग प्रभाव भी है, लेकिन एक वृहत्तर समाज की संचेतना तक अपनी पहुँच बनाने का मेरा लक्ष्य अभी तक हासिल नहीं हो सका है।

राष्ट्रीय चेतना की वैचारिक पत्रिका 'विचार दृष्टि' का 12 वर्षो से लगातार अपनी उपस्थिति दर्ज करवाए रखना किसी अजूबे से कम नहीं है। वह भी ऐसी पत्रिका जो प्रगतिशील विचारों का प्रवाह करती हो। 'विचार दृष्टि' ऐसी ही राष्ट्रीय विचार मंच की संवाहक पत्रिका है। इसमें लेख एवं अग्रलेख इस माने में प्रभावशाली होते हैं कि इसे व्यक्त करते वक्त कोई छल-कपट नहीं, लेकिन बौद्धिकता की पराकाष्ठा तो होती ही है।

(१७)प्रश्न: कुछ लोग आपकी पत्रिका की शैली को बहुत आक्रामक मानते हैं। आपने राजनीति और राजनेताओं, संस्थाओं और व्यक्तियों पर बराबर तीखे प्रहार किए हैं। ऐसा क्यों?

उत्तर: दरअसल, पत्र-पत्रिकाओं में भी चाटुकारिता कुछ अधिक है और लोग मध्य मार्ग पसंद करते हैं। उसके मद्येनजर हमें कुछ अलग तो होना ही था। बिना लाग-लपेट के अपनी बात कहने और चीजों का वस्तुपरक ढंग से विश्लेषण करने का मैं आदी हूँ। हाँ, आक्रामक होना मेरा मकसद नहीं है। अगर कोई बात तथ्यपरक न हो, उनमें मुद्दों का ठीक विश्लेषण न हो, तो अकेली आक्रामकता से कुछ नहीं होता। मेरा यह मानना है कि अगर तथ्य सही हों, उनका सामाजिक महत्व हो, मसला गंभीर हो, तो आक्रामकता भी जरूरी है।

(१८)प्रश्न: क्या कभी आपको ऐसा लगा कि 'विचार दृष्टि' के चलते आपका रचनात्मक लेखन खत्म हो रहा है?

उत्तर: आदरणीय मामा जी, आजतक तो कभी ऐसा नहीं लगा, बल्कि

सच तो यह है कि 'विचार दृष्टि' के चलते ही मेरी कलम निरंतर रूप से चल रही है और रचनाएँ इसमें तो छपती ही हैं, दैनिक जागरण, हिंदुस्तान, राष्ट्रीय सहारा, प्रभात खबर तथा आज जैसे दैनिक समाचार पत्रों में मेरी रचनाएँ निरंतर प्रकाशित हो रही हैं। हाँ, इतना जरूर है कि बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड का अध्यक्ष पद संभालने के बाद मुझे ज्यादा समय और श्रम करना पड़ता है जिसके परिणामस्वरूप मेरी कई पुस्तकों की पांडुलिपियाँ कम्प्यूटर पर अक्षर संयोजन के बाद भी प्रकाशित नहीं हो पा रही हैं। लेकिन मैं यह सोचता हूँ कि यह दौर ज्यादा सक्रिय और स्पष्ट भूमिका की है। अगर हम बोर्ड या संस्कृत में बदलाव चाहते हैं, तो कुछ त्याग तो करना ही होगा। अब तक यदि किसी ने पहल नहीं की है, तो किसी को तो पहल करनी ही होगी सो मैंने पहल की है और उसका नतीजा सामने है। और यह भी इसलिए हो रहा है कि सत्तर के पड़ाव पर होने के बावजूद मुझे नहीं लगता कि मेरी सीमा आ गई है। और आए भी क्यों? जब नब्बे की उम्र पार कर चुके प्रो. रामबुझावन बाबू बिहार राष्ट्रभाषा परिषद ही नहीं, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी जैसी दो-दो संस्थाओं के निदेशक का दायित्व संभाल रहे हैं, तो मैं अभी दो दशक पीछे चल रहा हूँ। हाँ, इतना जरूर है कि मैं यह चाहता हूँ कि पत्रिका कम से कम आर्थिक रूप से इस स्थिति में पहुँच जाए कि इसके संपादन का दायित्व दूसरे के कंधों पर डाल सकूँ। मुझे खुशी इस बात की है कि बोर्ड के अध्यक्ष पद पर मेरी व्यस्तता को देखते हुए 'विचार दृष्टि' के उपसंपादक उपेन्द्रनाथ, डॉ. मणिकांत ठाकुर, डॉ. राजशेखर तथा प्रो. पी. के. झा 'प्रेम' जैसे शुभेच्छुओं ने दिल्ली में रहकर इसके संपादन का बहुत हद तक भार संभाल लिया है जिसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं।

(१९)प्रश्न: लेखक सदैव किसी न किसी किस्म के आदर्श को लेकर चलते हैं जबकि समाज में आज इसका उल्टा हो रहा है। वहाँ आदर्श और नैतिकता बिखर रही हैं, तो ऐसे में आपको नहीं लगता कि हम इससे अलग होकर अपने समाज के सच को उदघाटित करें?

उत्तर: मैं तो यहाँ तक मानता हूँ कि लेखक चीजों को तटस्थ होकर नहीं देख पा रहे हैं, बल्कि लेखन स्वयं भी उस आदर्श को जो वे लिखते हैं, उसे अपने जीवन में नहीं उतार पा रहे हैं। वे अपने पारिवारिक एवं सामाजिक स्थिति की वजह से भी रूढ़िवादी बने हुए हैं। इसलिए इन लेखकों में आधुनिकता का अभाव है और उन पर सांप्रदायिक एवं जातिवादी होने के आरोप लगते रहे हैं। कारण कि उनकी सोच सामंती व्यवस्था से ही बनी,

विकसित हुई है। वे सिर्फ भौतिक चीजों को देखकर अपनी धारणा बना लेते हैं, उन समाजों की मानसिकता को समझने की कोशिश नहीं करते। जब तक यहाँ कोई साहित्यिक-सांस्कृतिक आंदोलन नहीं होता और हम परंपराओं से हटकर आगे देखने की आदत नहीं डालते, चीजें नहीं बदलने वाली।

(२०)प्रश्नः आप पत्रकारिता से जुड़े हैं और हिंदी साहित्य के एक सशक्त हस्ताक्षर के साथ-साथ प्रशासक भी। बोर्ड के अध्यक्ष पद पर आप सख्त दिखते हैं। क्या बाहर से सख्त दिखने वाला सिद्धेश्वर भीतर से बहुत नरम और भावुक व्यक्ति है?

उत्तर: यह सच है कि बोर्ड के अध्यक्ष पद पर रहकर मैं अक्खड़ हो गया हूँ, लेकिन यह मेरे व्यक्तित्व का बाहरी पक्ष है। मै जो कदम उठाता हूँ या जहाँ भी गलतियाँ दिखती हैं, अन्याय नजर आता है, उसके खिलाफ अपनी बात कहने से मैं बाज नहीं आता। विरोध करते हुए कई बार मैं आक्रामक नजर आता हूँ। मगर मूलत: मैं एक संजीदा और कुछ हद तक भावुक इंसान हूँ। मुझे लगता है कि जिसका विरोध किया जाना चाहिए, उसका खुलकर और सीधे-सीधे विरोध हो। मैं परिणाम की कभी चिंता नहीं करता। यह सब मेरे स्वभाव की ही प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति है।

वैसे सच कहा जाए तो गुस्सा कभी-कभी ताकतवर भी बनाता है। वह हमेशा नकारात्मक नहीं होता। महान विधिवेत्ता ननी पालखीवाला मानते थे कि गुस्सा बहुत जरूरी है, लेकिन वह रचनात्मक होना चाहिए। अगर हमें किसी गलत चीज पर गुस्सा ही न आए, तो क्या मतलब है। हमें जहाँ चोट मारी गई है उसे ठीक करने की कोशिश करते हैं। हम अपने काम से उस चोट पर मरहम लगाने का काम करते हैं। अगर ऐसा करने के लिए हमें कभी गुस्सा आता है, तो वह गुस्सा अच्छा है न?

दरअसल, मेरे असंतोष और गुस्सा का संबंध मेरी व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं से न होकर मेरे सामाजिक सरोकारों और भावात्मक संबंधों से है, जो मैं अपने लोगों के प्रति महसूस करता हूँ। दूसरी बात यह कि मैं किसी के प्रति पूर्वाग्रह से ग्रस्त नहीं रहता हूँ, यहाँ तक कि अपने विरोधियों से भी नहीं। मुझे लगता है कि जो मेरा दायित्व है उसका निर्वहण ठीक से होना चाहिए। वैसे भी मैं साहित्यकार व पत्रकार हूँ और संवेदनशील होना लेखक होने की पहली शर्त है।

(२१)प्रश्नः क्या आप ऐसा मानते हैं कि इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के पदार्पण से प्रिंट मीडिया में खासतौर पर हिंदी पत्रकारिता के अस्तित्व पर संकट है?

उत्तर: इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के पदार्पण से प्रिंट मीडिया के वजूद पर संकट तो नहीं है, पर 'जब तोप मुकाबिल हो, तो अखबार निकालो, देश की अधिकांश हिंदी पत्र-पत्रिकाओं की मानें, तो वे अब इस उक्ति को सार्थकता देने की स्थिति में नहीं हैं। कुछेक हिंदी समाचार-पत्रों को छोड़ दें, तो अधिकांश के बिगड़े आर्थिक हालात उन्हें रवानगी से चलने की इजाजत नहीं देते। ज्यादातर पत्र एवं पत्रिकाएँ घिसट-घिसटकर बढ़ने को विवश हैं। सरकारी विज्ञापनों का यदि उन्हें अच्छा प्रतिशत हिस्सा मिल जाए, तो उनका कायाकल्प हो सकता है।

वैसे मेरी मानें तो इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के पदार्पण से प्रिंट मीडिया पर खतरे नहीं हैं, क्योंकि टी.वी. चैनलों को देखने के बावजूद अहले सूबह प्रत्येक पाठक का समाचार पत्रों का बेसब्री से इंतजार रहता है। दूसरी बात यह कि इलेक्ट्रॉनिक चैनलों के बाद पत्र-पत्रिकाओं की संख्या में लगातार वृद्धि होती जा रही है। हाँ, चैनलों ने सोच की एक अलग दिशा दी जरूर है, किंतु चिंतन अभी भी बरकरार है। आखिर पुस्तकों के प्रकाशन भी तो निरंतर बढ़ रहे हैं।

मुझे तो लगता है प्रिंट मीडिया, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की तुलना में आज भी अधिक प्रभावशाली, स्थायी और भरोसेमंद है। यही नहीं, विविध एवं जटिल विषयों की जितनी समझ और जितना गहरा बोध प्रिंट मीडिया में दिखता है, वैसी समझ और वैसा बोध इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों के लिए दुर्लभ है।

(२२)प्रश्नः हिंदी पत्रकारिता से आपका संपर्क कई दशक से रहा है और आज भी आप 'विचार दृष्टि' और 'वाग्वन्दना' पत्रिकाओं का संपादन कर रहे हैं। एक सचेत संपादक की क्या जिम्मेदारी होती है?

उत्तर: हर पत्रिका का एक अलग ही मिजाज और तेवर होता है। यह संपादक के व्यक्तित्व और चयन पर बहुत सी चीज़ें निर्भर करती हैं कि कैसे वह चीजों को प्रस्तुत करता है। एक संपादक पर यह भी निर्भर करता है कि उसने कितने नए लेखकों को जगह दी है अपने पत्रों में। सचेत संपादक की यह जिम्मेदारी है वह बड़े साफ दृष्टि से संपादन करे। पत्रकारिता के लिए संपादकीय समझ और दृढ़ता आवश्यक है। संपादक के लिए यह भी जरूरी है कि वह नए-नए विचारों और परिवर्तनों का भरपूर स्वागत करे और

सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन में गतिशीलता की लहर पैदा करने की वह हिमायती हो। इसी प्रकार साहित्यिक पत्रिका के संपादक की यह जवाबदेही है कि वह संस्कृति का संवाहक बने, क्योंकि साहित्यिक पत्रकारिता साहित्य को अपने कंधों पर उठाने वाला पुख्ता स्तंभ है। देश के जन-जन तक भारतीय मूल्य एवं दर्शन को पहुँचाना साहित्यिक पत्रकारिता करने वाले संपादक का पुनीत दायित्व है।

(२३)प्रश्न: संचार क्रांति के दौर से गुजरते वर्तमान समाज में मीडिया का भूत आज के भौतिकवाद में सबके सर पर सवार है। प्रत्यक्ष और परोक्ष जीवन के कभी कार्यकलापों को इसने प्रभावित किया है। ऐसे वक्त खासतौर पर चुनावों के दौरान पत्रकारिता में 'शुल्क समाचारों' (पेड न्यूज) का आगाज हुआ है। इससे न केवल अखबार पाठकों को ठग रहे हैं और चुनावी खबरों के साथ धोखाधड़ी कर रहे हैं, बल्कि मीडिया लोकतंत्र के धर्म से च्यूत हो रहे हैं। एक संपादक व पत्रकार की हैसियत से आप क्या कहना चाहेंगे? ऐसे आत्मघाती कदम से पत्रकारिता को कैसे बचाया जा सकता है?

उत्तर: भाई भगत जी, आप तो स्वयं एक सफल पत्रकार रहे हैं और आज भी पत्रकारिता विश्वविद्यालय से जुड़े हैं, मैं आपकी बात से पूर्णत: सहमत हूँ। आज पत्रकारिता में खबरों पर सौदेबाजी आम बात होती जा रही है। पत्रकारों को मिलने वाले सरकारी फ्लैट, प्लॉट, दुकानें, उपहार, दावतें, यात्राएँ, लिफाफे आदि देने का प्रचलन तो जारी है ही, नियुक्ति और तबादला करने का कारोबार भी कई पत्रकार करते हैं। अनेक पत्रकार पाठकों की बजाय किसी राजनीतिक दल या उसके दागनुमा नेता से नत्थी हो जाते हैं। कुछ पत्रकार तो सीधे पैसा डकार जाते हैं और विज्ञापन को खबर बनाकर अखबार मालिक को चूना लगा देते हैं। इतना ही नहीं पत्रकार को सरकारी अथवा गैर-सरकारी कार्यालयों के रिश्वतखोर अधिकारियों व कर्मचारियों के द्वारा उनके पक्ष की खबर छापने के एवज में नियमित रूप से निर्धारित राशि का भुगतान किया जाता है। और तो और 'शुल्क समाचारों' के आगमन से कई अखबारों ने चुनाव कवरेज का अपना एक पैकेज बनाकर हर चुनावी उम्मीदवार को बेचा जाता है। साक्षात्कार, जनसंपर्क, सभा, रैली, समर्थन, अपीलें-सभी पैसा लेकर छापी जाती हैं। इस प्रकार पैसेवाले उम्मीदवार अखबारों में शुल्क समाचारों के जरिए अपनी राजनीतिक पकड़ बेहतर बना लेते हैं और बेमौत मारा जाता है बेचारा गरीब ईमानदार उम्मीदवार।

सच कहा जाए अरुण कुमार भगत जी, तो आज मीडिया स्वयं सवाल बनकर कठघरे में खड़ा खुद से मुखातिब है। उसका सामाजिक दायित्व और भरोसा दांव पर लगा है। पत्रकारिता का पूरा दायित्व संदेह के घेरे में आ पहुँचा है। मेरा तो यहाँ तक मानना है कि शुल्क समाचार (पेड न्यूज) आत्मघाती तो है ही, एक दिन वह पत्रकारिता की मौत की वजह बनेगी। ऐसी स्थिति में स्वयं मीडिया ही अपने आपको बचाने का काम कर सकता है। पेड न्यूज के विष से पत्रकारिता को मौत के मुँह से बचाना पत्रकारों का आज मौलिक कर्तव्य हो जाता है।

(२४)प्रश्नः आप पत्रकार भी हैं। देखा जाए, जो पत्रकारिता की पृष्ठभूमि से आने वाले लेखकों की भाषा में जहाँ साहित्यिक भाषा में तोड़-मरोड़ दिखती है, वहीं उसकी भाषा का अ-रचनात्मक किस्म का करार दिया जा सकता है। किंतु आपकी रचनाओं को पढ़ते हुए सुखद आश्चर्य होता है कि आप बड़ी ही संजीदगी से और रचनात्मक एवं शुद्ध भाषा का इस्तेमाल करते हैं। ऐसा क्यों?

उत्तरः कारण कि मैं मूलरूप से साहित्यिक पृष्ठभूमि का पत्रकार हूँ। दरअसल, जबतक पत्रकारिता से साहित्यकार जुड़े रहे उसकी भाषा सरल, सहज, बोधगम्य और व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध हुआ करती थी, लेकिन इधर वैसी चीजें देखने में नहीं आ रही हैं। सच तो यह है कि इन दिनों पत्रकारिता की भाषा खिचड़ी हो गई है जिसका बुरा प्रभाव पाठकों पर पड़ रहा है।

मेरी सदैव यही कोशिश रहती है कि मैं सहज, सरल, बोधगम्य और शुद्ध भाषा का प्रयोग करूँ, ताकि पाठक भ्रमित न हो सकें। दिल्ली से प्रकाशित 'विचार दृष्टि' तथा संस्कृत बोर्ड की पत्रिका 'वाग्वन्दना' को पाठक कुछ इसी वजह से सराह रहे हैं।

(२५)प्रश्नः हिंदी लघु पत्रिकाओं की बाढ़ में पाठक कहीं खो गया है, रचनाकार भी वही जाने-पहचाने और गिने-चुने होते हैं। इस पर आप क्या कहना चाहेंगे?

उत्तरः हिंदी लघु पत्रिकाओं की बाढ़ को मैं हिंदी के विस्तार के रूप में देखता हूँ। इसके प्रभाव से अवगत होने के लिए हमें अपनी दृष्टि को खोलना होगा। केवल दो-चार पत्रिकाओं को देखकर हम कोई अवधारणा नहीं बना सकते। यह तो ठीक वैसा ही होगा जैसे कि आप बाजार में निकलें, तो हर मोड़ व चौराहे पर सिर्फ गोल-गप्पा खाएँ और फिर यह आरोप लगाते

फिरें कि गोल-गप्पा के अतिरिक्त बाजार में कुछ मिलता ही नहीं। हाँ, इतना जरूर है कि हिंदी लघु पत्रिकाओं की बढ़ती संख्या में अधिकांश में विज्ञापनों की भरमार रहती है और उनमें पठनीय सामग्रियों की सर्वथा कमी देखी जाती है और उसमें साहित्यिक रचनाएँ तो नाममात्र की। सिर्फ चटपटी और मसालेदार खबरें या फिर सेक्स से जुड़ी रचनाएँ काफी रहती हैं। इसके अतिरिक्त हत्या व बलात्कार की घटनाओं से पृष्ठ पटे पड़े रहते हैं। जिसे, पता नहीं क्यों पाठक दिलचस्पी लेकर पढ़ते भी हैं। दरसअल, बढ़ते भौतिकवाद और फैशन की दुनिया का यह असर है और अपने अपने वक्त की अलग-अलग खामियाँ व खूबियाँ हैं।

(२६)प्रश्न: दक्षिण भारत के प्राय: चारों राज्यों में राष्ट्रीय विचार मंच तथा उसके मुख-पत्र 'विचार-दृष्टि' को लेकर आप अक्सर भ्रमण करते रहते हैं। पत्रिकाओं व पुस्तकों के प्रकाशन और पाठकों की संख्या की वहाँ क्या स्थिति है?

उत्तर: डॉ. सुषमा जी, आपने ठीक कहा कि राष्ट्रीय विचार मंच और उसके मुख-पत्र 'विचार दृष्टि' को लेकर मैं अक्सरहा दक्षिण भारत की यात्रा पर जाता रहा हूँ, हालांकि इधर बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड, पटना का अध्यक्ष पद संभालने के बाद दक्षिण भारत तो दूर, दिल्ली जाना भी कम हो गया है जिसके परिणामस्वरूप उसकी गतिविधियाँ भी थोड़ी शिथिल हुई हैं। किंतु दक्षिण भारत की यात्रा के दौरान जो मैंने महसूस किया वह यह कि वहाँ के चारों राज्यों में पत्रिकाओं के साथ पुस्तकें भी काफी संख्या में प्रकाशित होती हैं और अपेक्षाकृत काफी सस्ती भी होती हैं। वहाँ लेखकों के अपने संगठन हैं जो पुस्तकें निकालते हैं। केरल में लेखकों की सहकारी समितियाँ(राइटर्स कोऑपरेटीव्स) हैं। इस सहकारी समिति ने हिंदी लेखकों की कई पुस्तके छापी हैं जो दक्षिण भारतीय भाषाओं में हैं और हिंदी की पुस्तकों से सस्ती हैं। व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई के साहित्य मलयालम में छपे। मुझे यह भी सुनने को मिला कि दक्षिण भारत में पुस्तकों के पाठकों का प्रतिशत पच्चासी है।

(२७)प्रश्न: आजादी हासिल करने के तिरेसठ वर्ष बाद भी क्या आज मीडिया उन लोगों पर अपना ध्यान केंद्रित कर पाता है जो गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करते हैं, जिनके लिए दो वक्त की रोटी ही सबसे बड़ा सवाल है और जो विकास की मुख्य धारा में हाशिए पर है?

उत्तर: मनोज जी, आपका सवाल महत्वपूर्ण है। आज हम आजादी की तिरसठवीं वर्षगांठ मना रहे हैं। नया सपना है, नया विश्वास है, नई संभावना

है, नई ऊर्जा और नई आस्था भी। भूमण्डलीकरण के इस दौर में पूरा विश्व वैश्विक ग्राम की ओर बढ़ चुका है। सूचना क्रांति ने जन-जन तक पहुँचकर अपनी छटा बिखेरी है। स्वतंत्र भारत के तिरेसठ वर्षो में समाचार पत्रों एवं लघु पत्र-पत्रिकाओं की संख्या में काफी वृद्धि हुई है। आज हम सामुदायिक रेडियो और एफ.एम. चैनलों की क्रांति के दौर में हैं। वेब पत्रकारिता के विकास की वजह से विभिन्न देशों और विविध समाजों के बीच सूचना, ज्ञान, आचार-विचार और जीवन शैली का नए दृष्टिकोण से आदान-प्रदान हुआ है। कुल मिलाकर देखा जाए, तो मीडिया की क्रियाशीलता ने नए आयाम ग्रहण किए हैं और समाज, साहित्य एवं अर्थव्यवस्था को प्रभावित करने के मामले में मीडिया की दक्षता बढ़ी है। हम जब विकसित देश बनने की दिशा में तेजी से अग्रसर हो रहे हैं, तब आपका यह सवाल निश्चित रूप से चिंतन-मनन का गंभीर विषय बन जाता है कि क्या मीडिया का ध्यान उन लोगों पर है जो विकास की मुख्यधारा में हाशिए पर हैं?

इसमें शायद ही किसी को संदेह होगा कि जिस समतामूलक समाज के निर्माण का स्वप्न आजादी के समय या संविधान में देखा गया, उसे साकार करने में मीडिया की भूमिका संदेहों, भ्रांतियों, विश्लेषणों से परे नहीं है। अगर पत्रकारिता अपने सिद्धांतों पर अडिग रहते हुए समाज, मानवता और विकास का उचित पथ-प्रदर्शन करती तो परिणाम कहीं बेहतर होते। सवर्णो और दलितों के द्वंद्व, देशी और विदेशी के द्वंद्व, अमीरी और गरीबी की खाई या परंपरा और आधुनिकता के विवादों का स्तर कम से कम वैसा न होता जैसा आज है। तकनीकी उपलब्धता की अथक कहानी कहने वाले मीडिया के पास इस प्रश्न का उत्तर नहीं है कि स्टिंग आपरेशन के जरिए वह किस वर्ग की जनता का कल्याण करना चाहता है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया पर आपराधिक घटनाओं, हिंसा और बलात्कार से संबंधित खबरों के बार-बार दिखाए जाने से एक आम दर्शक की संवेदनशीलता कुंद होती चली गई है और उसकी इंद्रियाँ भोथरी होने के कगार पर आ चुकी हैं। शायद तभी सबसे जल्दी और सबसे तेज सब कुछ दे डालने की कटिबद्धता से युक्त निजी चैनलों के पत्रकार किसी प्रसिद्धि प्राप्त या यशस्वी व्यक्ति(सेलिब्रिटी) की सरकती साड़ियाँ या जबरन लिए गए चुंबनों पर दिन-भर कैमरा ताने रहते हैं, लेकिन व्यावसायिक दोहन या प्राकृतिक झंझावातों के चलते भारतीय समुद्रतट के मछुयारे भूखमरी के किस दुश्चक्र में हैं, इसे 'कवर' करने की उन्हें फुर्सत नहीं है।

दरअसल, भारतीय पत्रकारिता अपने शैशवकाल में देश की स्वतंत्रता प्राप्ति के आदर्श के प्रति समर्पित होने की वजह से एक मिशन के रूप में विकसित हुई जो आजादी के बाद धीरे-धीरे यथार्थ की पगडंडियों पर बढ़ती हुई व्यावसायिक रूप धारण करती गई। आज स्थिति यह है कि कुछ धार्मिक, वैचारिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक और सरकारी पत्र-पत्रिकाओं को छोड़कर पूरा प्रिंट मीडिया व्यावसायिक एवं व्यापारिक रंग में रंग चुका है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की तो कुछ और ही बात है। उसका कहना क्या?

व्यावसायिकता का तकाजा इतना हावी है कि हमारे टेलीविजन चैनलों पर गंभीर और चिंतनपरक कार्यक्रमों का नितांत अभाव झलकता है। फिर भी यह मानना सही नहीं होगा कि तमाम मीडिया सामाजिक सरोकारों से कटे हुए हैं। दिसंबर 2004 में सुनामी लहरों के तांडव से हुई तबाही के दौरान रेडियो एवं टेलीविजन ने तबाही की वास्तविक जानकारी और आवश्यक सूचनाओं का निरंतर प्रसारण करके आपदा के शिकार लोगों को अपने बचाव के लिए प्रेरित किया तथा त्रासदी की भयावहता तथा पीड़ित लोगों के कष्ट और प्रवंचना को उजागर करके देशवासियों में करुणा एवं सहानुभूति जाग्रत करने का सराहनीय दायित्व निभाया।

किसी भी समाज की प्रगति और विकास इस तथ्य में निहित है कि वह अपने कमजोर वर्ग के उत्थान के लिए क्या करता है। विशेषकर लोकतंत्र का चौथा प्रहरी कहा जाने वाला मीडिया की सार्थकता और सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि उसने शोषित, दमित और विकास की मुख्यधारा में हाशिए पर पड़े दलित वर्ग के दुःख-दर्दों और संघर्षों को वाणी देने के लिए कितनी प्रतिबद्धता दिखाई। यही मीडिया की प्रासंगिकता है। किंतु वर्तमान दौर के मीडिया से ऐसा नहीं जान पड़ता है कि उसने समाज के मूक, वंचित और प्रताड़ित वर्ग की पीड़ा को चाहे इलेक्ट्रॉनिक चैनलों अथवा प्रिंट माध्यमों से उजागर किया हो जो सदियों से अभाव, उपेक्षा और यंत्रण का जीवन जी रहा है। आजादी के तिरेसठ वर्षों बाद भी मीडिया ने समाज में व्याप्त विसंगतियों और कुरीतियों का न तो विडंबनापूर्ण कुरूप चेहरा पाठकों व दर्शकों के सामने रखा और परिवर्तनकारी चेतना के साथ ना ही विचारों को अभिव्यक्ति दी।

(२८)प्रश्नः 'विचार दृष्टि' जब आपने शुरू की तो आपके मन में क्या उद्देश्य था, क्योंकि ऐसी पत्रिकाएँ और भी रही होंगी जो पाठकों के बीच संचरित व लेखकों के बीच समादृत रही होंगी। यद्यपि आज

आपकी यह पत्रिका बहुत प्रतिष्ठित है, साहित्यिक सजगता और राष्ट्रीय चेतना जाग्रत करने का माहौल इसने बनाया है। क्या आपको लगता था कि इतनी लंबी पारी जिसके पैतालिस से ज्यादा अंक निकल चुके हैं, आप खेल पाएँगे?

उत्तर: हाँ, जब मैंने 'विचार दृष्टि' पत्रिका शुरू की, तो इसका कुछ उद्येश्य था। आप मानें या न मानें, मगर मैं महसूस करता हूँ कि आजादी के तीन दशक बाद तक तो बहुत हद तक बहुत कुछ ठीक ठाक रहा, किंतु उसके बाद समाज के प्राय: प्रत्येक क्षेत्र में गिरावट शुरू हो गई और धीरे-धीरे देशवासियों में राष्ट्रीयता की भावना तिरोहित होने लगी और जिस तेजी से वह लुप्त हो रही है उसमें राष्ट्र की एकता व अखंडता पर खतरे मंडराने लगे हैं। जातिवाद, संप्रदायवाद, भाषावाद, आतंकवाद और क्षेत्रीयता की वजह से राष्ट्र खण्ड-खण्ड होने के कगार पर है।

ऐसी विषम व भयावह स्थिति में मैंने देशवासियों में राष्ट्रीय चेतना जाग्रत करने की आवश्यकता महसूस की। इसलिए साहित्य की विधा पत्रकारिता को माध्यम बनाना मैंने उचित समझा। इसके पूर्व जबतक भारत के समाचार पत्रों के पंजीयक (आर.एन.आई.) से 'विचार दृष्टि' के नाम का अनुमोदन और पंजीयन नहीं हो पाया था, तब तक दो वर्षो तक 'राष्ट्रीय विचार पत्रिका' मैंने पटना से निकाली।

जनहित की भावना से जनजीवन की चेतना को जागरित करना और शिक्षित करना 'विचार दृष्टि' का उद्येश्य है। यह पिछले बारह वर्षो से निरंतर और नियमित रूप से दिल्ली से प्रकाशित हो रही है और अब तक देश भर के हजारों पाठकों तक इसने देश के ज्वलंत मुद्दों पर विद्वतजनों के विचारों को पहुँचाया है और हिंदी साहित्य एवं हिंदी पत्रकारिता को समृद्ध किया है। राष्ट्रीय चेतना की यह वैचारिक पत्रिका पूरी तरह अव्यावसायिक है, जिसका देश भर में फैला एक बड़ा-सा पाठक परिवार है।

जब मैंने इस पत्रिका की शुरुआत की थी, तो मैंने यह संकल्प ले रखा था कि चाहे इसे नियमित रूप से प्रकाशन के लिए मुझे अपने पेंशन के पैसे क्यों न लगाना पड़े, इसे बंद नहीं होने दूँगा। पेंशन के पैसे खर्च करने में मुझे आनंद का अनुभव इसलिए होता है कि इसका मकसद लाभ कमाना नहीं, साहित्य और समाज को कुछ प्रदान करना तथा आमजन में राष्ट्रीय चेतना जागरित करना है।

(२९)प्रश्न: राष्ट्रीय आंदोलन की पत्रकारिता और मौजूदा दौर की पत्रकारिता को आप पत्रकार होने के नाते किस रूप में रेखांकित करना चाहेंगे?

उत्तर: नि:संदेह राष्ट्रीय आंदोलन की पत्रकारिता की मुख्यधारा मौजूदा दौर की पत्रकारिता की मुख्यधारा से अलग थी। तब साहस, जोखिम, निष्ठा, समर्पण और ईमानदारी अधिक थी। आज की पत्रकारिता में भी अपवाद जरूर है, किंतु वह पत्रकारिता की मुख्य प्रवृत्ति नहीं है। सच कहा जाए, तो पिछले दो दशक से भारतीय पत्रकारिता बाजार की गिरफ्त में है। अब वह विचार से उत्पाद की ओर बढ़ रही है। ऐसे में राष्ट्रीय आंदोलन की पत्रकारिता का स्मरण स्वाभाविक है।

आजादी की लड़ाई में ब्रिटिश साम्राज्यवाद का विरोध करने के साथ-साथ पूँजीवाद का मुकाबला करने तथा किसान-मजूदरों को शोषण से मुक्त कराने का एक मंच भी पत्रकारिता थी। पत्रकार रामवृक्ष बेनीपुरी जी के लिए पत्रकारिता का यह मंच उसी तरह जरूरी था जिस तरह गणेश शंकर विद्यार्थी के लिए। राष्ट्रीय आंदोलन के बहुत सारे पत्रकारों का तत्काल लक्ष्य आजादी प्राप्त करना था, लेकिन बेनीपुरी जी और विद्यार्थी जी जैसे पत्रकारों ने अपने लेखों और संपादकियों में बुनियादी सवालों पर भी उँगली उठाई।

(३०)प्रश्न: पत्रकारिता के काम से अथवा बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के अध्यक्ष पद पर रहते हुए कविता लिखने में आपको सहायता मिलती है या बाधा पहुँचती है?

उत्तर: सच मानिए, दिल्ली से प्रकाशित राष्ट्रीय चेतना की वैचारिक पत्रिका 'विचार दृष्टि' के लिए तो समय देना ही पड़ता है, इधर संस्कृत बोर्ड, पटना द्वारा प्रकाशित साहित्यिक एवं सांस्कृतिक चेतना की वैचारिक पत्रिका 'वाग्वंदना' के लिए भी समय निकालना जरूरी हो गया है जिसके कारण कविता लिखने में बाधा पहुँचना स्वाभाविक है। यह तो कहिए कि लोकसभा के हिंदी अधिकारी उपेन्द्र नाथ ने 'विचार दृष्टि' के उप संपादक का दायित्व संभालकर मेरा बहुत कुछ भार हल्का किया है और जिनके सहयोग से 'विचार दृष्टि' का प्रकाशन नियमित रूप से हो रहा है। मगर 'वाग्वन्दना' के लिए अग्रलेख तैयार करना तथा उसके संपाददन के लिए समय निकालना जरूरी हो जाता है। फिर संस्कृत बोर्ड के कार्यकलाप भी कुछ ऐसे हैं कि बिना समय दिए उनका निपटारा नहीं हो सकता। इसलिए मुझे प्रतिदिन पूर्वाह्न 11 बजे से संध्या 5 बजे तक बोर्ड कार्यालय में बैठकर

संचिकाओं पर निर्णय लेना मेरी बाध्यता है। ऐसे में कविता के लिए समय निकालना कठिन है।

(३१)प्रश्नः सोशल मीडिया हमें वह सामाजिकता क्यों नहीं देता, जो मानसिक दबावों से मुक्त करती है और परेशानियों के बीच हममें जीने का उत्साह जगाती है?

उत्तरः संजय भाई, यह बात सही है कि सोशल मीडिया ने हमें बहुत कुछ दिया है। नए दौर में लोगों को आपस में जुड़ने का, नए रिश्ते जोड़ने का, बातचीत और गपशप करने का, नए अभियान चलाने का एक माध्यम और एक मंच मिला है। सोशल मीडिया का यह रूप समाजशास्त्रियों को एक समाज के बारे में जानने और एक समझ विकसित करने और बदलते समाज को समझने का नया आधार भी दे रहा है, लेकिन आज के दौर का सोशल मीडिया हमें वह सामाजिकता तो नहीं ही देता, जो लोगों को ऐसे मानसिक दबावों से मुक्त करती है और उनमें परेशानियों के बीच जीने का उत्साह डालती है।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि पुरानी सामाजिकता हमें एक छोटे दायरे के रिश्तों में बाँधती थी। इसकी सीमाएँ थीं, पर इस सीमा के बीच जाने-पहचाने, परखे हुए लोग थे, जो हमें तमाम परेशानियों के साथ ही कई तरह की भावनात्मक सुरक्षा भी देते थे। सोशल मीडिया पर आप भारी संख्या में अनजान चेहरों से जुड़ते हैं, जिनमें असली-नकली दोनों ही तरह के होते हैं। इससे परिचय का आसमान तो बड़ा होता है, लेकिन खींचतान का आधार भी विस्तृत हो जाता है। वहाँ बड़े और बच्चे तकरीबन सभी ट्रॉलिंग व दादागिरी या धकियाए जाने जैसी हरकतों का शिकार होते हैं। बड़े तो ऐसे मौकों पर चुप हो जाते हैं या जवाबी हमला भी बोल देते हैं, लेकिन बच्चों के मानस पर इसका बुरा और काफी गहरा असर हो सकता है। इस दृष्टि से सोशल मीडिया की खामियों को समझा जाना अभी शेष है। आत्महत्या की प्रवृत्ति को देखते हुए शक की सुई सोशल मीडिया की ओर घूम रही है। सोशल मीडिया हमारे आज की जरूरत है, लेकिन इसकी बुराइयों को दूर करना उससे भी बड़ी जरूरत है।

(३२)प्रश्नः क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि अरब मीडिया में विचार-स्वातंत्र्य अब सीमित होते जाने के बावजूद अभी भी अल-जजीरा जैसे चैनल सभी प्रकार के दबावों के बीच निष्पक्ष पत्रकारिता का झंडा उठाए हुए है? आखिर कैसे?

उत्तर: हाँ, मुझे भी ऐसा लगता है कि अरब मीडिया में विचार-स्वातंत्र्य अब सीमित होते जाने के बावजूद अभी भी अल-जरीरा जैसे चैनल सभी प्रकार के दबावों के बीच निष्पक्ष पत्रकारिता का झंडा उठाए हुए है, क्योंकि उसके मीडियाकर्मी सभी प्रकार के खतरों का सामना करते हुए भी खाड़ी देशों की सरकारों के कारनामों का खुलासा करते रहते हैं।

तकरीबन 20 वर्ष पूर्व 1996 में जब अल-जरीरा नेटवर्क की शुरुआत हुई, तो खाड़ी के देशों के मीडिया ने उसे एक छोटे-मोटे नए खिलाड़ी से अधिक नहीं माना। पर शीघ्र ही अरब देशों की समस्याओं, संकटों पर प्रस्तुत अपनी रिपोर्टों की वजह से इस नेटवर्क ने अरब के मीडिया क्षेत्र में ताजा हवा का रूप ले लिया। यह अभूतपूर्व था। मगर जब इस टीवी चैनल ने खाड़ी देशों के तथाकथित 'अछूतों' पर टिप्पणियों शुरू कीं, तो उसे भी अप्रत्याशित रूप से अपमानजनक माना गया, क्योंकि सरकार ने मीडिया के लिए जो लक्ष्मण रेखा खींची थी, उसे उसी के अंदर रहना था। अधिकांश अरब देशों में वहाँ के मीडियाकर्मियों के लिए सरकारों ने सीमा रेखा खींच रखी है। निरंकुश शासक और नेता अपने-अपने विरूद्ध अप्रिय कुछ भी सुनना, देखना या पढ़ना नहीं चाहते और इसे रोकने के लिए उन्होंने काफी साधन जुटा रखे हैं। परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से सरकार संचालित मीडिया के लोग उसके द्वारा निर्देशित गार्डो के बाहर कोई और भूमिका नहीं अपना सकते। बहुमत के आधार पर भी वे सरकारों के लिए जो सामग्री तैयार करते हैं, वह भी सेंसर के अधीन रहता है।

ऐसी विषम परिस्थिति में भी अल-जरीरा चैनल खाड़ी के देशों में उठ रहे जनांदोलनों को समर्थन देने वाले एक राजनीतिक खिलाड़ी के रूप में जाना जाता रहा है। मिस्र में मुस्लिम ब्रदरहुड की लगभग समाप्ति के बाद भी अल-जजीरा द्वारा उसके पक्ष में सहानुभूतियों के रूख को अपनाने का उसकी राजनीतिक चाल माना जा रहा है। इसके परिणामस्वरूप अभिव्यक्ति की आजादी और नागरिक नियंत्रण मुक्त आजादी को देखते हुए संयुक्त अरब अमीरात ने कतर के प्रति किसी भी प्रकार के नरम रूख को पूरी तरह प्रतिबंधित कर दिया है। इसका उल्लंघन करने वालों को 15 वर्ष की जेल की सजा का प्रावधान है। फिर भी अल-जजीरा चैनल पत्रकारिता का झंडा उठाए हुए है।

(३३)प्रश्न: हमारा वर्तमान समय बौद्धिक उथल-पुथल और तोड़फोड़ का है। एक वैचारिक पत्रिका के संस्थापक-संपादक के रूप में आप अपनी क्या भूमिका देखते हैं?

उत्तर: वर्तमान दौर में तकरीबन सभी स्तरों पर भयानक रूप से उथल-पुथल, तोड़फोड़, अराजकता और रद्दोबदल का समय है। ऐसे विकट समय में एक संपादक अपनी सार्थक पहचान बनाकर कैसे चले, उसके लिए विकट चुनौती है। बौद्धिक उथल-पुथल या तोड़फोड़ अथवा अराजकता परमावश्यक स्थितियाँ हैं-समाज और साहित्य दोनों की बेहतरी के लिए।

वर्तमान समय नवपूँजीवाद और बाजारवाद की कोख से निकला समय है। इनका सतत प्रतिरोध हुआ है, लेकिन चिंतन और विचार-विमर्श के क्षेत्रों में भी उनका विस्तार घटित हुआ है। ऐसी स्थिति में मेरा ख्याल है कि मेरे जैसे सजग और संवेदनशील संपादक की जिम्मेदारी है कि वह चलती हवाओं में न उड़े, अपने पांव जमीन पर टिकाए रखे, अपनी पत्रिका में उसी रचना को तरजीह दे जो समाज और मनुष्यता के पक्ष में हो और जिससे समाज और मनुष्यता का कुछ बनता-संवरता हो। दूसरी बात मुझे यह कहनी है कि किसी भी प्रकार की रचनाशीलता सबसे पहले ईमानदारी की माँग करती है। ऐसे उथल-पुथल और अराजकता के समय में ईमानदारी का मूल्य और बढ़ जाता है। खासतौर पर तब जब झूठ और बेईमानी का बोलबाला हो और अँधेरा और अधिक बढ़ा हो। मैं यह भी मानता हूँ कि समाज की बेहतरी की चिंता और पीड़ा से गुजरने वाले एक रचनाशील व्यक्ति का रचनाकर्म ही सार्थक होता है।

इसी संदर्भ में मैं एक और बात कहना चाहता हूँ और वह यह कि बतौर संपादक किसी भी रचना के लिए मैं यह मानक जरूर रखता हूँ कि न तो वह 'यथास्थितिवाद' का पोषण करने वाली हो और न किसी भी तरह के अन्याय का साथ देने वाली हो। इसके साथ ही रचनाकार न तो भ्रष्टाचार से किसी प्रकार जुड़ा हो और न अनैतिक कार्यो से।

इधर हाल के वर्षो में मैंने यह देखा है कि सहयोगी प्रयास में लगे समानधर्मी लोगों के बीच ईर्ष्या-द्वेष ही नहीं, बल्कि ओछापन बढ़ा है। उनका व्यवहार ऐसा अलोकतांत्रिक होता है कि पूछिए मत। ऐसे लोगों का अपना ही सत्य अपने ही विरोधी सत्य में दम तोड़ देता है। इसलिए आज हम एक ऐसे धूर्त्त, व्यक्तिवादी और अमानवीय समय में जी रहे हैं जिसमें जौ के साथ घुन भी पीसे जा रहे हैं, क्योंकि वे लोग भी इस जद में आते दिख रहे हैं,

जो दृढ़, दूरदर्शी, न्याय के पक्षधर, जात-पांत से दूर और दृष्टि संपन्न कहे जाते रहे हैं। धूर्त और भ्रष्टाचारी लोगों की चपेट में उनका चरित्र भी बदला-सा दिख रहा है और दृष्टिहीनता को शीर्ष पर बैठाया जा रहा है तथा व्यापकता को खारिज करते हुए संकीर्णता का बोलबाला है। विचारवान और सच्चरित्र संपादक व सच्चे साहित्यकार को ऐसे लोगों से सावधान रहने की जरूरत है।

(३४)प्रश्न: क्या आप ऐसा मानते हैं कि आज जो इंटरनेट में नहीं है, वह ज्ञान की परिधि में नहीं आता? साहित्यिक पत्रिकाएँ इस दिशा में क्या कर रही हैं?

उत्तर: नहीं, मैं ऐसा नहीं मानता कि आज जो इंटरनेट में नहीं है, वह ज्ञान की परिधि में नहीं आता। इसमें कोई संदेह नहीं कि आज इंटरनेट अनेक सूचनाओं को त्वरित गति से लोगों तक पहुँचाता है, लेकिन साहित्य केवल सूचनाओं का केंद्र नहीं है। वह इतिहास के पार जाता है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि इंटरनेट कितना भी शक्तिशाली क्यों न हो, लेकिन फिर भी वह महज एक माध्यम है। हम उस माध्यम का अपने पक्ष में किस तरह उपयोग कर सकते हैं, इस पर हमें विचार करना होगा।

भारत की सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियों में जहाँ एक बड़ी आबादी, गाँवों या कस्बों में बुनियादी जरूरतों के लिए जद्दोजहद कर रही है, इंटरनेट विलासिता नहीं तो 'आराम' जरूर है। हाँ, ज्ञान-विज्ञान की रफ्तार के साथ बने रहना जीवंतता है, किंतु यह मानना कि जो इंटरनेट में नहीं है, वह कुछ नहीं है, यह ज्ञान से दूर है, यह एक विभ्रम है। यह जरूर है कि समय के साथ हर किसी को अद्यतन बने रहने की हर संभव कोशिश करनी चाहिए।

जहाँ तक इस दिशा में साहित्यिक पत्रिकाएँ क्या कर रही हैं, का सवाल है आज अधिकांश साहित्यिक पत्रिकाएँ नेट पर हैं। साहित्यिक पत्रिकाएँ प्रिंटिंग की नई तकनीक, कम्प्यूटर और इंटरनेट का उपयोग कर रही हैं। छपाई अब कंप्यूटर आधारित तकनीक से हो रही हैं। लघु पत्रिकाएँ इंटरनेट और वेबसाइट पर डाली जा रही हैं और पढ़ी जा रही हैं। लेकिन इसके साथ यह भी सच है कि साहित्यिक पत्रिकाएँ सिर्फ इंटरनेट और वेबसाइट के पाठकों के सहारे नहीं रह सकती हैं। वे गाँवों-कस्बों तक छपे हुए रूप में पहुँच रही हैं। जो पत्रिका छपे हुए रूप में उपलब्ध होने के साथ-साथ इंटरनेट पर भी पढ़ने के लिए उपलब्ध हैं, उसकी दुनिया ज्यादा बड़ी है।

अधिकांश साहित्यिक पत्रिकाओं ने अपने-अपने वेबसाइट बना लिए हैं। जिन्होंने नहीं भी बनाए हैं, उनके लिए हिंदी के कुछ पोर्टल यह काम कर रहे हैं, उनपर पत्रिकाओं के अंक उपलब्ध हैं। दूसरी बात यह है कि साहित्यिक पत्रिकाएँ निकालने वाले लोग समाज की समस्याओं और विसंगतियों से ज्यादा निकट से जुड़े होते हैं। साहित्यिक पत्रिकाएँ आज के विद्रूप सच को जनता के सामने ला रही हैं। इंटरनेट से ऐसा कुछ संभव नहीं है और उसकी सीमा भी है।

◆◆◆◆

अध्यायः छह

नैतिक प्रश्नोत्तर

(१)प्रश्नः भारतीय संस्कृति में सदैव ही नैतिक मूल्यों की अवधारणा पर विशेष बल क्यों दिया गया है?

उत्तरः भारतीय संस्कृति में सदैव ही नैतिक मूल्यों की अवधारणा पर विशेष बल इसलिए दिया गया है, क्योंकि नैतिकता मनुष्य का वह गुण है जो उसे देवत्व की ओर ले जाता है। यदि व्यक्ति में नैतिकता नहीं हो, तो पशु और मनुष्य में कोई विशेष अंतर नहीं रह जाता है। नैतिकता वहीं होगी जहाँ शिष्टता होगी। शिष्ट और सभ्य समाज ही नैतिकता की बाता करता है और अशिष्टता से ही अनैतिक कार्यो को बल मिलता है। इसलिए वेदों, उपनिषदों, पुराणों और अन्य धर्मग्रन्थों में नैतिक मूल्यों तथा सदाचार शिक्षा पर विशेष बल दिया गया है। मेरी भी मान्यता है कि व्यक्ति का चरित्र तभी तक है जबतक उसमें नैतिकता व चारित्रिक दृढ़ता है। अच्छे चरित्र से ही व्यक्ति की अस्मिता कायम है। चरित्र-बल की प्राप्ति हेतु नैतिक शिक्षा अनिवार्य है, क्योंकि नैतिक मूल्यों की अवधारणा ही चरित्र-बल है। देश में फैले भ्रष्टाचार, लूट-पाट, आगजनी, बलात्कार, आपराधिक प्रवृत्ति आदि नैतिकता के अभाव की ही परिणति है। नैतिक मूल्यों को लेकर देश में काफी दुखद स्थिति बनी हुई है। नैतिक मूल्यों को लेकर हमारी संजीदगी कम होने की वजह से शिक्षक-छात्रों अथवा पिता-पुत्र एवं भाई-भाई में संबंध धूमिल हो गया है। यही कारण है कि भारतीय संस्कृति में नैतिक मूल्यों की अवधारणा पर विशेष बल दिया गया है।

(२)प्रश्नः हमारे देश में आए दिन हो रहे हादसे जितने दर्दनाक हैं, आपदा प्रबंधन को लेकर उतने ही चिंताजनक भी ऐसा क्यों?

उत्तरः वास्तव में हमारे देश में आए दिन हो रहे हादसे जितने दर्दनाक हैं उतने ही चिंताजनक भी, क्योंकि हम देशवासियों और समाज के लोगों में संजीदगी और संवेदनशीलता धीरे-धीरे खत्म होती जा रही है; लोगों में तेजी से नैतिक मूल्यों- प्रेम, दया, सद्भाव, समरसता, सदाशयता आदि का ह्रास होता चला जा रहा है जिसके दुष्परिणामस्वरूप हादसों में घायल हुए या मृत लोगों के प्रति हमारी संवेदनहीनता देखने को मिल रही है। चाहे सड़क पर वाहनों के टककर से हादसे हो रहे हों या लोगों के आपसी मतभेद की वजह से मारपीट होती हो, हमारी निगाहें उनकी ओर नहीं जा पा रही हैं।

अभी-अभी बिहार के बेनीपट्टी में तकरीबन साठ लोगों सें भरी एक बस के एक आदमी को बचाने में तालाब में जा गिरी और तालाब की 30 फीट गहराई तक के पानी में दूर्घटनाग्रस्त बस पाँच घंटे तक डूबी रही। कहा जाता है कि पाँच घंटे तक आपदा प्रबंधन इस हादसे से अनभिज्ञ रहा और पूरी तरह किल रहा क्योंकि किसी की जान नहीं बचाई जा सैकी। 35 लोगों के शव निकाले गए, सिर्फ ऐसे कुछेक यात्री किसी तरह बच गए जो बस की छत पर बैठे थे। यदि राहत कार्य शीघ्र ही शुरू हो जाते तो कुछ जिंदगियाँ जरूर बचाई जा सकती थीं और इनमें से कुछ देश-समाज के लिए महत्वपूर्ण हो सकती थी, मगर हादसे पर हादसे चले जा रहे हैं और हर बार प्रशासन से चूक हो रही है। यह चिंताजनक है। ऐसे में आपदा प्रबंधन के प्रति जरा-सा भी लचर रवैया स्वीकार्य नहीं हो सकता।

(३)प्रश्नः क्या आपको भी ऐसा लगता है कि इन दिनों देश के विभिन्न हिस्सों में मानवीय संवेदना को झकझोर देने वाली घटनाओं की बाढ़-सी आ गई है? आखिर क्यों?

उत्तरः हाँ, मुझे भी ऐसा लगता है कि इन दिनों देश के विभिन्न हिस्सों में मानवीय संवेदना को झकझोर देने वाली घटनाओं की बाढ़-सी आ गई हैं, क्योंकि एक तो कुछ दिन पहले ओडिशा के कालाहांडी में एक गरीब पति द्वारा अपनी 42 वर्षीय पत्नी के शव को गट्ठर बना अपने कँधे पर लादकर दस किलोमीटर तक पैदल चलने की विवशता को साधन संपन्न लोगों ने अपनी आँखों से देखा। दूसरा कानपुर में एंबुलेंस न मिलने पर डॉक्टरों का चक्कर लगाते पिता के कंधे पर ही पुत्र की मृत्यु हो जाने पर ष्ठाव में तब्दील हो जाने की घटना को लोगों ने देखा। तीसरा बिहार के वैशाली में लावारिश शव को घसीटती पुलिस की तस्वीर देखी गई। इसी प्रकार भागलपुर में मानवता तब शर्मसार होती दिखी जब लावारिश शव को रेल पुलिस ने बोरे से ढँककर अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ ली। बिहार के इसी भागलपुर शहर के जवाहर लाल नेहरू महाविद्यालय अस्पताल में मरीज के परिजन को ऐसे ट्रॉली मैन से पाला पड़ा जो टाँके कटवाने के लिए दूसरे विभाग में ले जाने के एवज में पचास रुपए की माँग कर रहा था। असमर्थता जाहिर करने पर ट्रॉली मैन ने मरीज को यों ही छोड़ दिया। अस्पताल के अधीक्षक के सामने भी उसने पचास रुपए की माँग करने की बात स्वीकार कर ली।

ऐसी घटनाएँ प्रायः देश के विभिन्न हिस्सों में कहीं नियम-कानून के नाम पर, तो कहीं भ्रष्टाचार के नाम पर मानवीय संवेदना दम तोड़ती नजर

आ रही है। पटना के नामी-गिरामी अस्पताल पीएमसीएच में हाल ही में पर्ची नहीं कटा पाने की वजह से एक प्रसूता अस्पताल के द्वार पर ही एंड़ियाँ रगड़ती मर गई। अस्पताल प्रशासन संवेदनशील होता, तो प्रसूता की जान बचाई जा सकती थी। बेहतरी की आस में जीवन के द्वार पर पहुँचे उसके परिजनों का क्रंदन वहाँ के लोगों को दहला रहा था, लेकिन उसके पहले वहाँ मौजूद लोगों की संवेदना मर-सी गई थी। इन घटनाओं पर शोरगुल की लंबी उम्र न होने की वजह से शासन-प्रशासन की नजर भी न के बराबर जा पाती है। जिंदगी की भाग-दौड़ में आम आदमी भी ऐसी घटनाओं को नियति मानने लगा है। यह कहना कदाचित अनुचित नहीं होगा कि आम आदमी भी अपनी संवेदनाओं पर पर्दे डालने लगा है, जो वास्तव में मानव समाज के लिए खतरनाक है।

यह कहना गलत नहीं होगा कि लोक कल्याण के नाम पर कार्यशील सेवाएँ संवेदनहीनता की शिकार हो गई हैं। मुझे लगता है कि ऐसी घटनाओं पर गंभीर विचार-विमर्श की जरूरत है। यह देखना आज जरूरी है कि कल्याणकारी राज्य की अवधारणा पर आधारित लोक सेवाएँ क्या वाकई अपने मूल्य खो रही हैं? इसकी रक्षा कैसे की जा सकती है, इसके उपाय ढूँढ़ने होंगे।

(४)प्रश्न: क्या आप यह मानते हैं कि उड़ी के शहिदों की बेटियों को आजीवन मुफ्त शिक्षा देने का फैसला लेकर मोदी विश्वविद्यालय ने अपनी इस भावना का राष्ट्रहित में सभी देशवासियों की सम्मिलित नैतिक जिम्मेदारी का परिचय दिया है?

उत्तर: हाल ही में आजाद कश्मीर के उड़ी में आतंकवादी हमले में शहीद हुए 18 सैनिकों की बेटियों के लिए महिला शिक्षा में अग्रणी गुजरात स्थित मोदी विश्वविद्यालय ने आजीवन नि:शुल्क शिक्षा का प्रस्ताव रखा। इसी विश्वविद्यालय के परिसर में ही स्थित मोदी स्कूल में उन शहीदों की बेटियों के लिए कक्षा-3 से नि:शुल्क शिक्षा उपलब्ध होगी।

यह घोषणा करते हुए विश्वविद्यालय के संस्थापक आर.पी.मोदी ने कहा- 'हम उन शहीद सैनिकों के शौर्य को सलाम करते हैं, जिन्होंने इस दुर्भाग्यपूर्ण घटना में हमारे देश की रक्षा करते हुए अपने प्राणों की आहूति दे दी। मोदी यूनिवर्सिटी महिला शिक्षा एवं सशक्तिकरण में सदा अग्रणी रही है और बहादुर सैनिकों के लिए यह हमारा छोटा-सा योगदान है। यूनिवर्सिटी की यह भावना है कि राष्ट्रहित में सभी देशवासियों की यह सम्मिलित नैतिक

जिम्मेदारी है कि हम देश के सैनिक परिवारों को हर संभव सहयोग करें।'

इस संबंध में मोदी विश्वविद्यालय के अध्यक्ष डॉ. सुरेश अडवाणी ने सेना प्रमुख कार्यालय को एक पत्र लिखा है, जिसमें उड़ी के शहीद सैनिकों की बेटियों के लिए कक्षा-3 से पीएचडी तक नि:शुल्क शिक्षा का संकल्प व्यक्त किया है। डॉ. सुरेश अडवाणी का यह संकल्प इसलिए स्वागतयोग्य और काबिलेगौर है, क्योंकि देश पर आई विपत्तियों और उसके सामने खड़ी चुनौतियों का सामना करने के लिए हम सभी देशवासियों की यह नैतिक जिम्मेदारी हो जाती है कि सम्मिलित रूप से हम सभी अपने कर्तव्य का पालन करें। शहीद जवानों की बेटियों की आजीवन मुफ्त शिक्षा देने का फैसला कर मोदी विश्वविद्यालय ने उसी नैतिक जिम्मेदारी का निर्वह्ण किया है और देश के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करते हुए अपनी नैतिकता का परिचय दिया है जिसके लिए विश्वविद्यालय परिवार के सभी सदस्य हमारी हार्दिक बधाई के पात्र हैं।

(५)प्रश्न: गरीबों की दयनीय मरीजों की हालातों में आज के पत्थर दिल इंसान अपनी आँखें कब खोलकर अपनी नैतिकता का परिचय देगा?

उत्तर: पिछले दिनों ओडिशा के आदिवासी इलाके के कालीहांडी में दाना मांझी को अपनी पत्नी के शव को अपने कंधों पर ढोनी पड़ी और ओडिशा के हीबालसोर अस्पताल में वृद्धा के शव की हड्डियाँ तोड़कर और उसकी गठरी बनाकर बांस के डंडो के सहारे उसके परिवार के सदस्य ष्ठमष्ठान तक ले गए। इसी तरह मध्यप्रदेश के जबलपुर के पनांगू तहसील में दलित परिवार के एक मृतक शरीर को वहाँ के दबंगों ने अपने खेत से न गुजरने देने पर दलित शवयात्र को कीचड़ भरे तालाब से निकालने पर विवश किए गए। उत्तरप्रदेश के कानपुर अस्पताल में 12 वर्ष के मासूम बच्चे को अस्पताल में एम्बुलेंस नहीं उपलब्ध कराए जाने के बाद उस बच्चे को कंधे पर लादकर अस्पताल में इलाज के लिए दर-दर भटकना पड़ा, जिससे बच्चे का दम कंधे पर ही निकल गया और सहायता के लिए अस्पताल प्रशासन सोता रहा।

ऐसी अनेक घटनाएँ गरीबों के मरीजों की मदद में हुई, किंतु स्वास्थ्य प्रशासन सोया रहा। आखिर इन गरीबों की इन दयनीय मरीजों की हालातों में आज का पत्थर दिल इंसान अपनी आँखें खोलकर कब अपनी नैतिकता का परिचय देगा और गरीबों के नाम पर ढोल पीटती पाखंडी

सरकारें और समाज सेवी संगठन कब जागेंगे? यह हम सभी देशवासियों के सामने यक्ष प्रश्न खड़ा है जिसका उत्तर तलाशना हम सबों का दायित्व बनता है। आखिर आधुनिक भारत की इसी तस्वीर को लेकर विकसित देशों की पंक्ति में हम खड़ा होंगे? संवेदनहीनता और नैतिकता के पतन की पराकाष्ठा पर खासतौर पर प्रबुद्धजनों एवं सद्चित्त लोगों को चिंतन-मंथन करना समय की माँग है।

(६)प्रश्न: क्या आपको कभी ऐसा लगा है कि संवैधानिक पद की गरिमा और मर्यादा को दरकिनार करने तथा राज्यपालों के आचरण से इस पद की गरिमा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है?

उत्तर:हाँ, संवैधानिक पद की गरिमा और मर्यादा को दरकिनार कर राज्यपालों के आचरण से इस पद की गरिमा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। यों तो पहले भी कई राज्यपालों के आचरण से उस पद की गरिमा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है, मगर उसका ताजा उदाहरण मेघालय के राज्यपाल वी.षणमुगनाथन का है, जिन्हें यौन उत्पीड़न के आरोपों के चलते पद से त्यागपत्र देना पड़ा। उनके पास अरुणाचल प्रदेश के राज्यपाल का भी अतिरिक्त प्रभार था।

राज्यपाल वी. षणमुगनाथन पर यौन उत्पीड़न के गंभीर आरोप लगे हैं। कहा जाता है कि नौकरी के लिए साक्षात्कार देने राजभवन गयी एक महिला के अतिरिक्त राजभवन के कर्मचारियों ने भी गंभीर आरोप लगाया है। कर्मचारियों ने राजभवन कार्यालय की गरिमा से समझौता करते हुए यह भी कहा है कि षणमुगनाथन ने राजभवन को 'युवतियों का क्लब' बना दिया है। 2015 में राज्यपाल वी. षणमुगनाथन ने गणतंत्र दिवस समारोह में हिस्सा लेने के बाद रात्रि में पद से त्यागपत्र दे दिया था। इससे पहले आँध्रप्रदेश के एक बुजुर्ग राज्यपाल को भी ऐसे संवेदनशील और अमर्यादित प्रकरणों से घिरे होने के बाद उन्हें त्यागपत्र देना पड़ा था। राज्यपाल के आचरण से नैतिकता का भी काफी क्षरण हुआ है।

(७)प्रश्न: क्या काँग्रेस की तरह भाजपा में भी नैतिकता की बलि दी जा रही है? आखिर कैसे?

उत्तर: हाँ, जिस उत्साह के साथ तृणमूल काँग्रेस के नेता और शारदा एवं नारद घोटालों के आरोपी मुकुल राय का हाल ही में भाजपा मुख्यालय में फूलों के साथ स्वागत किया गया उससे तो ऐसा लगता है कि काँग्रेस की तरह भाजपा में भी नैतिकता की बलि दी जा रही है। ऐसा लगता है शारदा घोटाले के आरोपी मुकुल राय तृणमूल काँग्रेस छोड़ने के बाद दूध के

धुले हो गए और सत्तारूढ़ दल भाजपा में आने के बाद उनका शुद्धीकरण हो गया। आखिर राजनीतिक भ्रष्टाचार के प्रति कड़ा रूख रखने वाली अलग पार्टी होने के भाजपा के दावे का क्या हुआ? क्या प्रधानमंत्री की ऊँची आवाज में यह घोषणा कि 'न खाऊँगा, न खाने दूँगा' हवा में उड़ गई?

यही नहीं, काँग्रेस में भ्रष्टाचार के प्रतीकों में से एक माने जाने वाले नारायण राणे का भी राजग में शीघ्र मिलने की संभावना जताई जा रही है जबकि राणे का तो कोकण पट्टी में भी प्रभाव खत्म होता जा रहा है। मुझे तो आश्चर्य इसलिए भी हो रहा है, क्योंकि महाराष्ट्र के वर्तमान मुख्यमंत्री देवेन्द्र फड़नवीस ने भी दावा किया था कि राज्य की खूसखोर राजनीतिक संस्कृति को बदलना चाहते हैं। इसी प्रकार गुजरात के पूर्व मुख्यमंत्री और काँग्रेस के वरिष्ठ नेता शंकर सिंह बघेला को कभी भाजपा द्वारा काँग्रेस की 'भ्रष्ट' संस्कृति का अंग बताया जाता था के समर्थकों को भाजपा में मिलाया गया है। हिमाचल प्रदेश में काँग्रेस के वरिष्ठ मंत्री सुखराम के बेटे अनिल शर्मा को भाजपा में शामिल किया गया है। इन सभी उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि भाजपा ने यह संकेत दे दिया है कि वह भी वर्तमान के चुनावी फायदे के लिए भूतकाल को दफन करने को तैयार है। इसे ऊँचा नैतिकतावाद का पाखंड नहीं तो और क्या जाएगा? मुझे तो ऐसा लगता है कि भाजपा यदि ऐसे ही दागी नेताओं को प्रश्रय देती रही, तो फिर जनता भी काँग्रेस की तरह भाजपा से सवाल पूछने लगेगी कि क्या भाजपा गायवाली काँग्रेस बन रही है? यह सवाल भाजपा के पूर्व नेता अरुण शौरी ने खड़ा किया था। देखना तो यह है कि 2जी स्पेक्ट्रम घोटाले के साथ अभिन्न रूप से जुड़ी डीएमके के नेता भी भाजपा की भावी सहयोगी होगी?

♦♦♦

अध्याय : सात

प्रष्टाओं का परिचय

(१) डॉ. बालशौरि रेड्डी

नाम : डॉ. बालशौरि रेड्डी

जन्म : 1 जुलाई, 1928

जन्म स्थान : गोल्लल गुडूर, जिला-कडपा, आँध्रप्रदेश

शिक्षा : नेल्लूर, कडपा, इलाहाबाद और वाराणसी

कार्यक्षेत्र : प्राचार्य, प्रशिक्षण महाविद्यालय, हिंदी प्रचार सभा, मद्रास
संपादक, 'चंदामामा'(हिंदी)-23 वर्ष तक
निदेशक, भारतीय भाषा परिषद्, कोलकाता
अध्यक्ष, आँध्रप्रेदश हिंदी अकादमी, हैदराबाद
अध्यक्ष, तमिलनाडु हिंदी अकादमी, चेन्नई
अध्यक्ष, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

प्रकाशित पुस्तकें : शबरी, जिंदगी की राह, यह बस्ती: ये लोग, भग्न सीमाएँ, बैरिस्टर, स्वप्न और सत्य, प्रकाश और परछाई, लकुमा, धरती मेरी माँ, प्रोफेसर, वीर केसरी, दावानल, कालचक्र, तेलुगु की लोककथाएँ, आँध्र के महापुरुष, सत्य की खोज, तेनालीराम के नए तलीफे, बुद्धू से बुद्धिमान, न्याय की कहानियाँ, आदर्श जीवनियाँ, आमुक्त माल्यदा, दक्षिण की लोककथाएँ, तेनालीराम की कहानियाँ, वैशाखी हर-हर गंगे, पंचामृत, आँध्र-भारती, तमिलनाडु, कर्नाटक सहित विभिन्न भाषाओं में सैकड़ों पुस्तकें।

विदेश यात्रा : अमेरिका, इंगलैंड, मॉरिशस, सिंगापुर आदि सहित दशाधिक देशों की यात्राएँ।

अभिरुचि : अध्ययन, लेखन और पर्यटन

स्थायी पता : 'ज्योति निकेतन', 27 वडिवेलुपुरम, वेस्टमांबलम, चेन्नई-600033, तमिलनाडु, दूरभाष: 044-24893095

महाप्रयाण : 15 सितम्बर, 2015

(२) डॉ. ब्रह्मचारी सुरेन्द्र कुमार

जन्म तिथि: 27 दिसंबर, 1933
जन्म स्थान: ग्राम-सहाजितपुर, जिला-सारण
शिक्षा : एम. ए., पटना विश्वविद्यालय
पीएच.डी., लंदन विश्वविद्यालय

कार्यक्षेत्र : 1. बिहार तथा भागलपुर विश्वविद्यालय में संस्कृत विभागाध्यक्ष
2.1986 से 1988 तक कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय के कुलपति
3.पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला, राँची विश्वविद्यालय, राँची तथा विनोवा भावे विश्वविद्यालय, हजारीबाग में विजिटिंग प्रोफेसर तथा इमेरिटस फेलो
4.इंडियन इंस्टीच्यूट ऑफ एडवांस्ड स्टडीज, शिमला में 2003 से 2006 तक फेलो,
5. राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, भारत सरकार द्वारा 2011 में प्रायोजित 15वें विश्व संस्कृत काँग्रेस के विभिन्न शैक्षिक सत्रों के अध्यक्ष

रचना : विश्व प्रसिद्ध-Sanskrit Syntax and Grammar of Case
सम्मान : ग्रेट ब्रिटेन के कॉमनवेल्थ स्कॉलरशिप कमीशन द्वारा भाषा विज्ञान में पीएच.डी. के लिए इन्हें स्कॉलरशिप मिला।
अभिरुचि : अध्ययन, लेखन और पर्यटन
स्थायी पता : 75सी, पाटलीपुत्र कॉलोनी, पटना
देहावसान : 28 अगस्त, 2016 को 83 वर्ष की उम्र में

(३) डॉ. शिववंश पाण्डेय

शिक्षा : स्नातकोत्तर
कार्यक्षेत्र : पूर्व निदेशक, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना
साहित्य मंत्री, बिहार हिंदी साहित्य सम्मेलन, पटना
अध्यक्ष, बिहार संस्कृत संजीवन समाज, पटना
अभिरुचि : अध्ययन, लेखन
वर्तमान पता : 'लीलाधाम', 3/307 न्यू पाटलीपुत्र कॉलोनी, पटना-13
मो.-9430253666

(४) डॉ. बलराम तिवारी

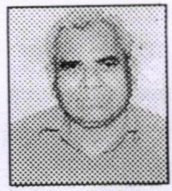

जन्म तिथि : 3 मई, 1951
(प्रमाण-पत्र में 13जून, 1950)

जन्म स्थान : ग्राम-सिरसिय़ा, जिला-मधेपूरा, बिहार

शिक्षा : डिग्री-1 विज्ञान, बी.ए. हिंदी सम्मान, एम.ए. हिंदी एवं 'पोस्ट एम.ए. डिप्लोमा इन लिंग्विस्टिक्स' में प्रथम श्रेणी में प्रथम, पीएच.डी.

अध्यापन : नवम्बर, 1977 से बी.एन. कॉलेज, पटना, पटना कॉलेज, पटना एवं हिंदी विभाग, पटना वि.वि. पटना में प्राध्यापन, स्नातकोत्तर हिंदी विभाग, पटना वि.वि. में अध्यक्ष रूप में एवं पत्रकारिता तथा जनसंचार विभाग, पटना वि.वि. में निर्देशक रूप में सेवा (2008 से 2011 तक)
पटना कॉलेज के हिंदी विभाग में 'स्नातक-जनसंचार'(बेचलर इन मास कम्युनिकेशन) एवं स्नातकोत्तर हिंदी विभाग, पटना वि.वि. में 'स्नातकोत्तर-पत्रकारिता एवं जनसंचार' (मास्टर इन जर्नलिज्म एण्ड मास कम्युनिकेशन) पाठ्यक्रम के प्रारंभ का श्रेय।
जून, 2015 में अवकाशप्राप्त।

पुस्तक एवं आलेख: 'ध्वनि-परिवर्तन की दिशाएँ',1977,माध्यम प्रकाशन,पटना
'सूर की काव्य-चेतना', परिवर्धित संस्करण, 2001, अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद
'बिहारी रत्नाकर', 2002, अनुपम प्रकाशन, पटना
'आलोचना'(दिल्ली), 'दस्तावेज'(गोरखपुर), 'विश्व भारती' पत्रिका(शांति निकेतन),'राष्ट्रभाषा परिषद् पत्रिका(पटना) आदि में आलेख प्रकाशित।

अभिरुचि : अध्ययन, अध्यापन और संवाद

वर्तमान पता : पूर्व विभागाध्यक्ष,स्नातकोत्तर हिंदी विभाग,पटना विश्वविद्यालय, पटना, रोड नं. 4ए, मजिस्ट्रेट कॉलोनी आशियाना नगर, पटना-800025, मो.-9431433652

(५) प्रो. (डॉ.) उमेश शर्मा

जन्म तिथि : 28.02.1963

जन्म स्थान : ग्राम-डेढ़सैया, पो.-हाटी, थाना-काको
जिला-जहानाबाद (बिहार)

शैक्षणिक योग्यता: आचार्यद्वय व्याकरण एवं साहित्य
विधावारिधि-(Ph.D.)K.S.D.S. University, Darbhanga
एम.ए.संस्कृत, पटना विश्वविद्यालय, पटना

कार्यक्षेत्र : पूर्व कुलपति, कामेश्वर सिंह दरभंगा, संस्कृत विश्वविद्यालय दरभंगा, बिहार
प्राध्यापक, राजकीय संस्कृत महाविद्यालय, काजीपुर, पटना

अभिरुचि : लेखन, पठन-पाठन, सर्वधर्म समभाव।

प्रकाशित रचनाएँ: महावैयाकरण नागेशभट्ट का व्यक्तित्व एवं कृतित्व। सद्यः

प्रकाश्य पुस्तकें: 1. संस्कृत व्याकरण सुबोधिनी
2. ब्रिलिएण्ट आधुनिक हिन्दी व्याकरण और रचना

वर्तमान पता : प्राचार्य, राजकीय संस्कृत महाविद्यालय, काजीपुर, पटना-4
श्रीकृष्ण कोलोनी, बेउर, पटना
मो.-9431289566

(६) डॉ. पी. लता

शिक्षा : एम.ए.

कार्यक्षेत्र : हिंदी प्राध्यापक, राजकीय महाविद्यालय, तिरूवनंतपुरम, केरल

अभिरुचि : अध्ययन, अध्यापन, संवाद और विचार-विमर्श

वर्तमान पता : महासचिव, राष्ट्रीय विचार मंच, केरल
टी.सी.-14/1592, पो.-लेन, ई-28,बबुन्कुका,
तिरूवनंतपुरम, केरल,
दूरभाष-0471-2332468, मो.-9946253648

(७) डॉ. रामनिवास 'मानव'

जन्म तिथि : 2 जुलाई, 1954

जन्म स्थान : ग्राम-तिगरा, जिला-महेन्द्रगढ़, हरियाणा

शिक्षा : एम. ए.(हिंदी), पीएच.डी., डी. लिट्

कार्यक्षेत्र : पूर्व हिंदी विभागाध्यक्ष, स्नातकोत्तर हिंदी विभाग, पीआरएम महाविद्यालय, हिसार, हरियाणा

सम्प्राप्ति : (1) विभिन्न विधाओं की छतीस महत्वपूर्ण कृतियाँ प्रकाशित।

(2) देश-विदेश की अड़सठ प्रमुख बोलियों-भाषाओं में विविध रचनाओं का अनुवाद और अनुदित कृतियाँ प्रकाशित।

(3)व्यक्तित्व और कृतित्व पर एम. फिल हेतु पैंतालिस बार तथा पीएच.डी. हेतु आठ बार शोधकार्य संपन्न।

(4)चार कविताएँ तथा दो शोध प्रबन्ध कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय, हरियाणा की एम.ए. (हिंदी)-द्वितीय वर्ष के पाठ्यक्रम में शामिल।

(5)देश के एक दर्जन विश्वविद्यालयों द्वारा शोध-निर्देशक के रूप में अनुमोदित।

(6) अनेक प्रतिष्ठित सम्मान, पुरस्कार तथा मानद उपाधियाँ प्राप्त। देश-विदेश की एक सौ पचास संस्थाओं द्वारा सम्मानित।

(7)स्नातक तथा स्नातकोत्तर कथाओं को पढ़ाने का तीन दशक से अधिक का अनुभव।

(8)सम्प्रति विश्वविद्यालयी शोध कार्यक्रम केंद्र में शोध-निदेशक।

अभिरुचि : अध्यापन एवं शोध

वर्तमान पता : 'अनुकृति', 706, सेक्टर-13, हिसार-125005,हरियाणा
दूरभाष: 01662-238720, मो.-8053545632

(८)डॉ. अरुण कुमार भगत

जन्म स्थान : सहरसा, बिहार

शिक्षा : स्नातकोत्तर

कार्यक्षेत्र : एसोसिएट प्रोफेसर, माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्राय पत्रकारिता विश्वविद्यालय, भोपाल, नोयडा केंद्र, गाजियाबाद, उ.प्र.

प्रकाशित रचनाएँ:

अभिरुचि : पत्रकारिता, अध्ययन एवं लेखन

वर्तमान पता : 174, प्रथम तल शक्ति खंड-3, इंदिरापुरम, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश, मो.-9818387111

(९) डॉ. आनंद वर्द्धन

जन्म तिथि : 22 अक्टूबर, 1957

जन्म स्थान : ग्राम-सदरपुर, पत्रा-अमावाँ, जिला-नालन्दा, बिहार

शिक्षा : सिविल इंजीनियरिंग ग्रेजुएट, आर.आई.टी., जमशेदपुर एम.टेक, आई.आई.टी. दिल्ली, पीएच.डी., आई.आई.टी. दिल्ली

कार्यक्षेत्र : वैज्ञानिक 'बी', रक्षा अनुसंधान और विकास संस्थान (वर्फ एवं अवधाव अध्ययन संस्थान, मनाली), वैज्ञानिक 'सी', राष्ट्रीय जल विज्ञान संस्थान, रूरकी एसोसियेट प्रोफेसर, जल संसाधान अध्ययन केंद्र, पटना विश्वविद्यालय, पटना जेनेरल मैनेजर, आईसीटी प्राइवेट लिमिटेड तथा कन्सल्टिंग इंजीनियरिंग सर्विसेज, दिल्ली, प्रोफेसर, द्रोणाचार्य कॉलेज ऑफ इंजीनियरिंग, गुरगाँव, हरियाणा

प्रकाशित रचनाएँ : 100 से अधिक शोधपत्र, प्रस्तावना प्रारूप, प्रतिवेदन आदि प्रकाशित, हिंदी और मगही काव्य रचना-'मगही बयार', मगही काव्यानन्द, नियति, रसरागरंग अनन्त, सम्पूर्ण नवीन छठगीत, जलथलनभ पर्यावरण, योग एंड मैनेजमेंट आदि

अभिरुचि : शोध, परिकलन एवं विकास कार्य, विज्ञान, साहित्य,

प्रकृति एवं पर्यावरण तथा समाजोपयोगी कार्य

वर्तमान पता : मकान सं. एफ-733, C/o श्री मामचन्द चौधरी, कुँआ मोहल्ला, तुगलकाबाद गाँव, दिल्ली-110044
मो.-9728590776, 9911960776, 8851419171
E.mail- anand_indra3@yahoo.co.in

(१०) डॉ. शाहिद जमील

जन्म तिथि : 28 फरवरी, 1958 ई.

जन्म स्थान : ग्राम- मोहम्मदपुर बुजुर्ग, पो.- सराय, वैशाली (हाजीपुर)

शिक्षा : एम.ए., पीएच.डी., पटना विश्वविद्यालय

कार्यक्षेत्र : राजभाषा पदाधिकारी, उर्दू निदेशालय, मंत्रिमंडल सचिवालय विभाग, बिहार सरकार, पटना,

लेखन विधा : कथाकार, पत्रकार, अनुवादक, मंच संचालक

अभिरुचि : मानव-साहित्य सेवा, लेखन, अध्ययन, संवाद, विमर्श

वर्तमान पता : क्वाटर नं- सी/84, बैंक रोड, मस्जिद के निकट, पटना-800001 मो.-9430559161,9931493157

(११) उमेश्वर प्र. सिंह

जन्म स्थान : बेगुसराय

शिक्षा : स्नातकोत्तर

कार्यक्षेत्र : पूर्व वरीय लेखा परीक्षक, कार्यालय, महालेखाकार (लेखा परीक्षा), बिहार, पटना
पूर्व वित्त पदाधिकारी, महावीर कैंसर संस्थान, पटना

अभिरुचि : अध्ययन, लेखन, संगीत

वर्तमान पता : पत्थर रोड, सगुन हॉल के निकट, सरिस्ताबाद, पटना-800001, मो.-09835202663,9334449156

(१२) डॉ. गोपाल शरण सिंह

जन्म स्थान : नालन्दा
शिक्षा : एम. ए., पीएच.डी.
कार्यक्षेत्र : समाज सेवा,
प्रकाशित रचनाएँ :
अभिरुचि : सामाजिक एवं साहित्य
वर्तमान पता : ग्राम+पत्रा.-नालन्दा, जिला-नालन्दा
मो.-9709451481

(१३) सुरेश कुमार सिन्हा

जन्म तिथि : 26.12.1948
जन्म स्थान : सीतामढ़ी (बिहार)
शिक्षा : बी.ए., एम.ए.(राजनीति विज्ञान)
एलएलबी, पटना वि.वि.
कार्यक्षेत्र : पूर्व अधिकारी, कार्यालय, महालेखाकार(ले.प.),
बिहार, पटना
पूर्व सहायक आयुक्त, भविष्य निधि, कोलकाता
पूर्व सहायक संपादक, 'वाग्वंदना', बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड
अभिरुचि : कला, संगीत, पेन्टिंग, रेखाचित्र, लेखन, खेल एवं अध्ययन
वर्तमान पता : 'घरौंदा' ए-364,ए.जी. कॉलोनी, आशियाना नगर, पटना-25
मो.-9835642504

(१४) डॉ. अमर सिंह वधान

जन्म तिथि : 14 जुलाई, 1947
जन्म स्थान : अमृतसर, पंजाब
शिक्षा : एम.ए. (हिंदी), एम. ए.(अँग्रेजी) तथा
एम.ए.(राजनीति) पीएच.डी, डी.लिट्, पीजीडीसीटी,
सीसीजी
कार्यक्षेत्र : 40 वर्षो तक महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों के स्तर
पर अध्यापन
प्रकाशित ग्रंथ : मौलिक ग्रंथ-15

संपादित ग्रंथ-15

संप्रति : निदेशक, उच्चतर शिक्षा एवं शोध केंद्र, चंडीगढ़

स्थायी पता : 3150, सेक्टर 24 डी, चंडीगढ़

मो. 9876301085

(१५) मनीष कुमार सिन्हा

जन्म तिथि : 8 फरवरी, 1973

शिक्षा : बी.कॉम(ऑनर्स), पटना विश्वविद्यालय,
बी.जर्नलिज्म एंड मास कॉम्यूनिकेशन

कार्यक्षेत्र : प्रकाशन एवं संपादन, साप्ताहिक न्यूज पेपर

वर्तमान पता : एम. 141, स्ट्रीट नं.-15, सदातपुर इक्स., दिल्ली-94
दूरभाष-011-22963567, मो.-9810811381

(१६) संजय कुमार सिंह उर्फ संजय भाई

जन्म तिथि : 17 नवंबर, 1975

जन्म स्थान : ग्राम+पत्रा.-मांडी, थाना-बेन, जिला-नालंदा

कार्यक्षेत्र : सामाजिक कार्यकर्ता, संयोजक,
युवा एकता परिषद, बिहार
पूर्व निदेशक, अंहिसा प्रशिक्षण केंद्र, शेरपुर, पंजाब,
पत्रकार, ऑफ्टरब्रेक अखबार, दिल्ली
दिल्ली प्रतिनिधि पत्रकार, संभावना सुरभि, बाढ़, पटना

अभिरुचि : समाज सेवा, अध्ययन, जनसंपर्क

स्थायी पता : C/oअध्यात्म साधना केंद्र, छतरपुर, नई दिल्ली-74
मो.-8800597750

(१७) मनोज कुमार

जन्म स्थान : ग्राम-तेलियामय, हिलसा, जिला-नालंदा

शिक्षा : एम. ए.

कार्यक्षेत्र : वरीय लेखा परीक्षा अधिकारी कार्यालय, महालेखाकार(लेखा परीक्षा), बिहार वीरचंद पटेल पथ, पटना-1
सदस्य, कार्यकारिणी, पटेल सेवा संघ, बिहार, पटना
संपादक, 'प्रहरी', कार्यालय, महालेखाकार(लेखा परीक्षा), बिहार, पटना

अभिरुचि : पत्रकारिता, समाज सेवा एवं अध्ययन

वर्तमान पता : प्रगतिनगर, सिपारा, पटना, मो.-9431421553

(१८) रामप्रताप सिंह

जन्म स्थान : ग्राम-चौधरायनचक, पत्रा.-मसत्थू, पटना
कार्यक्षेत्र : बिहार सरकार के लोक निर्माण विभाग में वरिष्ठ सहायक पद पर पैंतीस वर्षो तक
अभिरुचि : समाज सेवा, पुस्तकों एवं पत्र-पत्रिकाओं के प्रचार-प्रसार में अभिरुचि
वर्तमान पता: 314 जीए, पश्चिमी जयप्रकाश नगर, तीन पुलवा, पटना-गया लाईन, पटना-800001, मो.-8334109945
देहावसान : 28 दिसम्बर, 2017

(१९) रिंकू पांडे

जन्म तिथि: 01.03.1983
जन्म स्थान: ग्राम+पत्रा.-अंधारी, जिला-भोजपुर(आरा)
शिक्षा: एम.ए.(समाज शास्त्र), साहित्याचार्य, संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा
कार्यक्षेत्र: सामाजिक कार्यकर्ता, पाक कला
वर्तमान पता: न्यू पटना कॉलोनी, बेऊर, पटना
मो.-9060134643

(२०) आचार्य राम विलास मेहता

जन्म स्थान: ग्राम-बचनू चकला, पो.-रतनपुर भाया-करजाईन बाजार, जिला-सुपौल (बिहार)
शिक्षा : बी.एस.सी., बी.ए., एल.एल.बी., साहित्याचार्य, व्याकरणाचार्य
कार्यक्षेत्र : आठ वर्षो तक नेपाल के विभिन्न उच्च विद्यालयों में अध्यापन, श्री जनता बौधी गंगाय प्रा. सह मध्य संस्कृत विद्यालय ढ़ेना, सुपौल
अभिरुचि : संस्कृत शिक्षा के उन्नयन हेतु निरंतर प्रयासरत, पत्रकारिता, समाज कल्याण, शैक्षणिक कार्य, वाद-विवाद एवं लेखन कार्य
भाषाई ज्ञान: संस्कृत, हिंदी, अँग्रेजी, मैथिली उर्दू एवं नेपाली
सम्मान : राष्ट्रपति द्वारा राष्ट्रीय पुरस्कार से 5.9.1998 को सम्मानित
स्थायी पता: ग्राम-बचनू चकला, पो.-रतनपुर भाया-करजाईन बाजार, जिला-सुपौल (बिहार)

(२१) कविवर निशा नाथ अवस्थी : नि:शंक

जन्मस्थान : हरदोई
शिक्षा : स्नातकोत्तर
कार्यक्षेत्र : साहित्य, शिक्षक-कवि
अभिरुचि : कविता
वर्तमान पता: 205, ऊँचा थोक, हरदोई-24001, उत्तरप्रदेश

(२२) कुमार शैलेन्द्र

जन्म स्थान : हल्दी छपरा, भवानी टोला, मनेर, पटना
शिक्षा : एम. कॉम, पटना विश्वविद्यालय, एमबीए तथा एलएलबी
कार्यक्षेत्र : कानून एवं समाज सेवा में महत्वपूर्ण योगदान, हीनाफीलिया एवं थेलेसेमियास रोगियों की सेवा में 1986-87 से निरंतर सक्रिय
संस्थापक, अंतरराष्ट्रीय समाज सेवा संस्थान,
महासचिव, वर्ल्ड फेडरेशन ऑफ हीमोफीलिया के विचार चाप्टर
संस्थापक, सोसाइटी फॉर हीमोफीलिया केयर, नई दिल्ली
आजीवन सदस्य, बिहार रेड क्रॉस
संरक्षक सदस्य, बिहार हिंदी साहित्य सम्मेलन, पटना
प्रकाशित रचनाएँ: 'अम्बेडकर'
अभिरुचि : समाज़सेवा

(२३) डॉ. करण कुमार

जन्मतिथि : 04.02.1982
जन्मस्थान : ग्राम+पो.-पड़वा, थाना-जयनगर, जिला-मधुबनी पिनकोड-847226
शिक्षा : एम.बी.ए. एम.ए., एल.एल.बी., पी.एच.डी.
कार्यक्षेत्र : चेयरमैन विट्स कॉलेज, पटना
चेयरमैन वालमन ग्रुप
अभिरुचि : शिक्षा के क्षेत्र में बिहार को आगे लाना
वर्तमान पता : एफ/164, पी.सी. कॉलोनी, कंकरबाग, पटना-800020
दूरभाष : 9470708703, 9334493115

(२४) श्री बाँके बिहारी साव

जन्मतिथि : 01.01.1950
शिक्षा : बी.एससी. इंजीनियरिंग(मेकैनिकल)
कार्यक्षेत्र : अभियंत्रण सेवा से 2009 में अवकाश प्राप्त
रचनाएँ : 1. नहीं श्राद्ध-अभी नहीं-(नाटक)
2. वन्य प्राणी हैं प्राण हमारे (नाटक)
3. खुद पे हँस लो यार(नाटक)
4. बिहार हे....हे....हे... (व्यंग्य संग्रह)
5. हे राम..., मर गया राम-(व्यंग्य संग्रह)
6. पुल के नीचे (कहानी संग्रह)
विशेष : डेढ़ हजार से अधिक व्यंग्य रचनाएँ देश की पत्र-पत्रिकाओं एवं समाचार पत्रों में प्रकाशित
अभिरुचि : समाज सेवा एवं साहित्य सेवा
वर्तमान पता : एल-15, जगत वैष्णवी एपार्टमेंट, आशियाना नगर, पटना-800025
फोन-0612-2580369,
मो.-9234743494, 7488534544

(२५)श्री हीरा लाल पांडेय

जन्मतिथि : 06.01.1974
जन्मस्थान : ग्राम+पत्रा.-चासी, भोजपुर, आरा
शिक्षा : एम.एससी.(गणित)
कार्यक्षेत्र : शिक्षक, सामाजिक कार्यकर्ता
अभिरुचि : अध्यापन
वर्तमान पता : न्यू पटना कॉलोनी, बेऊर, पटना
दूरभाष : 9431063253

(२६) श्री कैलाश चौधरी

जन्म तिथि : 05.09.1943

जन्म स्थान : भारती ग्राम, पो.-भोभी, जिला-नालंदा

शिक्षा : एम.ए.(भूगोल)

कार्यक्षेत्र : शिक्षक, अवर शिक्षा सेवा, एस.डी.ओ. (शिक्षा), प्राचार्य, शिक्षक शिक्षा महाविद्यालय, पबिया (सं. परगना)
युवा समन्वयक, नेहरू युवा केन्द्र, नालन्दा रोहतास
क्षेत्रीय उपशिक्षा निदेशक, सारण, तिरूहुत तथा मगध
अध्यक्ष, राष्ट्रभाषा हिंदी प्रसार परिषद् बजरंगपुरी, पटना-7

प्रकाशित रचनाएँ : युवा चेतना, नवमल्लिका, साझे का सुर, सुर संगम, फुल एक उपवन के, सरहद की चिनगारी, प्राण अपान की धारा, मागधी गीता, आत्मकथा

पुरस्कार : 100 मीटर दौड़ में प्रथम-मध्य वि. दाहा बिगहा, नालंदा
हस्तलिपि लेखन, द्वितीय स्थान, पटना वि.वि.
साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संस्थाओं से अनेक पुरस्कार, सम्मान एवं अभिनंदन पत्र प्राप्त

अभिरुचि : खेलकूद, सांस्कृतिक कार्यक्रम एवं सामाजिक कार्यक्रम

वर्तमान पता : प्रकाश निवास, बजरंगपुरी, रोड नं.-1, शहीद भगत सिंह मार्ग
पो.-गुलजारबाग, पटना-7
मो.-9431431978

(२७) श्री ध्रुव प्रसाद

जन्मतिथि : 12 फरवरी 1954

जन्मस्थान : ग्राम+पत्रा.-सोहागपुर, पो. हथुआ, जिला-गोपालगंज

शिक्षा : एम.ए(हिन्दी) पटना विश्वविद्यालय

कार्यक्षेत्र : बिहार राष्ट्रभाषा परिषद के अनुसंधान विभाग में शोधकार्य तदुपरान्त परिषद् पत्रिका (त्रैमासिकी) का संपादन
उपाध्यक्ष, राष्ट्रभाषा हिंदी प्रसार परिषद्, बजरंगीपुरी, पटना-7
संस्थापक, छत्रपति शिवाजी पुस्तकालय सह वाचनालय एवं सरदार वल्लभभाई पुस्तकालय सह वाचनालय, गोपालगंज

अभिरुचि : संयोजक, ग्रामीण पुस्तकालय आंदोलन

वर्तमान पता : ग्राम+पत्रा.-सोहागपुर, पो. हथुआ, जिला-गोपालगंज

मो. : 9572035919

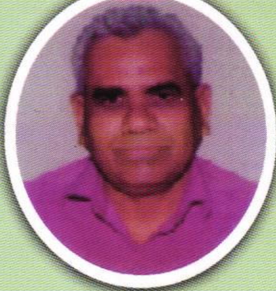

डॉ. बलराम तिवारी

जन्म तिथि : 3 मई, 1951

(प्रमाण-पत्र में 13 जून, 1950)

जन्म स्थान : ग्राम-सिरसिया, जिला-मधेपूरा, बिहार

शिक्षा : डिग्री-1 विज्ञान,बी.ए. हिंदी सम्मान, एम.ए. हिंदी एवं 'पोस्ट एम.ए. डिप्लोमा इन लिंग्विस्टिक्स' में प्रथम श्रेणी में प्रथम, पीएच.डी.

अध्यापन : नवम्बर, 1977 से बी.एन. कॉलेज, पटना, पटना कॉलेज, पटना एवं हिंदी विभाग, पटना वि.वि. पटना में प्राध्यापन, स्नातकोत्तर हिंदी विभाग, पटना वि.वि. में अध्यक्ष रूप में एवं पत्रकारिता तथा जनसंचार विभाग, पटना वि.वि. में निर्देशक रूप में सेवा (2008 से 2011 तक)

पटना कॉलेज के हिंदी विभाग में 'स्नातक-जनसंचार'(बेचलर इन मास कम्युनिकेशन) एवं स्नातकोत्तर हिंदी विभाग, पटना वि.वि. में 'स्नातकोत्तर-पत्रकारिता एवं जनसंचार' (मास्टर इन जर्नलिज्म एण्ड मास कम्युनिकेशन) पाठ्यक्रम के प्रारंभ का श्रेय।

जून, 2015 में अवकाशप्राप्त।

पुस्तक एवं आलेख : 'ध्वनि-परिवर्तन की दिशाएँ', 1977, माध्यम प्रकाशन, पटना

'सूर की काव्य-चेतना', परिवर्धित संस्करण, 2001, अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद

'बिहारी रत्नाकर', 2002, अनुपम प्रकाशन, पटना

'आलोचना'(दिल्ली), 'दस्तावेज'(गोरखपुर), 'विश्व भारती' पत्रिका (शांति निकेतन), 'राष्ट्रभाषा परिषद् पत्रिका (पटना) आदि में आलेख प्रकाशित।

अभिरुचि : अध्ययन, अध्यापन और संवाद

वर्तमान पता : पूर्व विभागाध्यक्ष, स्नातकोत्तर हिंदी विभाग, पटना विश्व-विद्यालय, पटना, रोड नं. 4ए, मजिस्ट्रेट कॉलोनी आशियाना नगर, पटना-800025,

मोबाईल : 9431433652

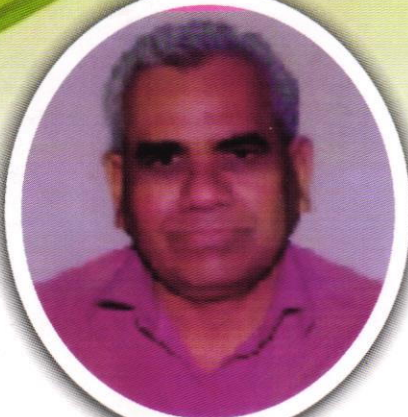

संपादक

डॉ. बलराम तिवारी

पूर्व विभागाध्यक्ष

स्नातकोत्तर हिंदी विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

प्रकाशक - सरदार पटेल साहित्य प्रकाशन

दिल्ली-92